डाक-पंजीयन म.प्र./भोपाल/4-472/2021-23
पोस्टिंग दिनांक : प्रतिमाह दिनांक 2 से 3, पृष्ठ सं. 158
प्रकाशन दिनांक : 1 से 1 प्रतिमाह

आर.एन.आई क्र. : 38470/83
आई.एस.एस.एन. क्र. : 2456-7167

अक्षरा

215

मूल्य 50/-

41 वाँ वर्ष

फरवरी 2023

साहित्य की मासिकी

साधो सबद साधना कीजै
अजित वडनेरकर

स्तंभ
कुसुमलता केडिया

संस्मरणात्मक आलेख
वान्या वोरा

आलेख
कैलाशचन्द्र पन्त, उदय प्रताप सिंह, सूर्यकांत नागर, आनंद प्रकाश त्रिपाठी, करुणाशंकर उपाध्याय, उषारानी राव आदि

साक्षात्कार
नरेश मेहता

संस्मरण
रमेश दवे, श्यामसुंदर दुबे

लेखक की कलम से
नरेश मेहता

अनुवाद
विभा खरे

प्रसंगवश
रामशंकर भारती

रिपोर्ताज
अखिलेश सिंह श्रीवास्तव 'दादूभाई'

Kshama Urmila

अक्षरा
अंक-215
मूल्य 50/- रुपये

वरिष्ठ छायाकार
जगदीश कौशल

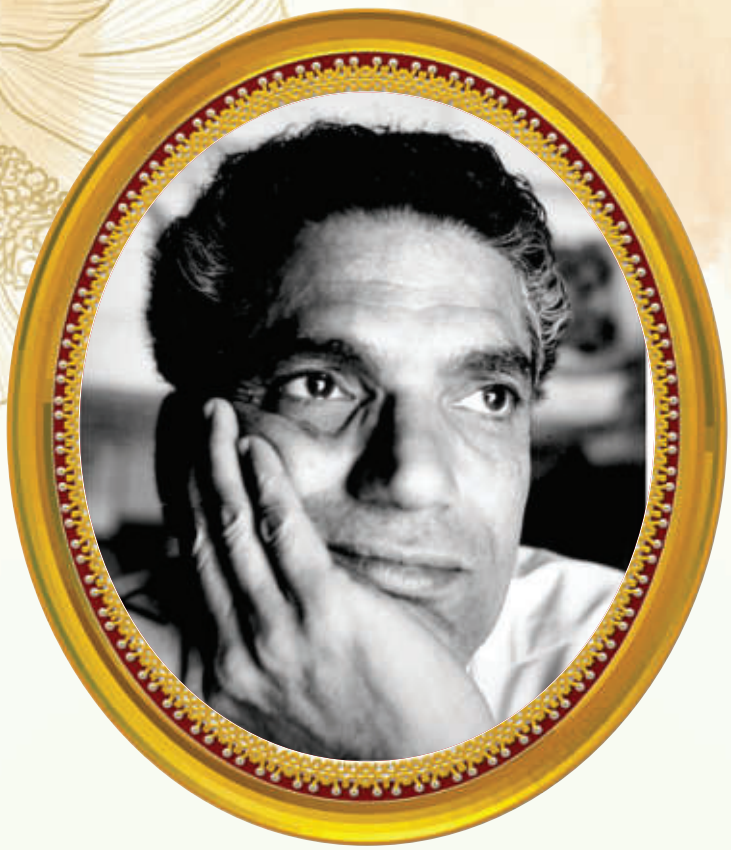

श्री नरेश मेहता

जन्म : 15 फरवरी 1922
प्रयाण : 22 नवंबर 2000

नई कविता के सर्वप्रमुख कवियों में से एक श्री नरेश मेहता का जन्म मालवा अंचल के शाजापुर कस्बे में 15 फरवरी 1922 को हुआ था। उनका घर का नाम पूर्णशंकर था। उनके काव्यपाठ पर प्रसन्न होकर नरसिंहगढ़ की राजमाता ने उन्हें 'नरेश' की उपाधि दी थी। कालांतर में उन्होंने अपना यही नाम रख लिया। ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित हिंदी के यशस्वी कवि श्री नरेश मेहता उन शीर्षस्थ लेखकों में थे जो भारतीयता की अपनी गहन दृष्टि के लिए जाने जाते हैं। आपने आधुनिक कविता को नयी व्यंजना के साथ नया आयाम दिया। सकारात्मकता, संवेदना और उदात्तता उनकी सर्जना के मूल तत्व हैं। जो उन्हें प्रकृति और समूची सृष्टि के प्रति पर्युत्सुक बनाते हैं। प्रचलित साहित्यक रुझानों से एक तरह की दूरी ने उनकी काव्य शैली और संरचना को विशिष्टता प्रदान की है। उनका काव्य लेखन वर्ष 1935–36 से आरंभ हुआ। कविताओं के अलावा उन्होंने उपन्यास, कहानी, नाटक, संस्मरण, आलोचना, अनुवाद आदि विधाओं में भी रचनात्मक योगदान किया है। उनके व्यक्तित्व और साहित्यिक जीवन के निर्माण में उनकी पत्नी श्रीमती महिमा मेहता और पारिवारिक पृष्ठ भूमि का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। आपको 1988 में साहित्य अकादमी पुरस्कार और 1992 में ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित किया गया। नरेश मेहता जी का यह दुर्लभ फोटो भोपाल के वरिष्ठ छायाकार श्री जगदीश कौशल द्वारा क्लिक किए गए हिंदी साहित्यकारों के फोटो एलबम से लिया गया है जो उन्होंने वर्ष 1972 में मेहता जी के रीवा प्रवास के अवसर पर क्लिक किया था।

अक्षरा

215

यू.जी.सी. द्वारा मान्यता प्राप्त
41 वाँ वर्ष

मनोज श्रीवास्तव
प्रधान सम्पादक

जवाहर कर्नावट
प्रबंध सम्पादक

जया केतकी
सम्पादन सहयोग

सुधा बाथम
अक्षर–संयोजन

वार्षिक सदस्यता शुल्क : 500 रुपए
दस वर्षीय सदस्यता शुल्क : 5000 रुपए
एक प्रति 50 रुपये
विदेशों के लिए : एक अंक : 10 डॉलर, वार्षिक : 120 डॉलर
चेक या ड्राफ्ट 'म.प्र. राष्ट्रभाषा प्रचार समिति- 'अक्षरा' के नाम देय
ऑनलाइन पेमेंट के लिये- इंडियन बैंक, हिन्दी भवन शाखा, भोपाल
Ac/ No. 50413818696, IFSC- IDIB000T610

सम्पर्क : म.प्र. राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, हिन्दी भवन, श्यामला हिल्स, भोपाल - 462002 (म.प्र.)
दूरभाष : 0755- 2660909, 2661087, ई-मेल - **myakshara18@gmail.com**
hindibhawan.2009@rediffmail.com
वेबसाइट - **www.akshara.page, www.madhyapradeshrashtrabhasha.com**

केसरी नाथ त्रिपाठी एक ऐसे भारतीय राजनीतिज्ञ रहे हैं, जिन्होंने जुलाई 2014 से जुलाई 2019 तक पश्चिम बंगाल के राज्यपाल के रूप में कार्य किया। उनके पास बिहार, मेघालय और मिजोरम के राज्यपाल के रूप में छोटे कार्यकाल के लिए अतिरिक्त प्रभार भी था। वे भारतीय जनता पार्टी के सदस्य थे। वे तीन बार उत्तर प्रदेश विधान सभा के अध्यक्ष और भारतीय जनता पार्टी की उत्तर प्रदेश इकाई के अध्यक्ष रहे। उनका पूरा जीवन निष्कलंक और निर्विवाद रहा।

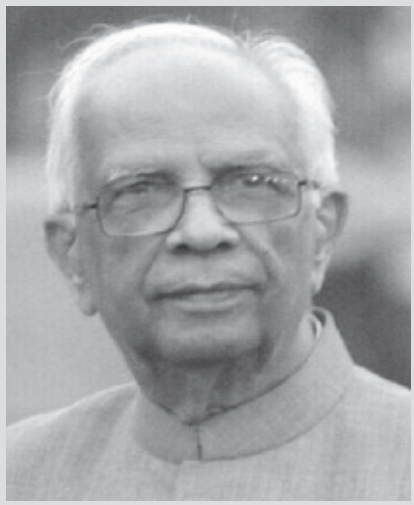

केसरीनाथ त्रिपाठी
जन्म - 10 नवंबर 1934
प्रयाण - 8 जनवरी 2023

भारतीय जनता पार्टी के वरिष्ठ नेता केसरी नाथ त्रिपाठी का रविवार दिनांक 8 जनवरी 2023 की सुबह निधन हो गया। उत्तर प्रदेश विधानसभा के पूर्व अध्यक्ष के साथ ही पश्चिम बंगाल के पूर्व राज्यपाल रहे केसरी नाथ ने 88 साल की आयु में प्रयागराज स्थित अपने आवास पर अंतिम साँस ली। बीते कुछ समय से उनकी तबीयत खराब थी। साँस लेने की समस्या के साथ ही हाथ में फ्रैक्चर होने की वजह से उन्हें एक निजी अस्पताल में भर्ती कराया गया था।

प्रधान मंत्री मोदी ने ट्वीट करते हुए लिखा, 'केसरी नाथ त्रिपाठी का सम्मान उनकी सेवा और बुद्धिमत्ता के लिए होता था। वह संवैधानिक मामलों के जानकार थे। उन्होंने उत्तर प्रदेश में भाजपा को मजबूत करने में मुख्य भूमिका निभाई और प्रदेश में विकास की दिशा में कड़ी मेहनत की। उनके निधन से दुख हुआ। मेरी संवेदनाएँ उनके परिवार के साथ हैं। ओम शांति।'

उ.प्र.के मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ ने शोक प्रकट करते हुए कहा कि केसरी नाथ त्रिपाठी एक वरिष्ठ और अनुभवी राजनेता थे। वे संसदीय नियमों, परंपराओं और विधि के गहरे जानकार थे। श्री त्रिपाठी एक विद्वान अधिवक्ता और संवेदनशील साहित्यकार भी थे। उनके निधन से समाज की अपूरणीय क्षति हुई है। मुख्यमंत्री ने ईश्वर से दिवंगत आत्मा की शान्ति की प्रार्थना करते हुए शोक संतप्त परिजन के प्रति संवेदना व्यक्त की है।

अस्पताल में एक सप्ताह तक इलाज करवाने के बाद 2 दिन पहले ही उन्हें घर ले आया गया था। घर पर डॉक्टर उनकी स्वास्थ्य पर नजर रखे हुए थे। उन्हें ऑक्सीजन के साथ ही नली की सहायता से पेय पदार्थ दिया जा रहा था।

हिंदी भवन भोपाल के अनेक कार्यक्रमों में श्री त्रिपाठी सम्मिलित होते रहे। यह उनकी साहित्यिक अभिरुचि और हिंदी प्रेम को दर्शाता है।

'अक्षरा' और हिंदी भवन की ओर से दिवंगत आत्मा को विनम्र श्रद्धांजलि

गत माह रामचरितमानस के विरुद्ध कई तरह के आरोपों का माह था। आरोप असाहित्यिक लोगों की तरफ़ से आए ज़रूर थे पर उनके बीज उन साहित्यालोचकों के विवेचनों में थे जिन्होंने कबीर और तुलसीदास तक को एक-दूसरे से भिड़ाने की बुद्धिजीविताएँ दिखाईं हैं। उन आरोपों में से एक यह कि तुलसी ने जातिवाद को बढ़ावा दिया। जाति का अर्थ कास्ट है, यह भारत में अंग्रेज़ी अनुवाद का ही असर था। अन्यथा रामचरितमानस में जब सती जी यह कह रहीं थीं कि 'जद्यपि जग दारुन दु:ख नाना। सब तें कठिन जाति अपमाना' तो क्या वे उसे कास्ट के अर्थ में कह रहीं थीं? गुलामी का बुखार कुछ ऐसा कि काग की जाति भी कास्ट ही लगी। कौए की कास्ट। क्या कहने। यह काग भी कुछ और ऊपर है, समझ में ऐसे नहीं आएगा-'ग्यानी भगत सिरोमनि' है यह। इसकी 'मति अकुंठ हरि भगति अखंडा' है। वह उनमें नहीं कि जिनकी मति में कुंठा कूट-कूट कर भरी लगती है।

उस कुंठा में इन्हें लगता है कि तुलसी शबरी आदि पात्रों से अधम क्यों कहलाते हैं। अब हम आप जानते हैं कि विनम्रता में तुलसी के यहाँ कौन स्वयं को अधम नहीं कहता। स्वयं हनुमान कहते हैं -

'अस मैं अधम सखा सुनु मोहू पर रघुबीर'

क्या वे अपनी कास्ट के बारे में बात कर रहे थे? मध्यकालीन कवि स्वयं को अधमों का या पतितों का नायक क्यों कहते रहते थे। स्वयं तुलसी जब '**मति अति नीच ऊँचि रुचि आछी/ चहिअ अमिअ जग जुरइ न छाछी**' अपने को कह रहे थे तो वे किस नीचता की बात कर रहे थे?

एक सज्जन अपनी पुस्तक में कहते हैं कि 'तुलसीदास' 'रामचरिमानस' में इस घृणा को कम करने के बजाय बढ़ाने के लिये मजबूर क्यों हैं? 'तुम सुकृती हम नीच निषादा'-में निषाद को उसी के मुख से नीच क्यों कहलवाया जा रहा है? फिर भक्ति कहाँ से होगी? जाना जा सकता है कि कबीर अपने पीव के सामने बहुरिया और दुलहनिया बन रहे हैं, नीच निषाद नहीं।'

लेकिन ये सज्जन कबीर को पूरा पढ़े होते तो उन्हें ये पूर्वोक्त वाक्य लिखने से पहले ही यह पता होता कि कबीर तो स्वयं को राम की कुतिया कहने में भी नहीं चूकते थे। '**कबीर कूता राम का, मुतिया मेरा नाम।**'

दूसरी ओर तुलसी चूँकि दास्य-भाव की भक्ति या सेव्य-भाव की भक्ति में बात कह रहे हैं, इसलिये उनकी यह टोन है। अन्यथा सगुण भक्ति की सख्य-भाव की भक्ति में ईश्वर से निस्संकोच बराबरी का जो भाव कृष्णभक्ति शाखा में मिलता है, उस पर ये सज्जन क्या कहेंगे।

यदि विनय में निषाद अपने को नीच कह लेता है, या विभीषण 'तामस तन कछु साधन नाहीं' कह लेते हैं, या हनुमान 'सबहीं विधि हीना' कह लेते हैं-तो वे ईश्वर के सामने कह रहे हैं। उस परम पूर्णता के सामने। इन सज्जन के सामने नहीं जो उनकी विनय को तथ्य की तरह पेश कर रहे हैं।

अन्यथा जो '**सब विधि हीना**' है, उसे ही उस तत्कथित 'ब्राह्मण धर्म' ने भगवान का दर्जा दिया है। उसी से उनकी उम्मीद है 'अष्ट सिद्धि नव निधि' का दान करने की। ये सज्जन भक्ति

की बात इतने जातिवादी आरोप मढ़कर करते हैं। वे तुलसी कहते हैं : **'कह रघुपति सुनु भामिनि मानउँ एक भगति कर नाता। जाति पांति कुल बड़ाई। धन बल परिजन गुन चतुराई। भगतिहीन नर सोहइ कैसा। बिनु जल बारिद देखिये जैसा।'**

देखें यही 'ब्राह्मण धर्म' है जो सिर्फ एक भक्ति का नाता मानता है। बाकी सब उपाधि व्याधि हैं। ब्राह्मण धर्म (क्या अद्भुत शब्द गढ़े हमारे दलित आलोचकों ने : ब्राह्मण धर्म, दलित धर्म!) वह है जो 'सब विधि हीना' से अपनी पूजा में आशा करता है कि 'तस्य सर्वं भयं नास्ति रणे च विजयी भवेत।'

कबीर ने जिस स्वर-भूमि पर कहा : 'तहाँ जाहु जहाँ पाट-पटंबर अगर चंदन घसि लीना / आई हमारै कहा करौगी हम तो जाति कमीना' क्या हनुमान स्वयं उसी स्वयं-शैली में नहीं कहते हैं : **'कहहु कवन मैं परम कुलीना/कपि चंचल सबही विधि हीना/प्रात लेई जो नाम हमारा/तेहि दिन ताहि न मिलै अहारा।'** ध्यान रखें कि अजलफ का एक पर्याय 'कमीन' भी है। यह भी ध्यान दें कि हठयोग प्रदीपिका ने वास्तविक कुलीन किसे कहा था। **'गोमांस भक्षयेन्नित्यं पिवेदमरवारुणीम्/ कुलीनं तमहं मन्ये इतरे कुल घातकः'** कि वही कुलीन कहलाता है जो गोमांस का नित्य सेवन करता रहता है। और ऊपर से अमरवारुणी नामक मदिरा का पान करता रहता है।

मध्यकाल में और आज भी हमारी अभिजातवर्ग ऐसा ही है। मांस-मदिरा वाला। लेकिन ग़लतफ़हमी में न रहें। हठयोग उन्हें कुलीन नहीं मानता जो मांस-मदिरा का भक्षण करते हैं। उसके अनुसार इसका अर्थ है : **'गो शब्देनोदिता जिह्वा तन्प्रवेशो हि तालुनि/गो-मांस भक्षणं तन्तु महापातकनाशनजिह्वा प्रदेश- संभूताः ब्रह्मित्पादितः खलु/ चंद्रात्स्त्रवति यः सारः स्यादमरवारुणी'** कि गो शब्द का अर्थ जिह्वा है और उसे उलटकर तालुदेश में ले जाने को ही 'गोमांस भक्षण' कहते हैं। निस्संदेह यह महापातक को नाश करने वाला है। ऊपर जिस चंद्रमा से निर्झरित सोमरस की चर्चा की गई है, वही अमर-वारुणी है। हठयोग ने इसे कुलीन होना माना था और अपनी उलटबाँसियों से अपने समय के आभिजात्य को विखंडनवादी देरिदा शैली में चुनौती दी थी। हम हठयोग के 'कुलीन' अर्थ को बहुत गुह्य (ऑकल्ट) न भी बनाएँ तो भी जिह्वा के उस संदर्भ से हमें विभीषण की 'जिमि दसनन्हि मँह जीभ विचारी' की याद तो आनी चाहिए क्योंकि वह तो तात्कालिक संदर्भ है। चंद्रिका की अमरवारुणी से हमें अमृता प्रीतम की 'अम्बर की एक पाक सुराही' ही याद आ जानी है।

न कबीर को जानें। न हठयोग को समझें। बैठा हुआ है बुद्धि का भट्टा फिर भी उस के परम भट्टारक होने का दावा करेंगे।

एक आपत्ति इस पर भी की जाती है कि तुलसी 'पूजिय विप्र सकल गुन हीना' (कुछ पाठों में सील गुन हीना भी है) क्यों कहते हैं? अब वे कैसे पचाएँ इस वाक्य को कि उनके यहाँ तो पूरा आकलन गुणाधारित है। है न सच? लेकिन असल विप्र वही है जो गुणों के भी पार जा चुका है। गुण का अर्थ रस्सी या बंधन है और विप्र निर्बंध होता है। आदमी को उसका तमस बाँधता है, यह सही है। उसका रजस बाँधता है, यह सही है। पर आदमी को उसका सत्त्व भी बाँधता है, यह ज्ञानी लोग जानते हैं।

लिज़ जैक्सन की पुस्तक पढ़िए कभी-बियांड वर्चु (गुण के पार)। या स्टीफ़ेन एम. मीवाड की पुस्तक-बियांड वर्चु एथिक्स। या हेडेन रैमसे की पुस्तक-बियांड वर्चु इंटेग्रिटी एंड मॉरलिटी। और गुण से आगे देखने की चेतना पर तवज्जो दें। गुणातीत को पाने वाला गुणातीत ही होगा। गुणातीत की परिभाषा देते हुए भगवान कृष्ण ने गीता में कहा भी -

मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः।
सर्वारम्भपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते।

यानी जो मान और अपमान में समान अर्थात् निर्विकार रहता है तथा मित्र और शत्रुपक्ष के लिये तुल्य है। यद्यपि कोई-कोई पुरुष अपने विचार से तो उदासीन होते हैं? परंतु दूसरों की समझ से वे मित्र या शत्रु पक्ष वाले से ही होते हैं इसलिये कहते हैं कि जो मित्र और शत्रुपक्ष के लिये तुल्य है। तथा जो सारे

आरम्भों का त्याग करने वाला है। दृष्ट और अदृष्ट फल के लिये जाने वाले कर्मों का नाम आरम्भ है। ऐसे समस्त आरम्भों का त्याग करने का जिसका स्वभाव है वह सर्वारम्भपरित्यागी है अर्थात् जो केवल शरीर धारण के लिये आवश्यक कर्मों के सिवा सारे कर्मों का त्याग कर देने वाला है, वह पुरुष गुणातीत कहलाता है।

यही तो कविता है संसार की। सगुण भक्ति के लिए साधक निर्गुणम् ही चाहिए। कृष्ण स्वयं कहे थे कि चातुर्वर्ण्य की सृष्टि उन्होंने गुणकर्म विभागश: की थी। अत: जो विप्र गुणहीन हुआ, वह वही हुआ जो चातुर्वर्ण्य के पार जा चुका। निर्बंध हुआ, निर्ग्रन्थ हुआ। कभी ओशो का चेतना विरुद्ध चरित्र का विमर्श सुनिये :-

'आपका चरित्र परिधि है : आप दुनिया में कोई चरित्र नहीं लाते हैं, आप बिल्कुल चरित्रहीन आते हैं, एक कोरी चादर, और जिसे आप अपना चरित्र कहते हैं, वह सब दूसरों का लिखा होता है। तुम्हारे माता-पिता, समाज, शिक्षक, शिक्षा-सब संस्कार हैं। तुम एक कोरे कागज की तरह आते हो, और जो कुछ तुम पर लिखा है वह दूसरों की ओर से आता है; तो जब तक तुम फिर से एक कोरी चादर नहीं बन जाते, तब तक तुम नहीं जान पाओगे कि प्रकृति क्या है, तुम नहीं जान पाओगे कि ब्रह्म क्या है, तुम नहीं जान पाओगे कि ताओ क्या है। साधक के लिए पूरी समस्या यह है कि कैसे अपना ध्यान परिधि से केंद्र की ओर ले जाए; जो अपरिवर्तनीय है, उसके साथ कैसे विलय किया जाए, और उसके साथ तादात्म्य न किया जाए, जो सिर्फ एक सीमा है। सीमा पर अन्य बहुत प्रभावशाली हैं, क्योंकि सीमा पर परिवर्तन स्वाभाविक है। परिधि बदलती चली जाएगी—बुद्ध की परिधि भी बदल जाती है। एक बुद्ध और तुम्हारे बीच का अंतर चरित्र का अंतर नहीं है-इसे याद रखो; यह नैतिकता का अंतर नहीं है, यह सद्गुण या अवगुण का अंतर नहीं है, यह अंतर है कि आप कहाँ पर आधारित हैं। तुम परिधि पर आधारित हो; एक बुद्ध केंद्र में स्थित है। चेतना केंद्र है। चरित्र परिधि है।'

महावीर स्वामी ने भी इस बात को पकड़ा है : दंसणभट्ठा भट्ठा। दंसणभट्ठस्स नत्थि निव्वाणं। सिज्झंति चरियभट्ठा। कि जो दर्शन से भ्रष्ट है वही भ्रष्ट है। ऐसे दर्शनभ्रष्ट को निर्वाण नहीं मिल सकता। चरित्रभ्रष्ट को सिद्ध हो सकता है।

सो एक पंक्ति जो चातुर्वर्ण्य से भी आगे देखने वाले की बात करती थी, उसे उसी की सबसे कुत्सित छवि का प्रतीक बना दिया गया। क्या ऐसा ज़रूरी नहीं कि कोई इनसे कहे खोलो खोलो कारा खोलो बंद दिमाग़ की? फिर इस चौपाई की दूसरी अर्द्धाली 'शूद्र न पूजहुँ वेद प्रवीना' तो सतही समझ वालों को और भड़काऊ थी।

(कुछ पाठों में शूद्र न गुन गन ज्ञान प्रवीना भी मिलता है-गुन गन की चर्चा मैं पहले कर चुका हूँ। वेद की जगह कुछ लोग ग्यान लगाते हैं प्रवीना के आगे। पता नहीं उनका क्या आशय है। ज्ञान हो तो उसके लिए 'ज्ञानी' शब्द है, ज्ञानप्रवीण क्या शब्द हुआ। इसलिए शीर्षक के अनुसार ही चलें)

यह पंक्ति एक तो उस बेवक़ूफ़ी भरे प्रचार का खंडन है कि शूद्र को वेद पढ़ने का अधिकार न था और यदि वह पढ़ता था तो उसके कान में पिघला हुआ सीसा डाल दिया जाता था।
यह पंक्ति यह बताती है कि शूद्र भी वेद-प्रवीण हो सकते थे।

वैसे ऐसे मूर्ख प्रचार चलते कैसे हैं? बिना किसी दृष्टि के, बिना किसी दृष्टान्त के। क्या ऋषि कवास इलुषू के कानों में सीसा डाला गया? क्या ऋषि वत्स के कानों में सीसा डाला गया? क्या ऋषि काकसिवत के कानों में सीसा डाला गया? क्या महर्षि महिदास अत्रैय के कानों में पड़ा?

क्या महर्षि महीपाल या ऋषि श्रृंगी ने इसे भुगता? क्या अगस्त्य के साथ ऐसा हुआ?

क्या थियरी हैं? ऋषि वेद की ऋचाएँ रच सकते हैं पर वेद सुनने पर सीसा कानों में डाल दिया जायेगा। गजब ही है। भविष्यपुराण एक दर्जन शूद्र ऋषियों की सूची देता है। महाभारत के अनुशासन पर्व में शूद्र ऋषियों की सूची है। वहाँ शूद्र यज्ञ भी कर रहे, उनका उपनयन संस्कार भी हो रहा, राजा युधिष्ठिर राजसूय यज्ञ के वक्त शूद्रों को सम्मानित अतिथियों की तरह बुला भी रहे।

अब दूसरी प्रगतिशीलता। बात प्रावीण्य की है ही नहीं। चाहे वह ज्ञान का हो या वेद का। प्रावीण्य एक कौशल है, दक्षता है, हुनर है। टोनी रॉबिन्स कहते हैं- repetition is the mother of skill. तो पिष्टप्रेषण और प्रवर्तन में फर्क होगा। सो जैसे शंकर दक्ष से प्रभावित नहीं होते, तुलसी दक्षता से नहीं होते। दक्षता अभ्यास से आ जाती है, लेकिन वह सिर्फ़ अभ्यास है, रियलाइजेशन नहीं है। प्रावीण्य और प्रतिभा में फर्क होता है। प्रावीण्य का प्रतिस्थापन तो किसी भी दिन किसी रोबोट से हो जायेगा, चेतना का नहीं हो सकेगा। भगिनी निवेदिता कहती थीं- knowledge without a purpose is mere pedantry. तुकाराम को लगा कि 'ज्ञानियांचे घरीं चोजवितां देव/ तेथें अहंभाव पाठी लागे।' कि जब मैं शुद्ध ज्ञान को खोजने चला तब देखा कि ज्ञान की पीठ पर अहंकार का भूत सवार रहता है। और यहाँ तुलसी ज्ञान की भी नहीं, प्रावीण्य की बात कर रहे हैं।

तीसरी प्रगतिशीलता। यह साहस तुलसीदास ही दिखा सकते थे कि वेद को भी अंतिम न मानें। जो एक-एक पुस्तक को ही अंतिम माने बैठे हैं, उनके भीतर यह साहस नहीं आता। इसलिए इस पंक्ति को लेकर तुलसीदास, रामचरितमानस और हिन्दू धर्म को गरियाने का उत्साह यदि किसी क्रिश्चियन प्रचार पत्रिका फ़ॉरवर्ड प्रेस या किसी तारिक के फ़ेसबुक पर दिखता है या किसी दास कैपिटल को अंतिम मानने वाले में दिखता है तो मैं समझ सकता हूँ कि इसका मूल स्त्रोत क्या है।

इसी अंतिम के चक्कर में दुनिया भर की प्राचीन सभ्यताओं के पुस्तकालय जलाये गये। इसी अंतिम के चक्कर में किताबों को बैन किया गया। इसी अंतिम के चक्कर में वैज्ञानिकों और बुद्धिजीवियों की हत्या की गई। कभी वामी नाइट ऑफ द मर्डर्ड पोएट्स की याद नहीं रखते। 12 अगस्त 1952 कभी यीशु-भक्त 'नाइट ऑफ द लांग बैटन्स' की याद नहीं रखते। 29 जुलाई 1966 कान में पिघला सीसा की गप्प गढ़ने वाले 16 फरवरी 1600 को किसे स्टेक पर जला रहे थे? ब्रूनो जैसे वैज्ञानिक को? और मारने से पहले उसकी जीभ बाँध रहे थे कि वह मरने से पहले कुछ कह न जाये भीड़ से। रक्तसंचार वैज्ञानिक सर्वेंटस को मार डालने से पहले दो घंटे तक रोस्ट करने वाले हमें सीसा डालने की गप्पें बतायेंगे। मैं उनके यहाँ किताब को अंतिम मानने वालों के अत्याचारों की दिनांक और स्थान सहित अनंतिम सूची दे दूँगा।

लेकिन वेदान्त में विश्वास करने वाला वेद को अंतिम नहीं मानता। वह नहीं कहता कि वेद-प्रावीण्य किसी को परिभाषित कर सकता है। और अभी तो मैक्समूलर से लेकर आगे तक लोग वेदों को गड़रियों के गीत बताने के लिए बड़े उत्साहित हुए जा रहे, अब इस पंक्ति के संदर्भ में बड़ी वेद-भक्ति जाग गई।

और उन तुलसीदास को लांछित करने चले जो यह पंक्ति 'परहित बस जिन्ह के मन माँही' वाले गीध को 'धरि हरि रूपा' वाली मुक्ति देकर शबरी के आश्रम तक पहुँचने के प्रसंगों बीच रखते हैं। 'गीध अधम खग आमिष भोगी' और 'अधम जाति मैं जड़मति भारी' के बीच। राम और तुलसी को आचरण से क्यों न जानियेगा?

दोनों का निष्कर्ष है-मानऊँ एक भगति कर नाता। दोनों ख़ारिज करते हैं-'जाति पाँति कुल धर्म बड़ाई' को। ध्यान

दीजिए कि धर्म को भी। आई गीता की याद? सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज। गुण–धर्म दोनों का परित्याग। पूर्णत: निर्बंध निर्ग्रंथ चेतना। सर्वथा मुक्त। वही पूज्य है। वह स्थिति जब भक्त हरि सारूप्य को प्राप्त कर लेता है। इस बार में तुलसी के एक और कथन को लेकर लोग कूद पड़े। सापत ताड़त परुष कहंता। बिप्र पूज्य अस गावहिं संता॥

यदि कोई निर्बंध चेतना है, यदि कोई निर्ग्रंथ है, यदि कोई परमहंस है और यदि वह शाप देगा, यदि वह ताड़ना देगा, यदि वह कठोर वचन कहेगा तो आज के हमारे संशयवादी क्या करेंगे? उसकी पूजा के इस तुलसी–विचार को छोड़िये, उसकी पूजा ये अच्छी तरह से लाठी, जूते–चप्पल से कर देंगे। अब ऋषि दुर्वासा को तो ये आधुनिक क़तई पूज्य न मानेंगे। कहेंगे होंगे आप कोई तोप चीज़। लेकिन मैनर्स नाम की भी तो कोई चीज़ होती है। पुराने लोगों में धीरज था। वे क्रोधी स्वभाव के कठोर वचन वाले ऋषि का भी आदर करते थे क्योंकि महत्त्व चेतना का था, स्वभाव का नहीं।

आजकल कोई टीचर कितना ही अच्छा पढ़ाये, पर ज़रा–सी बात दिल को नागवार गुजरी तो स्टूडेंट यूनियन उसकी पूजा, कहें कि धुनाई कर देगी। अब कुंती जैसे लोग कहाँ कि दुर्वासा को भी अपने धैर्य से प्रसन्न कर अलौकिक वर प्राप्त कर लें। अब द्रौपदी जैसे लोग कहाँ कि दुर्वासा को भी भोजन से तृप्त कर दें। अब विष्णु जैसे लोग कहाँ कि भृगु मुनि द्वारा छाती पर लात मारने पर उनके चरण पकड़ कर पूछें कि कहीं चोट तो नहीं लगी।

कहाँ वे दशरथ कि जो विश्वामित्र के परुष वचनों को सुनकर अपने नवतरुण पुत्रों को उनके हवाले कर दें और राक्षसों से पृथ्वी को मुक्त करने के शुभकार्य को यों होने दें। कहाँ अब राम कि परशुराम के कठोर कथनों के सामने भी अपनी विनय बनाये रखें। कहाँ वे श्रीहरि कि नारद के शाप को अपने अवतार की मैट्रिक्स की एक अलगोरिदम बना लें कि इसी बहाने धरती पर ईश्वर के पाँव पड़ें। कहाँ वे श्रीकृष्ण कि गांधारी के शाप को सविनय स्वीकार करें कि धरती से अपनी लीला के संवरण का समय आया तो इसी बहाने।

नल नील को ऋषियों का शाप मिला कि उनके द्वारा पानी में डाला गया पत्थर डूबने की जगह तैरेगा, तो वह शाप भी वर बन गया। वशिष्ठ मुनि का शाप द्यु नामक वसु को मिला तो भीष्म जैसा अनुपम व्यक्तित्व पृथ्वी पर आया। अर्जुन को एक वर्ष तक बृहन्नला होने का शाप मिला तो वह उसके अज्ञातवास में काम आया। श्रीहरि हों या कृष्ण, समर्थ होते हुए भी शाप का आदर शायद इसी कारण करते हैं कि–

विद्वान समक्ष विनय से, आदर से यह बुद्धि पाई
असर करेगा क्या कर्दम जब मन में हो शुद्धि छाई
दे मुझको अभिशाप वो सारा जो जग तेरे ध्यान में है
मैं उसको वरदान बना लूँ मुझको यह युक्ति आई

जिन्हें यह बुद्धि नहीं वे तुलसी की इस पंक्ति को यहाँ–वहाँ जिस–तिस के फ़ेसबुक वॉल पर चिपका कर ही संतोष प्राप्त करें। ये इनका बोझ उठाकर चलने वाले गधे या घोड़े की दुलत्ती जरूर खा लेंगे लेकिन किसी विद्वान की विद्वता का लाभ उठाने के लिए उसके टेम्पर के प्रति थोड़ी–सी सहनशीलता दिखाना इनके लिए संभव ही नहीं। इसलिए यह पंक्ति भी इनके लिए वर्णभेद का एक और प्रमाण। अभी मैं अमरकण्टक से लौटा। वहाँ एक संत का पता लगा जिन्हें बहुत सिद्धियाँ भी हैं लेकिन जो छूट गालियाँ भी देते हैं। चाहे कोई वी आई पी हो। मुझे तो नरेंद्र कोहली जी से लेकर अमजद अली जी से लेकर सोनल मानसिंह जी तक और अब्राहम लिंकन, स्टीव जॉब्स, जेफ़ बेजोस, बिल गेट्स, लैरी एलिसन जैसी बहुत–सी आशुकोपी किन्तु अनन्य प्रतिभाओं का पता है। इन्हें न सही, न सही।

ख़ुदा ठीक करता है कि गंजे को नाखून नहीं देता।

◆ ◆ ◆ ◆ ◆

इस अंक में नरेश मेहता जी पर चर्चा को संयोजित किए हैं। की 'इतिहास और प्रार्थना' वाली कविता मैंने सर्वप्रथम पढ़ी थी और हालाँकि वह कविता इतिहास और प्रार्थना को विलोमताओं के वृत्त में खड़ी करने वाली कविता है, पर इतिहास को जिस तरह से रचा और पढ़ाया गया है उस पर बहुत प्रभावी विमर्श खड़ी करने वाली कविता भी है। क्यों हम उस इतिहास को महत्त्व देते हैं जो मजबूर करता है लोगों को सिर झुकाने के लिए और क्यों हमें वह प्रार्थना हमारे सेकुलर आदर्शों के विपरीत लगती है जिसमें मनुष्य अपनी प्रेरणा में सिर झुकाता है? इस कविता में नरेश मेहता जी ने यह प्रश्न किया था। '**आक्षितिज / इतिहास के सम्मुख झुके / इन विवश मस्तकों में / और प्रार्थना में विनत / अकेले इस अश्वत्थ-माथ में / क्या कोई नहीं है?**' जब यह कविता लिखी गई थी तब तक भारत के संविधान की प्रस्तावना में, समूचे विपक्ष को जेल में ठूँसकर, धर्मनिरपेक्ष शब्द को ठूँसा जा चुका था, लेकिन इन एक कविता ने इस प्रयास का जो प्रत्याख्यान किया था, उसका आज तक कोई जवाब नहीं आया है। आपात्काल शक्ति का प्रवर्तन था, सत्ता के बल का सार्वजनिक निदर्शन। अत: उसे ताकत की ही लिपि में ही सब कुछ अंकित करने वाले इतिहास का ही समर्थन करना था। जिस चीज को इतिहास-मदान्ध लोग तिरस्कृत कर रहे थे, यह एक कवि-स्वर उसी को रेखांकित कर रहा था। '**फूल वनस्पति की स्वाहा-वाणी है / और प्रार्थना मनुष्य की / इसीलिए / प्रतिइतिहास हो जाने का नाम नहीं / बल्कि इतिहास से सर्वथा उदासी न होकर / वनस्पति हो जाने का नाम ही प्रार्थना है।**' जब वे प्रार्थना का मेटाफर ले रहे थे तो वे धर्म की ही बात कर रहे थे। धर्म की सांस्थानिकता की नहीं, उस सहजता की जो हृदय की हरियाली है। लेकिन महत्त्व इसका है कि वे एक कवि के रूप में असहमति में अपना हाथ उस तंत्र के क्षण भी उठा रहे थे जिसने अपने राजनीतिक अस्तित्व के अग्रसरण के लिए धर्म का बारीक सेबोटेज अपना लक्ष्य बना लिया था। चर्च और राज्य के बीच पृथकता का सिद्धांत वहाँ सही भी था कि जहाँ चर्च के रूप में एक तरह की समानांतर सांगठनिकता थी, लेकिन जहाँ राज्य का प्रतिस्पर्धी कोई संगठन या संस्थान न होकर मात्र हृदय में उतरी प्रार्थना हो, वहाँ उस धारणा को नरेश मेहता जैसा सजग कवि कैसे संज्ञान में नहीं लेता? वह धर्म नरेश जी की इसी कविता में 'माधवी सुगंध' का धर्म है, वह प्रार्थना शिला लेखों पर नहीं है, जीर्ण पोथियों और उपेक्षितों के नेत्रों की भाषा में है। जीर्ण पोथियों से आजकल के कुकुरमुत्तों को आपत्ति ही रही और नरेश मेहता जी की ही एक कविता में अवतारवर्णी प्रार्थनाओं की बात से भी उन्हें चिहुँक पड़ना था। जो लोग गाँधी जी के द्वारा राजनीतिक शब्दावली में धार्मिक लक्षणाओं के प्रयोग पर नाक-भौं सिकोड़ते थे, वे नरेश मेहता को कैसे पसंद करते? जब सेकुलरिज़्म न्यूटोनियन भौतिकी की भाषा बोलते हुए अपने को बड़ा आधुनिक समझ रहा था, तब 'अग्नि ही अग्नि में अग्नि का होम कर रही है और अग्नि ही स्वाहा भी हो रही है' की थर्मोडायनेमिक्स लेकर नरेश मेहता प्रकट हो गये। जब हमारी कविता के आधुनिक भौतिकवादी जयशंकर प्रसाद का अच्छी तरह से श्राद्ध भी न कर पाये थे, तब ये कौन चला आया था? शैव प्रत्यभिज्ञा ही कम न थी जैसे, तो यह 'लीला-भाव', 'वैष्णव-यात्रा', 'पृथ्वी एक भागवत् कथा-'वैष्णव चिड़िया' जैसी कविताएँ लेकर एक नई सम्पन्नता चली आई। प्रसाद की शिवता के बाद यह नरेश मेहताई वैष्णवता भारतीयता के संस्कार अपनी तरह से सुदृढ़ करती थी। पर नरेश मेहता के स्वर में जिस तरह की ऋचात्मकता थी। वह हिंदी कविता के लिए विशेष आस्वाद थी। ऐसी कविता जिसकी रगों में वैदिक खून बहता हो। कोई इसके तेवर की शिकायत नहीं कर सकता था क्योंकि काव्यगत स्वतंत्रता नई कविता के किसी हस्ताक्षर से कम नहीं ली गई परंतु भाषा में जिस तरह के आध्यात्मिक विभव को लेकर यह कवि आया था, उसका अनुभव नई कविता के पाठक को कतई न था। यह कविता आध्यात्मिक रहस्यवाद की कारा कविता नहीं थी बल्कि यह सृष्टि को खोलती थी-एक उत्सव और उत्साह यह धर्म के किसी डाग्मा को लेकर लिखी गई कविता नहीं थी और यह किसी वैयक्तिक आत्म (स्पिरिट)

के अंदरूनी ईश-संदर्भी संदेहों और तनावों की कविता भी नहीं थी। इसे प्रकृति के आनंद और उल्फुल्लता में अभिव्यक्त होना था, किंतु इस हर्ष में एक पवित्रता थी। ईश्वरकृष्ण ने सांख्यकारिका में कहा था कि प्रकृति अवगुंठन में रहना पसंद करती है, अव्यक्त रहती है और सामने नहीं आती। लेकिन नरेश मेहता की कविता में प्रकृति एक आध्यात्मिक आत्मविश्वास के साथ मंच पर आकर सम्बोधित करती है। इतने ऋतोन्मुखी शब्द लेकर यहाँ वे किसी रहस्यवादी कंदरा में प्रवेश नहीं कर रहे बल्कि सांख्यानुसार इन कविताओं में पुरुष का बिम्ब प्रकृति पर पड़ता दिखता है। किसी वैचारिक दर्शन की जगह शुद्ध स्वयं के द्वारा अनुभूत किए गए दर्शन की जो साक्षी नरेश मेहता जी की कविताओं में मिलती है, वह अमूर्तन नहीं है, इसमें विशिष्टियों के चित्र भी हैं। पुराने शब्दों के प्रयोग से मेहता जी कुछ ऐसा करते हैं कि उनकी प्रकृति एकदम ताजा, एकदम टटकी लगती है। एक ऐसे समय में जब प्रकृति लगातार क्षय, अपघटन और कहीं-कहीं तो मृत्यु का सामना कर रही है, इन कविताओं को पढ़कर लगता है कि नरेश मेहता जी ने उसमें जैसे नई साँस फूँक दी है, उसमें जीने का विश्वास पैदा कर दिया है और वास्तव में उसे 'पुरुष' का सनातन साथी बना दिया है।

नरेश मेहता जी की कविताओं में इतिहास-विमर्श एक विशेष तरह से उतरा है और उनकी यह दृष्टि प्रवाद-पर्व या महाप्रस्थान जैसे उनके काव्यों के सृजन में सक्रिय रही है। जहाँ तक वाल्मीकि की रामायण में सीता-परित्याग और शम्बूक वध की बात है, वे उत्तरकांड के अंग हैं। उत्तरकांड एक अनुवर्ती प्रक्षिप्ति है, यदि विक्षिप्ति न हो। जो भी संस्कृत महाकाव्यों की साहित्यिक परंपराओं को जानता है, वह महाकाव्यों के समापन की कवि-रूढ़ि को भी जानता है जिसमें (आरंभ में एक छोटे आकर्षणामंत्रण के बाद) असल विस्तृत फलश्रुति अंत में होती है। जब वह हो गई तब स्पष्ट है कि उसके बाद कही गई बातें महाकाव्य का अंग हैं ही नहीं।

वाल्मीकि रामायण युद्धकांड के साथ समाप्त हो जाती है। युद्धकांड का अंत एक पुस्तक के पूरे होने जैसा अंत है। पूर्व के किसी कांड में वैसा अंत नहीं है। इसे पढ़ने से ही सब स्पष्ट हो जाता है –

'यह वाल्मीकि ऋषि प्रोक्त आदिकाव्य रामायण है। यह धर्म, यश तथा आयु की वृद्धि करने वाला एवं राजाओं को विजय देने वाला है। संसार में जो मानव इसका श्रवण करता है, वह पाप से मुक्त हो जाता है। राजा इस काव्य का श्रवण करने से पृथ्वी पर विजय पाता और शत्रुओं को अपने अधीन कर लेता है। जैसे माता कौसल्या श्रीराम को, सुमित्रा लक्ष्मण को और कैकेयी भरत को पाकर जीवित पुत्रों की माता कहलाईं, उसी प्रकार संसार की दूसरी स्त्रियाँ भी इस आदिकाव्य के पाठ और श्रवण से जीवित पुत्रों की जननी, सदा आनंदमग्न तथा पुत्र पौत्रों से सम्पन्न होंगी। क्लेशरहित कर्म करने वाले श्रीराम की विजयकथा रूप इस सम्पूर्ण रामायण काव्य को सुनकर मनुष्य दीर्घकाल तक स्थिर रहने वाली आयु पाता है। (इस सम्पूर्ण रामायण शब्द पर गौर फरमाएँ) जो क्रोध को जीतकर श्रद्धापूर्वक इसे सुनता है वह बड़े-बड़े संकटों से पार हो जाता है। जो लोग वाल्मीकि प्रणीत इस काव्य को सुनते हैं वे परदेश से लौटकर अपने भाई बंधुओं से मिलते और आनंद का अनुभव करते हैं। वे इस जगत् में श्री रघुनाथ जी से समस्त मनोवांछित फलों को प्राप्त कर लेते हैं। इसके श्रवण से समस्त देवता श्रोताओं पर प्रसन्न होते हैं तथा जिसके घर में विघ्नकारी ग्रह होते हैं, उसके वे सारे ग्रह शांत हो जाते हैं। (और यह बहुत लंबा फलश्रुति वर्णन इतना ही और भी आगे चलता है।)

क्या ऐसी भाषा रामायण में किसी पूर्व के कांड के अंत में दीख पड़ी? बालकाण्ड राम के विवाह और दाम्पत्य पर ख़त्म होता है और अयोध्याकाण्ड में कथा की धारा अनुवर्ती रूप से प्रवाहित होती रहती है। अयोध्याकाण्ड राम-सीता-लक्ष्मण के वन-प्रवेश पर ख़त्म होता है और उसी जगह से अरण्यकांड की शुरुआत होती है। अरण्यकांड राम के पंपा सरोवर में प्रवेश करने पर ख़त्म होता है।

किष्किन्धा काण्ड वहीं से शुरू होता है और हनुमान के समुद्र संतरण की योजना बनाते हुए लंका का स्मरण करते हुए ख़त्म होता है और ठीक उसी बिन्दु से सुंदरकाण्ड की शुरुआत होती है जो हनुमान द्वारा सीता-संदेह-निवारण के वृत्तांत को बताते हुए ख़त्म होता है। ठीक उसी स्थान से युद्धकाण्ड आरंभ होता है।

लेकिन युद्धकांड के बाद कथा-प्रवाह ख़त्म हो जाता है। पूर्णाहुति हो जाती है। कथा-निवृत्ति हो जाती है। जब ऐसी अभिनिष्पत्ति युद्धकाण्ड के अंत में दीख पड़ती है और रामकथा की धारा 'समाप्तमिदं' स्पष्ट दीख पड़ती है तब उत्तरकाण्ड एकदम व्यर्थ का प्रायोजित परिकल्प लगेगा ही लगेगा। इस काण्ड में राम के द्वारा पूछे गए प्रश्न भी उन पर फबने वाले नहीं लगते। मसलन इंद्रजित के बारे में वे ऋषियों से पूछते हैं-'उसका प्रभाव कैसा था? उसमें कौनसा बल और पराक्रम था?' क्या युद्धकाण्ड के 80 वें सर्ग से लेकर 90 वें सर्ग तक उसके बल, पराक्रम और प्रभाव को स्वयं राम ने नहीं जान लिया था? कौन किससे पूछ रहा है? कौन किसे बता रहा है? बल और पराक्रम के बारे में ऋषि बताएँगे तो ज्ञान और अध्यात्म के बारे में कौन बताएगा? और इसके जवाब में ऋषि कोई सीधे इन्द्रजीत से सम्बन्धित उत्तर भी नहीं देते। 29 सर्गों में पुलस्त्य-कुल-कथा सुनाते हैं जो राम ने पूछी भी नहीं थी। 31 वें सर्ग में राम अगस्त्य से रावण के समकालीनों के बारे में पूछते हैं और चार सर्गों में हमें सहस्त्रबाहु और वाली की कथा सुनने मिलती है। फिर राम अगस्त्य से हनुमान के बारे में पूछते हैं और दो सर्गों में वह वृत्तांत चलता है। यानी कोई वास्तविक घटनाक्रम नहीं। सिर्फ़ प्रश्न और समाधान के लंबे प्रसंग। ऐसा लगता है जैसे ये सर्ग कथाधारा के अंग ही नहीं हैं, जिज्ञासा पूर्तियाँ हैं।

फिर सीता परित्याग की कथा। वह तो और कृत्रिम। उसी साक्षात्कार में आगे-राम इस उत्तरकांडीय सीता-परित्याग कथा में कुछ यारबाज किस्म के इंसान हैं। उनके कुछ सखा हो गये हैं जिनके नाम इसके पूर्व पूरी रामकथा में नहीं सुने गये थे। जैसे वे मित्र बस इसी प्रसंग के लिए रामकथा में अवतरित हुए। ये न भूतो न भविष्यति मित्रमंडली के सदस्यगण थे-विजय, मधुमत्त, काश्यप, मंगल, कुल, सुराजि, कालिय, भद्र, दन्तवक्त्र और सुमागध।

इनमें से एक भद्र यह 'परम सुन्दर बात' राम से कहता है। इस उत्तरकांडीय कथा में कोई धोबी नहीं है। भद्र इसे नगर में फैले हुए प्रवाद की तरह बताता है। राम सिर्फ़ इसी मित्रमंडली के अन्य सदस्यों से इस प्रवाद के ठीक होने का पूछते हैं और जब वे इसकी पुष्टि करते हैं तो वे न गुरुवर न राजसभा किसी से विमर्श किये बिना सीता-त्याग का एकतरफ़ा निर्णय ले लेते हैं।

यदि उत्तरकांड वाल्मीकि रामायण का सहज अंग होता तो उसे बार-बार वाल्मीकीय बताने की कांशस कोशिश नहीं करनी पड़ती। तब यह लिखने की ज़रूरत नहीं पड़ती कि 'इनके सिवा उन्होंने उत्तरकांड की भी रचना की है।' (सर्ग 94) ऐसा उन्होंने अन्य कांडों के बारे में क्यों नहीं कहा? फिर 98 वें सर्ग में 'इस काव्य के अंतिम भाग का नाम उत्तरकांड है। इस उत्तम भाग को आप ऋषियों के साथ सुनिये।' इसे किसी दूसरे कांड के लिए क्यों नहीं कहा गया? 111 के नेल्सन अंक वाले सर्ग में 11 वाँ श्लोक देखें-'प्रचेता के पुत्र महर्षि वाल्मीकि ने अश्वमेध यज्ञ की समाप्ति के बाद की कथा एवं उत्तरकांड सहित रामायण नामक इस ऐतिहासिक काव्य का निर्माण किया है।' 'उत्तरकांड सहित' लिखने में फिर वह ग्रंथि दीख पड़ती है। इतना overemphasize क्यों किया जा रहा है भाई, हमने तो दाढ़ी में तिनके की बात नहीं की थी। इस रिपीटीशन कंपल्शन का कोई मनोविज्ञानी अध्ययन तो करे।

अब हम पाठ-परंपरा को ले लें। यह क्यों है कि वाल्मीकीय रामायण के विभिन्न कांडों का विनियोग एवं ऋष्यादि न्यास युद्धकांड तक ही है। उत्तरकांड का कभी कोई

विनियोग निर्धारित नहीं हुआ, न कोई ऋष्यादि न्यास। रामायण के ऐसे पारायण-क्रम क्यों प्रचलित रहे जिनमें उत्तरकांड का पाठ ही नहीं होता?

पारायण-विधि विभिन्न विश्रामस्थलों की चर्चा करती है। प्रथम दिवस बालकांड के 77 वें सर्ग की समाप्ति पर, द्वितीय दिवस अयोध्या कांड के 60 वें सर्ग की समाप्ति पर, तृतीय दिवस अयोध्याकाण्ड के 119 वें सर्ग की समाप्ति पर, चतुर्थ दिवस अरण्यकांड के 68 वें सर्ग की समाप्ति पर, पंचम दिवस किष्किन्धाकांड के 49 वें सर्ग की समाप्ति पर, छठे दिन सुंदरकांड के 56 वें सर्ग की समाप्ति पर, सातवें दिन युद्धकांड के 50 वें, आठवें दिन इसी के 111 वें और नवें दिन इसी के 131 वें सर्ग की समाप्ति पर विश्रामस्थलों की परंपरा रही है। इस पारायण-पूर्ति में उत्तरकांड शामिल क्यों नहीं है?

अनुष्ठान-प्रकाश में कामना भेद से अलग अलग कांडों के अनुष्ठान की विधि में पुत्र की कामना बालकांड, लक्ष्मी की अयोध्याकांड, नष्ट द्रव्य प्राप्ति कामना अरण्यकांड नष्ट राज्य प्राप्ति कामना किष्किन्धाकांड, सभी कामनाओं वाला सुंदरकांड व शत्रुनाश कामना वाले लंकाकांड को पढ़ने की सम्मति दी गई। यहाँ भी उत्तरकांड का कोई उल्लेख नहीं।

वाल्मीकि स्वयं पहले सर्ग में नारद जी से जो रामचरित्र सुनते हैं, उसमें भी न सीता-परित्याग का उल्लेख है और न शंबूक वध का। त्रिकालज्ञ नारद जी को नहीं पता रहा होगा?

तो बौद्धिक दृष्टि से यह सीता-परित्याग की कथा अनैतिहासिक लगती है। पर एक आस्तिक दृष्टि से इस कथा को देखते हुए नरेश मेहता इतिहास और प्रतिइतिहास के काव्योचित प्रश्न उठाते हैं। वे लिखते हैं कि-

राम!
आज फिर
एक साधारण ने
तुम्हारी राजसी-गरिमा
और चरित्र-मर्यादा की ओर
अपनी अनाम तर्जनी उठायी है।

जब भी
ऐसी तर्जनी उठती है
तब
राजतंत्र और इतिहास
कोलाहल से भर उठते हैं
क्योंकि
वह मात्र अँगुली ही नहीं होती राम!
उसका एक प्रतिऐतिहासिक व्यक्तित्व होता है,
महत्त्व भी।
हवा में ही सही
परंतु प्रश्न में उठा
अनाम या
मनुष्य मात्र का हाथ
प्रतिइतिहास होता है राम!

◆ ◆ ◆ ◆ ◆

प्रतिइतिहास
सदा अलिखित रहता है
और प्रतिऐतिहासिक
अनाम।

तर्जनी
वह किसी की भी हो
वाणी ही होती है।
यह कोई आवश्यक नहीं कि
शक्ति
केवल मन्त्रों और श्लोकों में ही हो।
अनेक बार
ऐसी ऐतिहासिक अनाम तर्जनी में भी
इतिहास को
प्रतिइतिहास में बदल देने की शक्ति होती है।

यानी यदि इस कथा को सत्य भी मान लिया जाए तो भी एक कविहृदय नरेश मेहता करपात्री जी नहीं बनते, बल्कि एक नये विमर्श को प्रस्तुत करते हैं। इस प्रसंग को सच मानते हुए रजनीश ने राम और सीता के नित्यसंयोग की और अलौकिक प्रेम व अंतरंगता की बात की थी लेकिन इसे सच बताते हुए नरेश मेहता का आस्तिक्य लोक-धर्म के कुछ नये पहलुओं को सामने लाया। हालाँकि वे जिस एक तर्जनी की बात करते हैं वहाँ वे भवभूति के उत्तररामचरित के आधुनिक उत्तराधिकारी भी लगते हैं क्योंकि वाल्मीकीय प्रक्षेप में तो इसे लोक-प्रवाद के रूप में बताया गया है जबकि नरेश मेहता इसे 'साधारणजन' शब्द का प्रयोग कर इसे एक धोबी या आम जनता दोनों के आक्षेप का उत्तर बताते हैं। यानी जहाँ रजनीश उस निर्णय में राम-सीता की अंतरंगता का चरम देखते हैं वहाँ नरेश मेहता उसे निर्वेद की भूमि पर अधिष्ठापित करते हैं।

नरेश मेहता वेदसम्मत बात कहें न कहें, इन दोनों काव्यों और 'संशय की एक रात' में भी वे निर्वेद-सम्मत बात अवश्य कहते हैं। इसलिए उन्हें मैं नई कविता का भक्त-कवि कहता हूँ क्योंकि शांत रस का स्थायी भाव निर्वेद ही है और आधुनिक समय में निर्वेद की कविता यही आकार लेकर विश्वसनीय हो सकती है। संशय की एक रात में भी वही इतिहास-दृष्टि है-'**युद्ध केवल फेन ही नहीं / निर्णय है / जिससे इतिहास बना करता है।**' वहाँ भी वही इतिहासालोचन है कि-'**इतिहास / व्यक्ति को व्यक्ति नहीं / शस्त्र मानता है।**' और यहाँ निर्वेद शांत होकर नहीं, अशांत होने से फलता है। यही सच्ची भक्ति है जो संशय और प्रश्नों के बीच से निकलती है। यानी जैसे रामचरितमानस की कथा उमा-शिव, याज्ञवल्क्य-भरद्वाज और गरुड़-कागभुशुंडि के बीच संशय-समाधान के बीच संभव होती है वैसे ही नरेश मेहता के यहाँ पार्षि्ण और उत्तर के दोलन हैं। और वे इतिहास के या निर्वेद के कवि-संदर्भ उसी समय राज्य और युद्ध के भी संदर्भ हैं। जैसे महाप्रस्थान में युधिष्ठिर से फिर वही इतिहास की विवेचना कराई गई है-

महाप्रस्थान

क्या तुम्हें अब भी लगती है?
अर्जुन! इस वैचारिक चक्रव्यूह में
तुम व्यक्ति के
संकल्प और पुरुषार्थ तक ही

क्यों रुक जाते हो!
जिज्ञासा के केन्द्र में
जो अनाम
विचारहारा व्यक्ति है

जिसका कोई इतिहास नहीं लिखा जाता
बल्कि जिसकी देह को छीलकर ही
हम इतिहास लिखते आये हैं
उसके अर्थ को जानने की चेष्टा की है पार्थ?

नरेश मेहता की इन विश्व-दृष्टियों पर चर्चा हिन्दी साहित्य के वैचारिक विमर्शों में करने की आवश्यकता है। सिर्फ़ भक्ति ही नरेश जी का सम्पूर्ण परिचय वैसे ही नहीं है जैसे तुलसीदास की भी नहीं थी।

(मनोज श्रीवास्तव)
राम-रज, 3-पारिका-फेज 2,
चूना भट्टी, कोलार रोड,
भोपाल-462016 (म.प्र.)
मो.-9425150651
ईमेल-shrivastava_manoj@hotmail.com

अनुक्रम -अंक 215, फरवरी 2023

सम्पादकीय

साधो सबद साधना कीजै

जोश ओ ख़रोश के साथ होशयार रहना / **अजित वडनेरकर/15**

चारों दिशाओं में दिग्विजय यात्रा /**कुसुमलता केडिया/17**

संस्मरणात्मक आलेख

बाबा श्री नरेश मेहता / **वान्या वोरा/20**

आलेख

आधुनिकता के कोहरे को चुनौती देता कवि/ **कैलाशचन्द्र पन्त/24**

कवि-कथाकार : नरेश मेहता/ **उदय प्रताप सिंह/28**

वैष्णवता और माधवता के पोषक नरेश / **सूर्यकांत नागर/32**

मानवीयता के उत्कर्ष की कविताएँ / **आनंद प्रकाश त्रिपाठी/35**

नरेश मेहता का काव्यात्मक औदात्य / **करुणाशंकर उपाध्याय/43**

आधुनिक साहित्य के प्रमुख हस्ताक्षर : नरेश मेहता / **राजेन्द्र परदेसी/49**

उत्सव पुरुष : नरेश मेहता / **विवेक सत्यांशु/52**

वैदिक-चेतना के आर्ष कवि नरेश मेहता / **प्रभु दयाल मिश्र/54**

मंत्रपूता शबरी / **राजेश श्रीवास्तव/57**

एक समग्र व्यक्तित्व के धनी : नरेश मेहता / **ममता श्रवण अग्रवाल/60**

गहरे सामाजिक बोध के कवि : नरेश मेहता / **प्रतावराव कदम/64**

शाश्वत मूल्यों के अनुसंधित्सु हैं नरेश मेहता / **उषारानी राव/68**

नरेश मेहता के काव्य में सांस्कृतिक चेतना के स्वर/ **अनिरुद्ध सिंह सेंगर/72**

वैदिक विचारों का काव्यात्मक स्वरूप / **सरोज गुप्ता/74**

साक्षात्कार

नरेश मेहता से जवाहर कर्नावट की बातचीत/79

संस्मरण

श्री नरेश मेहता अर्थात् सनातन् संस्कृति का स्मरण / **रमेश दवे/82**

श्री नरेश मेहता : मौन मधु हो जाए/ **श्यामसुंदर दुबे/88**

लेखक की कलम से

चाँदनी / **नरेश मेहता/92**

कविताएँ - पुनर्पाठ

पुरुष, अरण्यानी से वापसी / **नरेश मेहता/95**

अनुवाद

एक अविभाजित विश्व (**मूल - अलेक्जेंडर इसेविच सोल्झेनित्सिन) अनु. : विभा खरे/100**

प्रसंगवश

लोक परंपरा में फागुन / **रामशंकर भारती/110**

रिपोर्ताज

कचनार का महाशिवरात्रि मेला /**अखिलेश सिंह श्रीवास्तव 'दादूभाई'/116**

ललित निबंध

लोक विज्ञान की वेदिका / **श्रीराम परिहार/121**

कहानी

अगास से आस / **गिरिजा किशोर पाठक/124**

जीवंत कविता /**अश्विनीकुमार दुबे/128**

शोध आलेख

राजेन्द्र नागदेव के काव्य में पर्यावरण विमर्श/ **कैलास श्रीधर भामरे/132**

कामायनी में प्रतीकों की अवधारणा / **सुषमा देवी/136**

आदिवासी काव्य में : राष्ट्रीय और सांस्कृतिक चेतना / **रागिनी स्वर्णकार/140**

समीक्षा

ज्योतिर्पथ का अविराम पथिक (द्विजेंद्रनाथ सैगल) / **बी.एल.आच्छा/144**

सूखे पत्तों पर चलते हुए (शैलेन्द्र शरण) / **श्याम सुन्दर तिवारी/146**

प्रकृति के अनुपम रंग बादल, बारिश और पतंग के संग (अनीता सक्सेना) / **उषा चतुर्वेदी/147**

पत्रिकाओं का संसार

विश्व में हिंदी / **जया केतकी/148**

प्रतिक्रिया / **सत्येंद शर्मा/149**

पत्रांश/150

जोश ओ ख़रोश के साथ होशयार रहना

– अजित वडनेरकर

जन्म – 1962।
शिक्षा – हिंदी साहित्य में स्नातकोत्तर उपाधि।
रचनाएँ – पाँच पुस्तकें प्रकाशित।
सम्मान – राजकमल प्रकाशन का विद्यानिवास मिश्र कृति पांडुलिपि सम्मान।

'उषा' से रिश्तेदारी : हिन्दी में जोश शब्द का बेतरह इस्तेमाल होता है। इसी से जुड़े जोश-ख़रोश या जोश ओ ख़रोश पद भी बहुत लोकप्रिय है। इसमें उत्साह, औत्सुक्य, व्यग्रता, उमंग, हंगामा, कोलाहल, उत्तेजना, हलचल, आवेग, उत्कण्ठा, लालसा, उत्कटता के साथ धूम-धड़ाके वाली मस्ती आदि शामिल है। जोशीले लोगों में जोशो-ख़रोश होता ही है। इसमें जोश और ख़रोश दो शब्द साफ़ नज़र आ रहे हैं। इनमें से जोश का प्रयोग रोज़मर्रा की हिन्दी में खूब होता है मगर ख़रोश का प्रयोग स्वतन्त्र रूप में नहीं के बराबर होता है। गोकि इसका अर्थ जोर की आवाज, नाद, कोलाहल आदि है। जोश इंडो-ईरानी खानदान से हिन्दी में आया फ़ारसी ज़बान का शब्द है जिसकी वैदिक संस्कृत के 'उषा' शब्द से गहरी रिश्तेदारी है।

उबाल या उफान : बोलचाल की हिन्दी में जोश का प्रयोग चित्त की वृत्ति के सन्दर्भ में किया जाता है जैसे उत्साह, उमंग, लहर, तरंग अथवा अचानक किसी बात से ऊर्जा या शक्ति अनुभव करना वग़ैरह। मगर फ़ारसी समेत उर्दू में इसका प्रमुख आशय है उबाल या उफान। काढ़ा उबालने से ही बनता है और फ़ारसी में काढ़े को जोशान्दा कहते हैं। यह इसीलिए क्योंकि कई तरह की जड़ी-बूटियों को पानी में जोश दिलाया जाता है। उबालने के वजह से आयुर्वेद में ऐसे घोल या आसव को क्वाथ या काढ़ा कहते हैं। संस्कृत में 'क्वथ्' क्रिया का अर्थ उबालना, पकाना होता है। इसीलिए विज्ञान की भाषा में जिस तापमान पर कोई द्रव उबलने लगता है उसे क्वथनांक कहते हैं।

स्वभाव की गर्मी : जोश का मूल आशय ताप से ही आ रहा है, मगर बाद में मनोभाव से जुड़े आवेग, उत्तेजना, खदबदाहट, गरमाहट, मौज, लहर, उमंग और उत्ताप आदि आशय भी व्यक्त होने लगे। यानी स्वभाव अगर वैसा ही हो, जैसा वास्तविक ताप होता है तो इस तरह की व्यंजनाएँ भी जोश के दायरे में व्यक्त होने लगी। इसे थोड़ा और स्पष्ट करते हैं। अग्नि में ख़ास तरह की तीक्ष्णता होती है। प्रचण्डता, उग्रता में जो तेजी, तीखापन है, वे सब अग्नि के गुण हैं। प्रखरता, तीक्ष्णता, प्रबलता की वजह से ही सूर्य को चण्ड, प्रचण्ड भी कहा जाता है। शिव के रौद्र रूप को प्रचण्ड कहा जाता है। दुर्गा को भी चण्डा इन्हीं गुणों के आधार पर कहा गया है। आग का एक अन्य गुण है रफ़्तार, तेज़ी, वेग। धधकती लपटें तेज़ी से फैलती है। क्रोध भी इसी तरह भभकता है।

जोश में होश खोना : उपरोक्त मिसालों से समझा जा सकता है कि आवेगशील लोग क्यों जोश में होश खो देते हैं। अब बात जोश की। अवेस्ता और वैदिक संस्कृत से रिश्तेदारी की।

आमतौर पर प्रकाश, चमक से जुड़ी शब्दावली के आशय अग्नि और ज्ञान की कौंध से जुड़ते हैं। वैदिक शब्दावली में उषा का अर्थ प्रभात, भिनसार, तड़के अथवा अरुणिमा यानी सुबह की लाली होता है। जोसेफ़ एच पीटरसन की डिक्शनरी ऑफ़ मोस्ट कॉमन अवेस्ता वर्ड्स में उषी शब्द है। जॉन प्लैट्स के कोश में इसका पहलवी रूप हुश या होश है जबकि डी.एन.मैकेन्जी की पहलवी डिक्शनरी के मुताबिक अवेस्ताई उशी का पहलवी रूप ओश और इससे बने कुछ अन्य शब्द हैं जैसे ओशोमन्द और ओज़ोमन्द। ओश का अर्थ ज्ञान, बोध, उदय, प्रभात, सवेरा आदि। ओशमन्द का अर्थ है नश्वर और प्रचण्ड। ओज़मन्द का अर्थ है तेजवान, शक्तिशाली, प्रचण्ड। ग़ौर करें, उष, ओष से ही 'ओज' भी विकसित होता दिख रहा है।

तपना, जलना, उबलना : भाषाविज्ञानी एकमत है कि अवेस्ता के उशी, ओश जैसे शब्द वैदिक भाषा के उषस्, उषा जैसे शब्दों के समरूप हैं जिसमें प्रभात, उदय या सवेरा का भाव है। वैदिक उष् क्रियापद (धातु) में ताप, तपाना जैसे भाव भी हैं। पहलवी ओश में पूर्व दिशा का भाव भी है। ज़ाहिर है आशय सूर्य से जुड़ रहा है। सूर्योदय के साथ ही ताप का एक नाम उष्मा भी है। उष्मा के मूल में भी यही उष् है। उष्मा से प्रकाश निकलता है। प्रकृति में उष्मा और प्रकाश का आदि प्रतीक सूर्य ही है जो पूर्व दिशा से उगता है। यही सारे संकेत वैदिक उष् और पहलवी ओश में हैं। वैदिक संस्कृत में उष् से अनेक शब्द बन रहे हैं जैसे उष्, उख, ओष, व्युष, चोष, व्योष्, झष आदि। इन सभी के आशय ताप, प्रकाश, अग्नि व उबलने से जुड़ते हैं। इसी शृंखला का शब्द है जोश। स्पष्ट है, जोश में पहले जलना है, ताप है। फिर उबलना है।

जोश और होश : यह समझना कठिन नहीं है कि 'व' और 'य' वर्ण दरअसल अर्धस्वर हैं। इसी तरह 'य' और 'ज' आपस में बदलते हैं। जैसे यमुना से जमुना। इसी तरह व्योष से जोश अथवा चोष से जोश का सीधा सम्बन्ध भी समझा जा सकता है। फ़ारसी शब्दों का रूपान्तर इसी तरह हुआ है, हम यह नहीं कहेंगे। मगर जोश की वैदिक उष् क्रिया से रिश्तेदारी प्रमाणित है। फ़ारसी में आकर ओश का रूपान्तर होश होता है और इसमें ज्ञान, बोध जैसे भाव स्थायी हो जाते हैं तथा सूर्योदय, प्रभात जैसे भाव इसमें से विलीन हो जाते हैं। पहलवी में सतर्क, जागरूक, सचेत के लिए ओशयार (osyar) शब्द है। इसका अगला रूप फ़ारसी का होशयार है। हिन्दी-उर्दू में यह होशियार बनता है।

आख़िर में ख़रोश की बात : फ़ारसी में ख़रोश का आशय है शोर-गुल, कोलाहल, हल्ला-गुल्ला, हंगामा, चिल्लाहट वग़ैरह। इसका एक रूप ख़ुरोश भी है जिसमें चीख, आर्तनाद, क्रन्दन, मातम, विलाप जैसे आशय भी हैं। भाषाविज्ञानी ख़रोश का रिश्ता संस्कृत के क्रोष, क्रूष से बताते हैं। इनमें भी आर्तनाद, क्रन्दन, विलाप, चिल्लाहट आदि भाव हैं। तो कुल मिला कर जोश और ख़रोश मिलाकर जोश-खरोश और जोश ओ ख़रोश (जोशो-ख़रोश) जिसका अर्थ मिला-जुला आशय उत्साह, आवेग, हल्ला-गुल्ला, उत्तेजना, उन्माद, मस्ती आदि है। कुछ आम मुहावरे भी इससे बनते हैं- जैसे जोश देना यानी उबालना, जोश ऐ ख़ून यानी रिश्तों की गरमी, ख़ून का दौरा तेज़ होना आदि। इसी तरह जोश मारना, जोश में आना जैसे मुहावरे भी हैं जिनका अर्थ है ताव खाना, गरमी खाना, क्रोध करना या जोश में लाना यानी उत्तेजित करना, उत्साहित करना, प्रेरित करना वग़ैरह।

जी-37 , फेज-1, ग्रीन मीडोज
भोजपुर रोड, पी.ओ. मिसरोद,
भोपाल-462047 (म.प्र.)
मो.- 6265739044

चारों दिशाओं में दिग्विजय यात्रा

- कुसुमलता केडिया

इतिहास, समाज विज्ञान और अर्थशास्त्र की गहरी अध्येता और तर्कपूर्ण विवेचना में सिद्धहस्त विदुषी प्रो. कुसुमलता केडिया के वैचारिक आलेखों का शृंखलाबद्ध रूप से प्रकाशन किया जा रहा है ताकि हमारे पाठकों में बौद्धिक उत्तेजना उत्पन्न हो और वे हमारी ज्ञान परंपरा को तार्किक ढंग से आत्मसात कर मौलिक लेखन की ओर प्रवृत्त हों। प्रस्तुत है इस लेखमाला की अगली किश्त 'चारों दिशाओं में दिग्विजय यात्रा।'

पाठकों की प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा रहेगी।

- सम्पादक

स्वदेशी अर्थचेतना की संवाहक।

जन्म - 2 जुलाई 1954।

जन्म स्थान - पडरौना (उ.प्र.)।

शिक्षा - एम.ए., पीएच.डी।

रचनाएँ - अनेक पुस्तकें प्रकाशित।

प्रतापी सम्राट जरासंध को पराजित कर उनके अभिषिक्त पुत्र सहदेव से मैत्री के उपरांत राजसूय यज्ञ के लिये आवश्यक दिग्विजय यात्रा का विचार पाण्डव करने लगे। राजसभा में अर्जुन ने धर्मराज युधिष्ठिर से उत्तर दिशा में अभियान करने की आज्ञा माँगी। राजसभा में उपस्थित भगवान वेदव्यास ने अर्जुन की बुद्धि की बड़ी प्रशंसा की और निर्देश दिया कि अर्जुन देवताओं के द्वारा सुरक्षित उत्तर दिशा की यात्रा करें, भीमसेन पूर्व दिशा की यात्रा करें, सहदेव दक्षिण दिशा की ओर जायें और नकुल पश्चिम की ओर दिग्विजय के लिये प्रस्थान करें। मुनिवर की आज्ञा मानकर चारों भाई दिग्विजय के लिये संकल्पित हुये। तब धर्मराज युधिष्ठिर ने पूजनीय ब्राह्मणों के द्वारा चारों भाइयों के लिये स्वस्तिवाचन कराया और आशीर्वाद दिया। चारों भाई चारों दिशाओं में चल पड़े।

इन दिग्विजय यात्राओं का बहुत महत्व है। क्योंकि वृक्ष-वनस्पति आदि और जीव-जन्तु भी सामान्यत: 5000 वर्षों से यथावत ही हैं। अत: ये यात्रायें भारत के भू-राजनैतिक दावों के पक्ष में ऐतिहासिक साक्ष्य हैं। भारत सरकार को अब अपने बल से इन क्षेत्रों को पुन: भारत से जोड़ने का तथा सघन मैत्री संबंध बनाने का संकल्प लेना चाहिये।

सभापर्व के अध्याय 26, 27 एवं 28 में अर्जुन की उत्तर दिशा में की गई दिग्विजय यात्रा का वर्णन है। सर्वप्रथम अर्जुन ने कालकूट और आनर्त राज्यों को जीता। कुलिंद नरेश ने अर्जुन की वीरता सहज की स्वीकार कर मैत्री कर ली और धर्मराज युधिष्ठिर की प्रभुता स्वीकार कर ली। इसके बाद शाकल द्वीप और प्रतिविन्ध्य पर तथा शाकल द्वीप से जुड़े छ: अन्य द्वीपों पर प्रभुत्व के लिये अर्जुन की उन क्षेत्रों के नरेशों से विकट लड़ाई हुई और अर्जुन ने उन सभी धनुर्धर वीरों को जीत लिया। परंपरा यह थी कि भारत के महान क्षत्रिय अपने से अधिक वीर राजा को या तो स्वयं अनुमान कर या युद्ध में शौर्य की परीक्षा कर फिर अपना सम्राट स्वीकार कर लेते थे और मैत्री संबंध बना लेते थे। इसलिये अगली लड़ाइयों में वे

अपनी सेना सहित विजयी राजा का साथ देते थे। अत: सातों द्वीपों के धनुर्धर राजाओं को और उनकी सेनाओं को साथ लेकर अर्जुन ने प्राग्ज्योतिषपुर पर आक्रमण किया। जहाँ महाराज भगदत्त जैसे महावीर शासन कर रहे थे। महाराज भगदत्त की सेना में चीनी सैनिक, किरात सैनिक और आसपास के समुद्री टापुओं में रहने वाले पूर्वी क्षेत्र के योद्धा सैनिक बड़ी संख्या में थे। आठ दिनों तक भीषण संग्राम होता रहा। इससे महाराज भगदत्त अर्जुन की वीरता से बहुत प्रसन्न हुये और कहा कि मैं तुम्हारी वीरता से प्रसन्न हूँ, तुम क्या चाहते हो, यह बताओ। इस पर महावीर अर्जुन ने कहा कि महाराज, आप मेरे पिताजी के मित्र हैं और मुझ पर भी आपका प्रेम प्रकट है। अत: मैं आपको कोई आज्ञा नहीं दे सकता। यही अनुरोध है कि आप स्वयं प्रेमभाव से महाराज युधिष्ठिर को भेंट दे दीजिये जिससे कि उनका चक्रवर्ती सम्राट पद पर अभिषेक निर्विघ्न सम्पन्न हो। महाराज भगदत्त ने यह स्वीकार किया।

इसके उपरांत अर्जुन ने विस्तृत हिमालय क्षेत्र के अन्तर्गिरि, बहिर्गिरि और उपगिरि नामक राज्यों को जीता और सबसे धन तथा उपहार प्राप्त किये एवं उनसे मैत्री संबंध स्थापित किये। वस्तुत: ये राज्य वही क्षेत्र हैं जिन्हें 18-19 वीं शताब्दी ईस्वी से कजाकिस्तान, तुर्कमेनिस्तान, अजरबेजान, ताजकिस्तान और किर्गिजिस्तान कहा जाता है। उसके पहले तक कजाकिस्तान को किरात देश कहा जाता था। शेष चारों स्तान भी मध्य एशिया के भारतीय क्षेत्र हैं।

इसके साथ ही अर्जुन ने उलूक राज्य पर विजय प्राप्त की। जिसे महाहिमवन्त राज्य भी कहा जाता था। उलूक नरेश ने अर्जुन के साथ प्रचंड युद्ध किया परन्तु अंत में उनकी श्रेष्ठता स्वीकार कर ली और उन्हें सप्रेम रत्नों आदि का उपहार दिया। इसी तरह उलूक के और उत्तरी राज्यों को अर्जुन ने जीता तथा सभी पर्वतीय महारथियों को परास्त कर 'उत्सवसंकेत' कहे जाने वाले सात पर्वतीय राज्यों पर भी विजय प्राप्त की। तदुपरान्त लोहित, त्रिगर्त, दार्व और कोकनद राज्यों को जीता और उरगा नरेश को भी पराजित किया। बाह्लीकों, काम्बोजों, दरदों सहित परमकाम्बोज, ऋषिक और उसके उत्तर (मंगोलिया) आदि को भी जीत कर उन्होंने अनेक श्रेष्ठ अश्व उपहार में प्राप्त किये। ऋषिक नरेश ने उन्हें हरे रंग वाले तथा मोर के समान रंग वाले अनेक अश्व भेंट में दिये। सम्पूर्ण हिमालय क्षेत्र के राज्यों को जीतकर अर्जुन ने किम्पुरुषदेश और हाटकदेश को जीता तथा पवित्र मानसरोवर पर गये। इन सभी क्षेत्रों से उन्हें एक से एक श्रेष्ठ अश्व उपहार में प्राप्त हुये।

तदुपरान्त और भी उत्तर दिशा में जाने पर अर्जुन ने महामेरू पर्वत और उसके चारों ओर मंडलाकार फैले इलावृतवर्ष को देखा। साथ ही विशाल जम्बू वृक्ष को भी देखा, जिसके कारण जम्बूद्वीप नाम प्रसिद्ध हुआ है। उसके पास बहने वाले जम्बूनद में स्नान कर अर्जुन पश्चिम की ओर गये और गन्धमादन पर्वत पर पहुँचे। उसके आसपास के राज्य को भी जीतकर पुन: लौटकर इलावृतवर्ष को जीता।

28 वें अध्याय में अर्जुन के उत्तर कुरू की यात्रा करने की गाथा है जो स्पष्ट रूप से वर्तमान में साइबेरिया और उससे उत्तर स्थित उत्तरी ध्रुव क्षेत्र के नाम से जाना जाता है। वस्तुत: भारत सरकार चाह ले तो इन सभी क्षेत्रों की पहचान भलीभाँति की जा सकती है और करनी चाहिये क्योंकि इन पर हमारा भूराजनैतिक दावा महाभारत के आधार पर बनता है। इन सभी क्षेत्रों से विजय प्राप्त कर और मैत्री कर महावीर अर्जुन इन्द्रप्रस्थ लौट आये और उन्होंने चितकबरे, हरे, मोरपंखी और काले-विविध रंगों वाले घोड़े और उपहार में प्राप्त रत्न महाराज के समक्ष उपस्थित किये। जिससे युधिष्ठिर बहुत प्रसन्न हुये।

महाबली भीमसेन पूर्व दिशा में सर्वप्रथम पांचालों के राज्य गये और वहाँ उन्हें समझा-बुझाकर मैत्री सम्पन की। इसके बाद मिथिला और गण्डक राज्य को जीता। दशार्णनरेश सुधर्मा की

वीरता से प्रभावित होकर भीमसेन ने उन्हें अपना प्रधान सेनापति बना लिया। इसके बाद वे अश्वमेघ देश और पूर्व देश की ओर गये और वहाँ के राजाओं से मैत्री की। तदुपरान्त भीम चेदिराज शिशुपाल के यहाँ गये। शिशुपाल ने भी मैत्री स्थापित की और युधिष्ठिर को मानकर (सम्मानपूर्ण नियमित भेंट) देना स्वीकार किया।

इसके बाद भीमसेन ने अयोध्या के धर्मज्ञ नरेश से कोमलतापूर्ण व्यवहार द्वारा मैत्री संबंध स्थापित किये और उत्तर कोसल के मल्लराज्य को जीतकर अपने अधीन किया। फिर वे पूर्वोत्तर के अनेक राज्यों को जीतते हुये काशी राज्य पहुँचे और काशी राज्य को पराजित कर अपने अधीन किया। तदुपरान्त नेपाल और आस-पास के सब राज्यों को जीतते हुये निषादों को पराजित किया तथा विदेह देश के राजा से मैत्रीसंबंध स्थापित किया। शकों और बर्बरों को भी भीमसेन ने पराजित किया तथा किरात राज्य को भी अपने वश में किया। जरासंध पुत्र सहदेव से पुन: मैत्रीभेंट की और कोसी नदी के तटवर्ती राज्य को जीता। इसके बाद ताम्रलिप्त तथा अन्य समुद्रतटीय राज्यों को जीतकर बहुत सा धन लेकर भीम इन्द्रप्रस्थ वापस आये।

सहदेव ने दक्षिण दिशा में दिग्विजय यात्रा की। सर्वप्रथम इन्द्रप्रस्थ के दक्षिण में शूरसेन राज्य को जीता। फिर मत्स्यराज विराट को अपने अधीन बनाया। इसके बाद निषाद राज्य पर प्रभुत्व जमाया। फिर चंबल के तटवर्तीय राज्य के राजा जम्भकपुत्र सहदेव से उनका घोर युद्ध हुआ और उन्हें जीतकर वे नर्मदा की ओर बढ़े। अवन्ती के राजकुमारों को परास्त कर वे आगे वनप्रदेश के राज्यों को जीतने के लिये बढ़े। फिर और दक्षिण में जाकर पाण्डयनरेशों को जीता तथा किष्किन्धानरेश से भी कई दिनों तक युद्ध करने के बाद मैत्री की।

मार्ग में माहिष्मतीपुरी का राज्य था जो अग्निदेव के द्वारा रक्षित था। सहदेव ने अग्निदेव की प्रार्थना की। तब अग्निदेव प्रसन्न हुये और उन्होंने महाराज नील और सहदेव की मैत्री कराई। पुन: आगे बढ़कर माद्रीकुमार सहदेव सुराष्ट्र तथा सागरीय द्वीप के अन्य राज्यों को जीतकर केरल राज्य, करहाटक राज्य, द्रविड़ राज्य, आन्ध्र और कलिंग तथा अन्य राजाओं को जीता और सबको कर देने को विवश किया। इसके बाद सहदेव ने घटोत्कच का स्मरण किया जो मायाबल से तत्काल उपस्थित हुये और सहदेव ने घटोत्कच को श्रीलंका भेजा। श्रीलंका के विभीषणवंशी सम्राट ने घटोत्कच का सम्मान किया और उन्हें उपहार सहित विदा किया।

नकुल ने पश्चिमी देशों की दिग्विजय यात्रा की। रोहतक पर्वत के आस-पास के राज्य तथा मारवाड़ राज्य और महोत्थ राज्य को जीता और फिर दशार्ण, त्रिगर्त, मालव (पंचाब का मालव प्रदेश), पंचकर्पट तथा माध्यमिक देशों पर विजय प्राप्त की। उन्होंने आभीरों के गणराज्य से भी मैत्री संबंध स्थापित किया और हूण नरेश से मैत्री की। इन सब राजाओं ने प्रेमपूर्वक ही नकुल से मैत्री संबंध बनाया। मद्र देश के राजा शल्य से भी इसी प्रकार की मैत्री हुई। इसके बाद यवनों और शकों को जीतकर उनसे उपहार लेकर नकुल इन्द्रप्रस्थ वापस लौट आये।

इस प्रकार चारों दिशाओं की दिग्विजय यात्रा सम्पन्न कर जब चारों पाण्डव अपनी राजधानी आ गये तब महाराज युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ की दीक्षा ली और फिर सभी राजाओं तथा ब्राह्मणों और सगे-सम्बंधियों तथा प्रजा के सभी वर्गों को राजसूय यज्ञ का निमंत्रण भेजा। राजसूय यज्ञ की तैयारियाँ प्रारंभ हो गईं जिसका विस्तार से वर्णन महाभारत में है। सभी देश के राजाओं के लिये यथायोग्य सत्कार और भोजन-विश्राम आदि की व्यवस्था की गई थी तथा सभी राजा आकर यथास्थान निवास कर राजसूय यज्ञ में सहभागिता की प्रसन्नता पूर्वक तैयारी करने लगे।

(क्रमश:)

ए 142, आकृति हाईलैण्ड
डाकघर-फंदा, भोपाल 462030 (म.प्र.)
मो. 8989931954

बाबा श्री नरेश मेहता

– वान्या वोरा

आप श्री नरेश मेहता जी की पुत्री हैं। अलाहाबाद में जन्मी वान्या उच्च शिक्षा प्राप्त हैं। अरण्य फार्म की निदेशक हैं जो ऑर्गेनिक और इनडोर खेती के लिए कार्य करता है।

गर्मियों की एक सुबह, मधुमालती के फूलों से लदी लता वाला आँगन, सामने के पुराने घर की दीवार पर सुबह की नरम धूप और तौलिये से रगड़ कर मेरा मुँह पोंछते हुए कहना–'चंद्रमा निकला' बाबा की पहली स्मृति। बचपन की अधिकतर यादों में केवल बाबा ही याद आते हैं। मेरा मुँह पकड़ कर मेरे बाल बनाना, लोरी में 'वन्दे मातरम् या कभी–कभी' 'नन्हीं परी सोने चली' माथे पर थपकी देते हुए उनका मुझे सुलाना, यह सब मेरी पहली स्मृति का हिस्सा हैं।

बाबा मुझे वन्दे मातरम् क्यों सुनाते थे यह तो पता नहीं, लेकिन बड़े होने पर जब भी कोई मेरे ready to take challenge वाले attitude पर टिप्पणी करता तो मैं सदैव हँस कर कहती कि 'बचपन में मैंने वन्दे मातरम् की लोरी सुनी है, उसी का परिणाम है।'

माता–पिता का अवचेतन मन शायद यह जानता है कि उन्हें अपनी सन्तान को इस संसार के लिए कैसे तैयार करना है और वे उस गीली मिट्टी को उसी अनुकूल गढ़ने लगते हैं। शायद इसलिये वन्देमातरम्। पता नहीं स्मृतियाँ सर्दियों में ओढ़े लिहाफ के अंदर का कुनकुनापन जैसी होती हैं। माँ रसोईघर में तरह–तरह के व्यंजन बनाते हुए याद आती हैं। सर्दियों में शाम को रसोई में अँगीठी के आसपास जमीन पर आसन बिछाकर हम चारों–माँ, बाबा, दादा (मेरा बड़ा भाई बाबुल / ईशान) और मैं बैठ कर भोजन करते और फिर माँ लोहे की कढ़ाई में बालू डाल कर मूँगफली सेंकती थीं। वो अँगीठी की गर्माहट और ताजी सिकीं मूँगफली को छीलकर, दानों को हथेली के बीच में रगड़ कर, उसके ऊपर का पतला छिलका फूँक कर उड़ाने के बाद खाने में जो स्वाद आता था, वैसा स्वाद फिर जीवन के किसी भी पड़ाव पर मूँगफली खाने में नहीं आया।

मैं छोटी थी तो लगता था कि हमारे घर में हर समय त्यौहार का सा वातावरण है। बाबा के व्यक्तित्व का उत्सव भाव उस आयु में समझ के परे था। चूँकि बाबा को तरह–तरह के व्यंजन खाने का शौक था तो सर्दियाँ आई नहीं कि हर दूसरे दिन गाजर हलवा बनाया जाता। बरसात आई तो भुट्टे का कीस और गरम–गरम अनरसे बनते और गर्मियों में आए दिन आमरस रोटी या कभी यदि मेहमान भोजन पर आये तब बाबा आम के छोटे–छोटे टुकड़े करते फिर उसमें कंडेन्स मिल्क मिलाया जाता और एक बड़ी सी परात में बर्फ डाल कर बीच में आम का यह मिश्रण रखा जाता ठंडा करने के लिए। इन सारी ऋतुओं के बीच में होली, दीवाली, दशहरा छूटता नहीं था। गुझिया, सूजी के लड्डू, मोहनथाल और माँ के हाथ की बेसन की सेव से बचपन

में खाई दाल–रोटी बिलकुल याद नहीं है। यही सब याद है। माँ ये सब कुछ घर पर ही बनाती थीं और बाबा किसी ना किसी रूप में उनका हाथ बँटाते थे।

बाबा की एक खास आदत थी, वो सीटी बजाते थे। जो सीटी कम बाँसुरी ज़्यादा लगती थी। वो सब काम करते समय, सिवाय लेखन के समय, सीटी पर कोई धुन बजाते रहते थे, जैसे अपने में तल्लीन, आनंद भाव से कोई योगी बाँसुरी बजा रहा हो।

उस समय उनका यह भाव समझ नहीं आता था। बस उनकी सीटी बहुत मधुर लगती थी और यह कि हमारे यहाँ हर समय सब कुछ कितना खिला–खिला लगता है, हमेशा अच्छा–अच्छा खाना बनता है। दूसरों के यहाँ सब प्रतिदिन एक जैसा खाते हैं और लोग ज़्यादा हँसते भी नहीं हैं।

बाबा इतनी जोर से हँसते थे, कि लगता था कि उनके साथ घर की सारी दीवारें, खिड़कियाँ और दरवाजे तक जैसे खिलखिला कर हँस पड़ते हों। माँ मुस्कुराती थीं और बाबा दिल खोलकर हँसते थे। दादा माँ की तरह मुस्कुराता था और मैं बाबा की तरह हँसना सीख गयी थी। मुझे याद नहीं कि कभी माँ और बाबा ने आपस में एक–दूसरे से ऊँची आवाज में बात की हो। दोनों में एक अद्भुत समरसता थी।

माँ अध्यापिका थीं, सुबह जातीं और शाम को स्कूल से वापस लौटतीं। बाबा अक्सर शाम को फाटक पर खड़े होकर सीटी बजाते हुए उनके स्कूल से लौटने की प्रतीक्षा करते। फाटक के सामने से जाती हुई सीधी सड़क पर नीली छतरी पकड़े हुए जैसे ही माँ दिखती, बाबा के चेहरे पर एक हल्की मुस्कान आ जाती थी। उस समय तो हमें यह नहीं दिखता था क्योंकि दादा और मेरा बस एक ही काम होता था कि कौन दौड़ कर माँ के पास पहले पहुँचता है, लेकिन वर्षों बाद भी माँ के दिखते ही बाबा के मुख पर आई वो स्मित मुस्कान नहीं भूलती। बाबा के पास एक स्कूटर था जिससे वो मुझे स्कूल छोड़ने और लेने जाते थे। दादा चूँकि आयु में मुझसे बड़ा था वो कम्पाउण्ड के दूसरे लड़कों के साथ स्कूल जाता था। मेरा और बाबा का स्कूल से लौटते समय का सवा वाक्य का गुदगुदा देने वाला प्रश्नोत्तर प्रतिदिन होता। वो पूछते–'पीछे कौन बैठा है।' और मैं कहती 'आम' (हम की जगह आम और वो खिलखिलाकर हँस देते।

मुझे और दादा दोनों को इलाहाबाद के सबसे अच्छे और महँगे कॉन्वेंट स्कूल में डाला गया था। आज लगता है कि उस समय उस स्कूल की फ़ीस उनके आर्थिक सामर्थ्य पर खिंचाव अवश्य डालती होगी। लेकिन हमारी नींव को मजबूत बनाने के लिए उन दोनों ने कोई कसर नहीं छोड़ी।

मुझे स्कूल में एक बात से बड़ी परेशानी होती। जब कोई यह पूछता था कि तुम्हारे पिता करते क्या हैं? मेरे लिये तो बाबा मतलब आनंद और जब वे लिख रहे होते थे तो लगता था कि एक गंभीर व्यक्ति तखत पर आसन लगाये बैठा है। सामने चौकी पर स्याही से भरी दावत से लिखे हुए कागज दबे रखे हैं और वो कोहनी को चौकी पर टिकाये, अँगुली के बीच में कलम दबाए, विचार मुद्रा में किसी दूसरे लोक में हैं जिसका मैं हिस्सा नहीं हूँ। बाबा जब लेखन कर रहे होते, तब उनके चारों ओर एक अनकही–अदृश्य लक्ष्मण रेखा खिंच जाती, जिसे पार करना मना था। याद नहीं की कभी माँ ने या बाबा ने कहा हो कि जब वे लिख रहे हों तो उन्हें तंग न किया जाये। लेकिन उनका पूरा व्यक्तित्व ऐसा हो जाता था कि कोई भी उस अदृश्य लक्ष्मण रेखा के उस पार नहीं जाता। अब कक्षा के सहपाठियों को इतना सब कुछ कैसे समझाया

जाये तो सिर्फ यही कहती कि मेरे पिता लेखक हैं। और घर पर ही रह कर प्रतिदिन नहीं, कभी-कभी लिखते हैं। इसपर बच्चे और भी अचंभित होकर पूछते 'अच्छा ऑफिस नहीं जाते तो करते क्या हैं?' अपनी झेंप मिटाने के लिए मैं कह देती-'हाँ जाते हैं सिविल लाइंस में लोकभारती प्रकाशन।' मुझे लगता कॉफ़ी हाउस में बाबा साहित्यकारों से चर्चा करते हैं।

शाम को नित्य नियम से चौराहे पर जो सड़क संसद (इस गोष्ठी को यह नाम हम लोगों ने दिया था) लगती है जिसमें इक्केवाले से लेकर साहब और परचूरण की दुकान मालिक से लेकर श्री नरेश मेहता तक साथ में बैठ कर गोष्ठी करते हैं। यह सब काम नहीं हो सकता, केवल एक लोकभारती है जहाँ रमेश अंकल (रमेश ग्रोवर), दिनेश अंकल (दिनेश ग्रोवर) और बाकी सब लोग काम करते दिखते हैं तो यही जगह बताना सही रहेगा। छोटी कक्षा में तो लोकभारती का बहाना बना देती परन्तु जब बड़ी कक्षा में पहुँच कर भी, यह कहने पर कि मेरे पिता हिन्दी के लेखक हैं और सामने वाले की वही प्रतिक्रिया होती तो मैं मौन हो जाती थी। लेकिन बचपन में स्कूल के स्पोर्ट्स डे और annual day function पर जब बाबा खद्दर सिल्क का बंद गले का सूट, साथ में गोल्डन फ्रेम का चश्मा और माँ जूड़ा बना कर खद्दर सिल्क की साड़ी पहन कर स्कूल आते तो मेरे माँ-बाबा कक्षा के दूसरे बच्चों के मम्मी-पापा से अलग और ज्यादा संभ्रांत लगते। सब उनकी ओर एक बार मुड़ कर अवश्य देखते, तब लगता था कि ये दोनों सबसे अलग हैं, विशिष्ट हैं।

बाबा, श्री नरेश मेहता एक कवि हैं यह परिचय उनकी पहली कविता पढ़ने पर हुआ। 'निज पथ' इस कविता को मैंने न जाने कितनी बार स्टेज पर बोला होगा। मैं किसी प्रतियोगिता में या वैसे ही केवल बाबा की ही कविताएँ पढ़ती थी। माँ मुझे स्टेज पर कविता बोलना, डिबेट बोलना ये सब सिखाती थीं। बाबा ने कभी भी न तो अपनी कविता का अर्थ समझाया और न कभी उसे किस प्रकार से बोलना चाहिए, यह सिखाया। वो बस एक बार अपनी कविता को पढ़कर सुनाते थे, और उस एक ही बार सुनने से जैसे उस कविता के भाव का आभास हो जाता था।

मैंने यूनिवर्सिटी तक आते-आते उनका तब तक का लिखा साहित्य काफी कुछ पढ़ लिया था, तो लगा ऐसा काव्य और साहित्य लिखने वाला व्यक्ति कितनी सरलता से हमारे आसपास रहता है। उनका इतनी सहजता से आँगन की हेज को एक जैसा काट कर उसमें से पुरानी सूखी लकड़ियाँ बीन कर उसे व्यवस्थित करना या फिर सर्दियों की 'धूप' में बैठकर बड़े इत्मिनान से शेविंग करना जैसे न कोई दबाव, न कहीं जाने की कोई जल्दी गर्मियों में इलाहाबाद में बिजली की हमेशा समस्या रहती थी और सारी परीक्षाएँ गर्मियों में ही होती थीं। दोपहर को पढ़ते हुए अगर मुझे नींद आ जाती तो बाबा ताड़ का हाथ का पंखा गीला करके मेरे ऊपर पंखा झलते हुए वहीं अपनी सीटी पर 'जाने कैसे सपनों में खो गईं अँखियाँ' धुन बजाते रहते या उस भयंकर गर्मी में अपनी रचना लिख रहे होते। अब लगता है वे कोई साधारण व्यक्ति नहीं रहे होंगे क्योंकि उन्हें अपने चारों ओर हो रहे वातावरण का कुछ व्यासा नहीं था, शायद इसीलिए वो इतनी आसानी से बरामदे में रखे तखत, जिसके आस पास हम सबकी दिनचर्या घटित होती रहती, उस तखत पर बैठ कर प्रतिदिन स्नान के बाद गायत्री का ध्यान करते या फिर विचार करते और उन्हें कोई परेशानी नहीं होती।

मैंने जब NCC ज्वॉइन की तो उसके अगले वर्ष 26 जनवरी की इलाहाबाद के आर्मी ग्राउंड की परेड को लीड

करने के लिए मेरा चयन हुआ था। बाबा ने बड़े उत्साह से मेरे मेडल्स को चमकाया और कपड़े से रगड़ कर जूते चमाचम किए। मेरे बालों से बने फिगर ऑफ़ 8 के ऊपर NCC cap को ठीक करते हुए नीचे से ऊपर तक मेरी पूरी यूनिफार्म का निरीक्षण किया था। पिता का यह स्नेह उस समय आपको समझ में नहीं आता है क्योंकि आप बहुत कुछ करने की जल्दी में होते हैं और जबतक समझ में आता है तबतक समय का प्रवाह इतनी दूर ले जा चुका होता है कि सिवाय स्मृतियों के हाथ में और कुछ नहीं बचता...

बाबा मुझे कभी भी स्टेशन पर छोड़ने नहीं आये। चाहे मैं NCC कैम्प में जा रही हूँ या किसी डिबेट प्रतियोगिता के लिए जा रही हूँ। यदि मैं इलाहाबाद के बाहर जा रही हूँ तो वो स्टेशन पर छोड़ने नहीं आते थे। घर पर मेरा होल्डॉल बाँधने से लेकर पानी की बोतल भरने तक पूरी तैयारी करते और करवाते लेकिन स्टेशन छोड़ने नहीं आते। मैंने इस बारे में एक बार माँ से पूछा था, तो उन्होंने कहा 'बाबा तुम्हें जाता हुआ नहीं देख सकते।' मैं बाबा के लिया क्या थी यह नहीं बता सकती लेकिन इतना जरूर जानती थी कि अगर मुझे कष्ट हुआ तो माँ को उनकी व्याकुलता सँभालना मुश्किल हो जाता था। इसीलिए हो सकता है वो मुझे कभी प्याज और भिंडी नहीं काटने देते थे क्योंकि प्याज़ काटने से मेरी आखें गीली हो जाती थीं और भिड़ी से अँगुलियाँ चिपचपी। माँ ने मुझे ये काम दिया नहीं कि तुरन्त किसी बहाने से मुझसे सब्जी लेकर स्वयं उसे काटने लगते थे। बाबा की इस हरकत पर माँ का नाराज होना स्वावाभिक–'आप इस लड़की को बिगाड़ कर धूल कर रहे हैं, दूसरे के घर जाएगी तब कौन करेगा।' और मैं बाबा की आड़ लेकर कहती–'माँ क्यूँ गुस्सा हो रही हो धूल में ही फूल खिलते हैं।' और हम सब हँस देते। बाबा के अंदर एक ममत्व था जो हमेशा मेरे और दादा के लिये छलकता रहता था, वो दादा के लिए कहते इस लड़के में सारी संभावनाएँ हैं।

हमारे घर ने एक वाक्य या प्रश्न कह लीजिए बहुत चलता था। अगर हम दुविधा में होते तो बाबा से पूछते 'बाबा आपका ब्रह्म क्या बोलता है।' बचपन में मुझे भ्रम और ब्रह्म के बीच का अंतर मालूम नहीं था, तो मैं पूछती बाबा आपका भ्रम क्या कहता है फिर वो जो भी कहते हम सबको वही मान्य होता। मेरे विवाह के लिए उन्होंने केवल एक सम्बन्ध और एक ही लड़का देखा। माँ को पहली बार बाबा के इस निर्णय पर व्याकुल देखा और सुना था वो कहतीं–'आदमी आलू खरीदने भी जाता है तो चार दुकान देखता है, आप अपनी बेटी के लिए जीवनसाथी ढूँढ़ रहे हैं। एक दो और संबंध तो देखिए, अभी उसकी उम्र ही क्या है।' और बाबा उतनी ही निश्चिंतता से कहते 'रानी तुम चिंता मत करो इस संबंध के लिए मेरा ब्रह्म बोलता है।'

जब दोनों बम्बई में मेरे होनेवाले ससुराल से मिल कर वापस लौटे तब मैंने माँ से नहीं बल्कि बाबा से पूछा था 'बाबा आपने सुधीर (मेरे पति) में क्या देखा।' और उन्होंने अंग्रेजी में कहा 'I saw poetry in his eyes' मैं इस वाक्य का मतलब नहीं समझी थी और न मैंने कभी समझने की या जानने की कोशिश की। मेरे लिये यह मेरे पिता का ब्रह्म वाक्य था और उसी विश्वास का हाथ थाम मैं अपने नये संसार की ओर चल पड़ी थी।

52, एन आर आई कॉलोनी
कोहेफिज़ा, भोपाल
(म.प्र.) 462001

आधुनिकता के कोहरे को चुनौती देता कवि

– कैलाशचन्द्र पन्त

जन्म – 26 अप्रैल 1936।
शिक्षा – एम.ए.।
रचनाएँ – छः पुस्तकें प्रकाशित, कतिपय सम्पादित।
सम्मान – पं. ब्रजलाल द्विवेदी अखिल भारतीय साहित्यिक पत्रकारिता सम्मान सहित अनेक सम्मान।
विशेष – मंत्री संचालक हिंदी भवन, भोपाल।

श्री नरेश मेहता के काव्य की गंभीर अध्येता डॉ. मीरा श्रीवास्तव ने अपने शोध आलेख में नरेश जी के काव्य को आधुनिकता से आगे का सिद्ध किया है। यह स्थापना कुछ विस्मित करने वाली है। लेकिन जब वे आगे लिखती हैं–'अकेलापन, अजनबीपन, पश्चिम का भोगा हुआ सत्य जो अब तक बना हुआ है, भारत का, महानगरों को छोड़कर, कहीं नहीं। भारत में यह ओढ़ा हुआ है, फैशन परस्ती में। जिस देश में पड़ोसी तक अकेले नहीं रहने देते, नातेदार भी आकर ठहर जाना, हक समझते हों वहाँ चार आदमी अकेलेपन का राग अलापते रहें तो उससे देश का मिजाज नहीं बदल जाता।' इस तथ्य को अधिक स्पष्ट करते हुए वे लिखती हैं–'गाँव, कस्बों, छोटे शहरों से बना यह विशाल भारत अभी भी मनुष्यता को बनाए हुए है– सिर्फ दिखावे के लिये ही नहीं, आंतरिक संवेदना के रूप में भी।' स्वीकार करना होगा कि आयातित विचार भारत के परिप्रेक्ष्य में सर्वथा असंगत हैं। भारत में शाश्वत सत्य ही स्वीकार किया जाता है।

इसी संवेदना से प्रभावित होकर नरेश जी जब सृजन में प्रवृत्त हुए तो पश्चिमी सिद्धान्तों से संक्रमित एक समूह ने उनकी कविता को कभी वैष्णवी, कभी प्रतिगामी और न जाने क्या–क्या कहा। इससे सर्वथा अविचलित कवि ने तो अपने नये पथ का संधान करने से पहले ही लिखा था–

दाता,
दी है फकीरी तो देना संकल्प भी

और अपनी सृजन यात्रा पर चलते हुए भारतीय शास्त्रों की प्रकृति के साथ एकरूपता का गायन करने में तल्लीन हो गया। यहाँ हमें नरेश जी की इन पंक्तियों का महत्व समझ में आ जायेगा–

राजपथ रथ के लिए
पगबाट है पग के लिए
सब मार्ग की अपनी दिशा, अपने क्षितिज,
हम क्या करें?
आग्रह करो मत इस तुम्हारे द्वार को ही मान लें
भगवान –
यह (जन) यहाँ से अलग होता है
यह (पथ) यहाँ से अलग होता है।

आधुनिकता का नारा लगाने वालों को उन्होंने शाश्वत सत्य का पथ दिखाया। यहीं बस नहीं करते। डॉ. प्रभाकर श्रोत्रिय नरेश जी द्वारा दूसरे तार सप्तक में लिखे गए वक्तव्य की पंक्तियों का उल्लेख करते हुए कहते हैं–नया तो मेरा युग है, प्रकृति है, तथा सबसे नया मैं हूँ। 'यहाँ आत्म स्वीकार के साथ दंभ का अंश भी देखा जा सकता है, परन्तु उनके ऐसे कथन किसी हद तक नये की खोज का आत्मविश्वास भी प्रकट करते हैं।' और यही तो उनके संकल्प में व्यक्त हुआ था।

डॉ. श्रोत्रिय की इन पंक्तियों से डॉ. मीरा श्रीवास्तव के इस

कथन की पुष्टि होती है कि नरेश मेहता का काव्य आधुनिकता से आगे है। नरेश मेहता इस विचारगत-विशिष्टता को अधिक स्पष्टता से रेखांकित करते हैं-

आओ
हम सब अपने-अपने नाम खोज निकालें
भीड़ों की असावधानियों से जो
कुचल गए हैं
क्योंकि वे मूल्य हैं
अपने को जानने के लिए-कि
हम कब लोग होते हैं
और कब नहीं?
तुम्हारे पैरों के नीचे
मेरा नाम कहीं दब गया है
उठा लेने दो-
मेरे लिए वह मूल्य है।

यह जो पैरों तले कुचले जा रहे थे, उनमें वे सारे मूल्य भी शामिल थे, जो भारतीय संस्कृति के सातत्य में गढ़े गए थे। उन मूल्यों को पुनर्जाग्रत करने और उन्हें खोजने का दायित्व उठाते हुए ही नरेश जी ने लिखा था-'सबसे नया मैं हूँ।'

यहीं पर समझा जा सकता है कि नरेश जी ने पथ से अलग होने की बात क्यों कही थी? वे भारत और भारतीयता के प्रतीक बनकर अपाक्तेय हो गए। इन पंक्तियों को पढ़कर कवि की स्व-चेतना का ज्ञान तो होता ही है, साथ ही साहित्यकारों के लिए एक आदर्श भी स्थापित कर देता है कि खेमेबंदी के बीच अपनी परंपराओं को विस्मृत कर हम आत्मविस्मृति से कैसे बच सकते हैं। भीड़ तो नामों को केवल कुचल सकती है।

प्रश्न किया जा सकता है कि आखिर नरेश मेहता की विचारधारा क्या थी? इस संदर्भ में आलोचक डॉ. प्रभाकर श्रोत्रिय का कथन उद्धृत करना समीचीन होगा। नरेश मेहता रचनावली की भूमिका में वे लिखते हैं-'नरेश मेहता उन आधुनिक कवियों में हैं, जो तमाम आयातित विचारों और प्रवृत्तियों के लिए खुले रहते हुए भी उनकी अधीनता स्वीकार नहीं करते, इतना ही नहीं सतत् एक आधुनिक भारतीय कवि की उपस्थिति भी दर्ज कराते हैं। वे निषेध नहीं करते, वरन् अपरिहार्य हो उठे आयातित विचारों और विचारधाराओं के बीच अपनी ही संस्कारगत प्रज्ञा से नई लपट उठाते हैं, अपने भीतर से विचारों और मूल्यों का संधान करते हैं, जो वैकल्पिक या 'प्रति' नहीं है, स्वयं संकल्प हैं, जिनकी सन्दर्भवत्ता भी है, प्रासंगिकता भी और सनातनता भी।'

नरेश जी का हिन्दी कविता को यही सबसे महत्त्वपूर्ण अवदान है। स्वयं उनके शब्दों में -

आओ
हम सब अपने-अपने नाम खोज निकालें
भीड़ों की असावधानियों से जो
कुचल गए हैं
क्योंकि वे मूल्य हैं
अपने को जानने के लिए-कि
हम कब लोग होते हैं
और कब नहीं?

क्या यह कवि उन सभी को ललकार नहीं रहा, जो 'स्व' को भूलकर भीड़ बढ़ाने के उपक्रम कर रहा है और आयातित विचारों में ही मगन है? इसकी पुष्टि इन पंक्तियों में ज्यादा मुखर हो उठी है-

तुम्हारे पैरों के नीचे
मेरा नाम कहीं दब गया है,
उठा लेने दो
मेरे लिए वह मूल्य है।

इससे सहज ही समझा जा सकता है कि हिन्दी के आलोचकों ने क्यों इस महान प्रतिभा की उपेक्षा की। यह अलग बात है कि अन्ततः उनकी कविताओं की ज्योति के समक्ष वे सभी आलोचक नतमस्तक हुए और हिन्दी आलोचना में सांस्कृतिक नवोन्मेश हुआ।

नियति ने नरेश जी को अनेक विचित्र परिस्थितियों से गुजरने को बाध्य किया था। बचपन से ही एकाकीपन के अनुभव से लेकर समकालीनों के बीच रहकर भी अकेलापन सदा बना रहा। इसी उहापोह के बीच धरमपुरी, नरसिंहगढ़, उज्जैन, बनारस, दिल्ली और लखनऊ होते हुए जब इलाहाबाद पहुँचे तब तक वे अपने आंतरिक संघर्ष से उबर चुके थे। छात्र जीवन में ही वेदों, उपनिषदों का अध्ययन पूरा कर लिया था। साहित्य के क्षेत्र में जब पदार्पण किया तब प्रगतिशील लेखक संघ से लखनऊ में निकट सम्पर्क में आए। युवा मन को क्रान्ति, विद्रोह जैसे शब्द आकर्षित तो करते ही हैं। उनके बीच रहकर नरेश जी ने उस कम्युनिस्ट पथ को स्वीकार कर लिया था जो उनकी संस्कारगत मनोभूमि के अनुकूल नहीं था। इसीलिए जब 1955 में एक गोष्ठी में प्रगतिशीलता के नाम पर चाहे भाषा हो, चाहे परपंरा या संस्कृति भारतीयता मात्र की जो खिल्ली उड़ाई गई थी, इससे नरेश मेहता का चिन्तन ही गड़बड़ा रहा था। फलस्वरूप तथा कथित प्रगतिशील विचारधारा से ही मोहभंग हो रहा था। इस घटना की चर्चा करते हुए श्रीमती महिमा मेहता ने अपनी पुस्तक 'उत्सव पुरुष : नरेश मेहता' में लिखा है–

'नरेश जी यह जानते थे कि वे उस समय की सबसे मान्य विचारधारा के विरुद्ध अकेले खड़े होने की स्थिति में नहीं हैं और उसके साथ रहना भी उन्हें संभव नहीं लग रहा था तथाकथित चिन्तनधारा के साथ रहने का अर्थ था सम्पूर्ण भारतीयता, आज तक के भारतीय चिन्तन, भारतीय परम्परा, संस्कृति सबको प्रतिक्रियावादी मानकर नकार देना, जो इन्हें अपने सन्दर्भ में सही नहीं लग रहा था। पैरों के तले से जमीन खिसक रही थी और नयी जमीन अभी मिली नहीं थी। बाहर–भीतर की परिस्थितियों का दबाव मन को विचलित कर रहा था। जिस कम्युनिस्ट विचारधारा से प्रतिबद्धता के कारण आल इंडिया रेडियो की सरकारी नौकरी छोड़ी थी, अपने सृजनात्मक चिन्तन को जीवित रखने लिए अब इसी को दाँव पर लगाना था, जो आसान नहीं था। और अपने सृजन के लिये नयी भूमि और भाषा की तलाश किये बिना यह संभव भी नहीं था।'

इसी मानसिकता के अन्तर्द्वन्द्व के चलते नरेश मेहता कभी आकाश को, कभी धरती पर रंग बिखेरते फूलों को, कभी गरजते बादलों को और कभी मादक हवाओं को निरन्तर ताकते रहते। वे भीतर से स्वयं को मथ रहे होते, पर देखने वाले को आभास होता कि वे अपने को खोए हुए शून्य में तल्लीन हैं। प्रकृति से एकाकार होने की यह साधना अन्ततः सिद्धि तक पहुँची और 'उत्सवा' में उन्होंने लिखा–

कौन विश्वास करेगा कि फूल भी मंत्र होता है/ केले के पत्ते पर पड़ी बूँद क्या चरणामृत का स्मरण नहीं करवाती/अपने फूलों को देता पादप प्रार्थना ही तो कर रहा होता है।

आदि पंक्तियाँ उनकी नयी काव्य भूमि और उसके लिए उपयुक्त भाषा के रूप में सिद्धि ही तो कही जा सकती हैं। प्रकृति में एकाकार हुए बिना ऐसी भाषा अवतरित नहीं हो सकती।

इस नई भाषा और भूमि को पा जाने के बाद ही नरेश जी का 'पथ बदलना' और दाता से संकल्प की याचना करना, क्या किसी ऋषि की साधना नहीं कही जायेगी। इसे तल्लीनता या एकाग्रता भी कहा जा सकता है। इसी बात को महिमा जी ने बहुत सही समझा था। उन्होंने लिखा–'लेखक बनना कितना कठिन है। जिन्दगी में अपने ही सुख, दुख क्या कम होते हैं, जो काल्पनिक संसार बसाकर काल्पनिक पात्रों के (जो समाज से ही उठाये जाते हैं)। सुख–दुःख में डूबे रहो। सृजनधर्मा के लिये शायद यह आवश्यक शर्त है।' जब इस कसौटी पर हम नरेश जी के उपन्यास 'वह पथ बंधु था' और 'उत्तर कथा' को कसते हैं तब जान पाते हैं कि कालजयी रचना की वास्तविक कसौटी क्या है?

इस नयी काव्य भूमि और काव्य भाषा को 'उत्सवा' की अनेक कविताओं से समझा जा सकता है। इतिहास और द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के नारे का शोर मचाने वालों को सांकेतिक भाषा में अपनी नई भावभूमि का सन्देश देते हुए 'इतिहास और प्रार्थना' कविता में वे लिखते हैं –

इतिहास किसी भाषा का नाम नहीं
और न ही किसी उदात्त मानवीय संबंध का नाम
वह तो शक्ति के लिये किया गया
नितान्त अमानुषी रक्त स्नान है
प्रार्थना
हाँ प्रार्थना ही तो है,
जो न केवल एकान्त की
बल्कि सम्पूर्ण स्वत्व की
ऋषभ-गांधार वाली पीपल भाषा है।
समर्पण का ऐसा विचार
जैसा कि कोई फूल होता है।
फूल वनस्पति की स्वाहावाणी है
और प्रार्थना मनुष्य की
इसीलिए
प्रति इतिहास हो जाने का नाम नहीं
बल्कि इतिहास से सर्वथा उदासीन होकर
वनस्पति हो जाने का नाम ही प्रार्थना है।

एक कठिन काव्य भूमि के लिए वैसी ही कठिन भाषा को प्राप्त कर लेना, जो अपनी अभिव्यक्ति में कवि के स्वत्व को अभिव्यक्त कर सके, निश्चित ही उस प्रार्थना का ही परिणाम था जो जीवन भर उनकी संगिनी बनी रही। उनके आलोचकों ने उनको वैष्णव कवि कहकर उपहास का विषय बनाना चाहा। इसका उत्तर देते हुए कवि नरेश मेहता बहुत ही सौम्य शब्दों में समझाते हैं–

द्वार पर जो भी गुहार देता है
वैष्णव है।
अयाचित अतिथि यह करपात्री है
किन्तु दाता है
न जाओ किसी के स्वरूप पर
स्वागत करो,
इस यायावरी संकीर्तन करती हुई
असंग वैष्णवता का स्वागत करो।

सन्त कवि नरसी मेहता ने लिखा था–'वैष्णव जन तो तेणे कहिए जे पीर पराई जाणे रे।' उसी मनोभूमि पर हिन्दी का यह ऋषि–कवि मनुष्य से लेकर प्रकृति तक अपना वैष्णवी विस्तार कर सका। यही महाभाव अपने व्यापक स्वरूप में इन पंक्तियों में फूट पड़ा है –

प्रत्येक में पदार्थ देखने वाली।
तुम्हारी आँखों में
इसीलिए हिंस्रता चमक रही है
यह कैसी शाश्वत शत्रुता है तुम्हारी
इस दैवीय सम्पदा के साथ?
इस प्रकृति के साथ
और क्यों?
क्या किसी भी दिन
तुम इस महाभाव को स्वीकारना नहीं चाहोगे कि
यह समस्त सृष्टि
तुम्हारे ही कुलगोत्र की परिजन है
जो कि विभिन्न नामों में
वृक्षों पर
धरती पर
आकाश में भुकुलित है
यात्रित है
सन्तरित है?
क्या तुम किसी भी दिन
अपने इस पाशुपत रूप से विकसित होकर
सदाशिवत्व नहीं अंगीकारना चाहोगे?
क्या किसी भी दिन नहीं?

जिन्होंने इस सद्परामर्श को नहीं स्वीकारा, वे तो काल के कूड़ाघर में समा गए और यह वैष्णव कवि नरेश मेहता साहित्य के पृष्ठों पर अपनी सुगंध बिखेर रहे हैं। वे चले गए पर अपने काव्य की चन्दन गंध से भावी पीढ़ियों को आप्लावित करते रहेंगे। अब मूल्यों को पैरों तले दबाने की कोशिश करने वाले प्रति इतिहास बनाने के राग नहीं अलापेंगे।

द्वारा हिंदी भवन
मो.- 9926151507

कवि-कथाकार : नरेश मेहता

- उदय प्रताप सिंह

1955 में जन्मे भक्ति साहित्य के प्रमुख विद्वान, विमर्शकार, उ.प्र. हिन्दुस्तान अकादमी के पूर्व अध्यक्ष रहे चुके हैं। आपकी संत-साहित्य संदर्भित पच्चीस कृतियाँ प्रकाशित हैं। आपके देश-विदेश की पत्रिकाओं में शताधिक लेख प्रकाशित हैं।

हिन्दी साहित्य को समृद्ध करने में नरेश मेहता (1921-2000 ई.) का महत्त्वपूर्ण अवदान है। उनका सर्जनात्मक फलक बहुरंगी और दूर तक फैला हुआ है। गहन गंभीर चिंतन, बहुतों से न्यारी भाषिक संरचना, जीवन के प्रति उदात्त दृष्टि उनके लेखन की विशेषता है। मनुष्य और प्रकृति के अभ्यंतर में देखने की अद्भुत क्षमता, कलात्मक और सकारात्मक सोच से सम्पन्न नरेश मेहता गंभीर साहित्यकार थे। चिंतक, कवि और कथाकार के रूप में उन्होंने अपनी सर्जनात्मक प्रतिभा का प्रतिमान स्थापित किया था। समय का खतरा मोल लेते हुए भी उनकी रचनाओं में दार्शनिकता का पुट प्राप्त होता है। उनका विश्वास था कि जीवन की पूर्णता में दार्शनिक अवधारणा की अहम भूमिका होती है। उनका काव्य साहित्य, उपनिषदों से रस ग्रहण कर समृद्ध हुआ था और गद्य साहित्य जीवन की घनीभूत अनुभूतियों का प्रतिफल प्रतीत होता है।

मालवा के उर्वर एवं सृजनशील वातावरण की छाप नरेश मेहता के साहित्य पर स्पष्ट दिखती है। तीन दर्जन से अधिक कृतियों द्वारा उन्होंने समृद्ध रचनाधर्मिता की अलख जगायी है। भारतीय सेना में सेकेन्ड लेफ्टिनेन्ट से वृत्ति प्रारम्भ करने वाला व्यक्ति चिंतन के स्तर पर इतना गंभीर और गहरा हो सकता है, सोचना भी कठिन है। काव्य में 'उत्सवा', 'अरण्या' 'पिछले दिनों नंगे पैर', खण्ड काव्य में 'संशय की एक रात', 'महाप्रस्थान' और 'प्रवाद पर्व', 'मुक्तिबोध' और अज्ञेय पर लिखीं विचारपूर्ण कविताएँ, उपन्यास में 'यह पथ बंधु था' धूमकेतु 'एक श्रुति और उत्तर कथा', निबंधों में 'काव्य का वैष्णव व्यक्तित्त्व', 'काव्यात्मकता का दिक्काल' जैसी कृतियाँ उनकी रचनाधर्मिता के उत्कृष्ट रूप हैं। उनके उदात्त चिंतन का आभास उनकी कृतियों के विषयवस्तु से होता है। उनकी रचनाशीलता ने उन्हें कई राष्ट्रीय पुरस्कारों एवं सम्मानों से प्रतिष्ठित किया था। 'ज्ञानपीठ', 'भारत-भारती' (उत्तर-प्रदेश) 'साहित्य अकादमी' तथा मध्य प्रदेश का महत्त्वपूर्ण शिखर सम्मान' उन्हें प्राप्त है।

नरेश मेहता का समाज सापेक्ष्य चिंतन यूरोपीय समाज के चिंतकों से बेहतर दिखता है। यूरोप में समाज ही समाज है, व्यक्ति अनुपस्थित है। भारतीय चिंतन में व्यक्ति प्रमुख है। व्यक्ति से ही श्रेष्ठ समाज बन सकता है। नरेश मेहता ने भारतीय चिंतन के इस पक्ष पर गंभीरता से विचार किया है। आधुनिक रचनाकार और उससे अधिक उसे साहित्यकार बनाने का दंभ पालने वाला समीक्षक 'सामाजिक सरोकार' का प्रचलित मुहावरा बार-बार उछालता है। रचना के केन्द्र में उसे ही स्थापित करता है और भारतीय चिंतन को वैयक्तिक सिद्ध करने की निरंतर कोशिश करता है। मेहता जी अपनी सृजनशीलता के बल पर इसके प्रतिपक्ष में खड़े दिखते हैं। वे उपनिषद् की ज्ञानपरम्परा को श्रेष्ठ घोषित करते हैं। उनकी मान्यता है कि यूरोप का चिंतन रेखीय

होता है और भारतीय चिंतन वृत्ताकार 'वहाँ संघर्ष ही सब कुछ है, गति वह भी 'स्ट्रेट', सरल रेखा वाली, गति ही वास्तविक है, इसलिए वहाँ जो हो चुका है वह पुन: नहीं होगा। इसके विपरीत भारत में रेखीय चिंतन की परम्परा नहीं रही है। हमने जब देखा कि ऋतुयें एक रेखा में आती हैं, जाती हैं सारे भूमण्डल का एक अयन में जो घूमना होता है, सूर्य का प्रतिदिन आना, दिनरात का एक वृत्ताकार में होना। जीवन-मृत्यु ये सब एक अयन में, एक वृत्त में, एक परिधि में घटित होती हैं। तब इस निष्पत्ति पर हम आये कि काल वृत्ताकार है।'

इसका सीधा अर्थ यही है कि काल हमारे लिए महत्त्वपूर्ण है देश नहीं, अत: देशगत एवं भूगोलगत स्तर पर मनुष्य जीवन की ऐतिहासिकता में भारतीय चिंतन की रुचि नहीं है। यह महत्त्वपूर्ण नहीं कि राम व अन्य देवता कहाँ पैदा हुए? कब पैदा हुए? हुए भी या नहीं? हमारी दिलचस्पी तो जातीय बोध में सुरक्षित स्मृतियों को समय के साथ जोड़ने में है अत: राम या राम जैसे अन्य चरित्र इतिहास की सीमा में समाने योग्य नहीं हैं। रेखीय चिंतन में उनकी व्याख्या असंभव सी है। यही कारण है कि सहस्राब्दियों से बिना काल सीमा का विचार किये हुए इस प्रकार के चरित्र हमारे साहित्य की अमूल्य निधि बने हुये हैं।

नरेश मेहता साहित्यकार ही नहीं चिंतक और विचारक की तरह धर्म, कविता, दर्शन और समाज के अन्तर्सम्बन्धों पर गंभीर चिंतन करते हैं। दार्शनिकता को समीक्षक काव्य की स्वाभाविकता में बाधक मानते हैं। उनका कहना है कि दर्शन में जीवन की भाव व्यंजना अक्स नहीं हो पाती है। दर्शन स्वाभाविकता से दूर भाषा का पुलिंदा मात्र होता है, वह शुष्कता और सीमा में बँधा भी होता है। नरेश मेहता का विचार इससे भिन्न है। वह कहते हैं कि 'दर्शन का विचार पथ जब आचरण का रूप ग्रहण करता है तो धर्म बनता है और जब सृजनात्मकता का रूप ग्रहण करता है तो काव्य बनता है।' उनकी मान्यता में कोई वस्तु जह नहीं होती, सबमें चेतना का संचार है। उस चेतना का वाहक मनुष्य होता है। नर ही नारायण बनता है, अपने अभ्यंतर में उसका स्वरूप देखता है, उसे जब वह भाषा, सोच, प्रतिभा और कला के आधार पर पृथ्वी पर उतारता है, तब वह अवतार बन जाता है। भारत की सामाजिकता इसी अर्थ में ग्रहण करने योग्य है। यह अकारण नहीं कि भक्तिकालीन कविता में सामाजिक सरोकार के बिन्दु बहुत चटक दिखते हैं। पश्चिम के विचारक सामाजिक होने का ढोल कितना ही क्यों न पीट लें, पर वहाँ ऐसी कोई रचना नहीं जिसका धार्मिक रूप में परायण हो और वह साहित्य की प्रतिनिधि कृति भी हो। भारत में 'रामायण', 'महाभारत', 'श्रीमद्भगवतगीता' यहाँ तक की तुलसीदास कृत रामचरितमानस' और जयशंकर प्रसाद रचित 'कामायनी' तक में वह स्वरूप दिखाई पड़ता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि इस प्रकार की रचनाएँ न मार्क्सवादी आलमीरा में बंद हैं न अन्य विचारधाराओं के संग्रह में ही विद्यमान हैं।

विचार और विवेक के स्तर पर नरेश मेहता का साहित्य उपनिषदों की ज्ञान परम्परा का उत्तरवर्ती काव्यात्मक विकास प्रतीत होता है। 'रामायण' और 'महाभारत' को वह आधुनिक संदर्भों में व्यक्त करते हैं। इस अभिव्यक्ति में समय के दबाव और प्रभाव से इनकार नहीं किया जा सकता है।

'संशय की एक रात' उनका प्रसिद्ध गीति नाट्य है जिसमें ईश्वर की समानान्तरता तक पहुँचे राम, रावण से युद्ध के प्रश्न पर विचार-पुनर्विचार करते हैं। यहाँ राम, मात्र व्यक्ति के रूप में तर्क-वितर्क कर युद्ध की भयावहता से इसलिए नहीं बचना चाहते कि वह युद्ध भीरु हैं, अपितु युद्ध मनुष्यता का हंता है, संस्कृति का विनाशक है। उनके मन में यह विचार बार-बार उठता है कि क्या अंतिम उपाय युद्ध ही है? क्या युद्ध किसी समस्या का अंतिम समाधान हो सकता है? मात्र सीता को रावण के घेरे से बाहर करने

के लिए इतने बड़े नरसंहार की आवश्यकता है? सेतुबंध रामेश्वरम् में सेतु बनाने के उपरांत भगवत्ता की सीमा तक पहुँचे राम के मन का यह संशय कवि के विवेक को जाग्रत कर देता है–

'मैं सत्य चाहता हूँ
युद्ध से नहीं
खड्ग से भी नहीं
मानव का मानव से सत्य चाहता हूँ
यदि मानवीय प्रश्नों का उत्तर मात्र युद्ध है
खड्ग है
तो समर्पित है। यह धनुष–बाण–खड्ग शिरस्त्राण
मुझे ऐसी जय नहीं चाहिए
बाणबिद्ध पाखी सा विवश
साम्राज्य नहीं चाहिए
मानव के रक्त पर पग धरती आती सीता भी नहीं चाहिए–
सीता भी नहीं।'

राम के मन का संशय और द्वन्द्व, मात्र राम का द्वन्द्व नहीं– लेखक का, पाठक का और हर योद्धा का द्वन्द्व है–

'मैं केवल युद्ध को बचाता रहा हूँ बंधु
मानव में श्रेष्ठ जो विराजा है
उसको ही हाँ
उसको ही जगाना चाहता रहा हूँ बंधु
क्या यह संभव है? क्या यह नहीं है?'

राम के मन का यह वैयक्तिक द्वन्द्व यद्यपि सामूहिक विचार–विमर्श के बाद, युद्ध करने के निर्णय में परिणत हो जाता है। संवाद के बीच–बीच में छाया रूप में दशरथ का आना, हनुमान व लक्ष्मण का तर्क–वितर्क इस द्वन्द्र को नई दिशा देते हैं। लक्ष्मण का परिवाद इस संदर्भ को और विचारोत्तेजक बनाता है– 'क्या इस प्रश्न के हम ही अंतिम निर्णायक हैं? क्या हम ही अंतिम मानवता हैं?'

'महाप्रस्थान' नरेश मेहता का खण्ड काव्य है। महाभारत के शांतिपर्व से कथासूत्र को ग्रहण कर, स्वर्गारोहण की यात्रा तक का इसमें वृत्तांत है। रचना में पांडव, युधिष्ठिर का कुत्ता, द्रौपदी, धनुर्धर अर्जुन, महाबली भीम, नकुल और सहदेव की विवशता पर वैचारिक विमर्श हुआ है। यहाँ कवि का विवेक कला के हर मोड़ पर सतर्क व सावधान दिखता है। युद्ध की प्रेरक शक्ति द्रौपदी तो हिमांधियों में अदृश्य होती जा रही है। उसका अस्तित्व ही संकट में है। महापराक्रमी पंच–पतियों को पुकारती द्रौपदी हिमखंडों के बीच हिमपिंड बनने के लिए विवश है। युद्ध के बाद शांति की तलाश मनुष्य के मन की स्वाभाविक यात्रा है। 'उत्सवा', 'अरण्या', 'पिछले दिनों नंगे पैरों' तथा 'मुक्तिबोध' व अज्ञेय पर लिखी कविताएँ मनुष्य के विवेक को जाग्रत करती हैं। द्वन्द्व को नया उभार देती हैं, संघर्ष की शक्ति देती हैं और स्वाभाविक प्रश्नों को ताकतवर कर जाती हैं।

कथाकार नरेश मेहता का गद्य साहित्य काव्य रचना की भूमि से पूर्णत: भिन्न है। निबंधों तथा उपन्यासों के माध्यम से उन्होंने समकालीन समस्याओं के बीच घिरे आदर्शवादी, ईमानदार, कर्तव्यनिष्ठ और नैतिक मनुष्य की त्रासदी को कलात्मकता के साथ ध्वनित किया है। उन्हें आधुनिक भावबोध के चरित्रों में संगुफित कर संघर्षशील बनाया है। कहा जा सकता है कि उनका गद्य भी काव्य की तरह समस्याओं को उभारने में सफल हुआ है। इसीलिए उसकी पठनीयता प्रासंगिक बनी हुई है। विचार और चिंतन परक साहित्यकारों में नरेश मेहता विरल ही दिखते हैं।

नरेश मेहता की ख्याति मुख्यत: उपन्यासकार के रूप में है। उनके सात उपन्यास प्रकाशित हैं–'डूबते मस्तूल' (1954 ई.), 'धूमकेतु : एक श्रुति' (1962 ई.), 'यह पथ बंधु था' (1962 ई.), 'दो एकांत' (1964 ई.), 'नदी यशस्वी है' (1967 ई.), 'प्रथम फाल्गुन' (1968 ई.), 'उत्तर कथा' (भाग एक–1979 ई., भाग दो–1982 ई.)।

नरेश मेहता मानवतावादी जीवनदृष्टि के रचनाकार रहे हैं। वह मानवीय पीड़ा को सहानुभूति की औषधि देते हैं। नारी उत्पीड़न की समस्या उनके उपन्यासों का केन्द्रीय

भाव है। 'डूबते मस्तूल' में रंजना के माध्यम से मध्यवर्गीय आदर्श नारी की समस्या उठायी गयी है। रंजना के जीवन में कई पुरुष आते हैं, किन्तु उनमें एक भी उसकी आत्मा के सौन्दर्य को नहीं समझ पाता है। कोई भी पुरुष उसके साथ न्याय नहीं करता है। पुरुष की इस प्रवंचना भरी प्रवृत्ति से ऊब कर वह आत्महत्या कर लेती है।

'धूमकेतु : एक श्रुति' में मातृहीन बालक-'उदयन' के मानसिक विकास की मनोवैज्ञानिक पड़ताल की गई है। यहाँ उनका आधुनिक विचारक रूप दिखता है-जो कहीं न कहीं यूरोपीय चिंतन के समानांतर खड़ा होता है। जीवन की छोटी से छोटी समस्यायें बालमन को किन सम-विषम परिस्थितियों में जीने के लिए विवश कर देती हैं-इसी का विवेचन बालक 'उदयन' के रूप में किया गया है।

'यह पथ बंधु था'-प्रेमचंद की परम्परा का उपन्यास माना जाता है। उपन्यास में मूल्यों के प्रति निष्ठावान व्यक्तियों का टूट जाना उनकी नियति बन गई है। टूटे-बिखरे मूल्यों के आधार पर ही नये मूल्यों की परिकल्पना संभव है। यद्यपि उपन्यास में रोमांस उत्पन्न करने की शक्ति अनुपस्थित है। पर पूरे उपन्यास में आदर्शवादी संस्कार सम्पन्न दम्पति 'श्रीधर' और 'सरो' के जीवन की दर्दभरी कहानी को कथाकार ने बड़ी कुशलता से उकेरा है। पूरी रचना में पाठकीयता सर चढ़कर बोलती है।

श्रीधर जिन मानवीय मूल्यों को धारण कर स्वाधीनता संग्राम में संघर्ष करता है-वे अंत में निरर्थक सिद्ध होते हैं। उसका पूरा परिवार टूटकर बिखर जाता है और अंततः वह अपने जीवन को व्यर्थ अनुभव करता है। 'दो एकांत' में विवेक, नीरा और मेजर आनंद के त्रिकोण पर टिके आधुनिक जीवन में स्त्री-पुरुष के बीच बनते बिगड़ते रिश्तों और उससे उत्पन्न तनाव की बात की गई है। 'नदी यशस्वी है', 'धूमकेतु : एक श्रुति' का अगला चरण है। यहाँ उदयन किशोरावस्था में पहुँच चुका है। वह अपनी अनंत बौद्धिक जिज्ञासाओं के साथ जीवन-पथ पर अग्रसर है। यहाँ भी उसके जीवन की मनोवैज्ञानिक कथा कही गई है।

'प्रथम फाल्गुन' में गोपा और महिम के माध्यम से पचास-साठ वर्ष पूर्व के लखनऊ का जीवन चित्रित है। 'उत्तरकथा' (भाग दो) में मालवा के कुछ ब्राह्मण परिवारों को केन्द्र में रखकर बीसवीं सदी के प्रथमार्द्ध की परिस्थितियों की कथा है। कथाकार ने दुर्गा, वसुंधरा और गायत्री के माध्यम से तीन अलग संदर्भों में नारी उत्पीड़न की मार्मिक कहानी कही है। इस बृहत् उपन्यास के केन्द्रीय पात्र शिवशंकर आचार्य हैं। तथागत बुद्ध की तरह वे इच्छा को ही दुःख का मूल कारण मानते हैं और सब मिलाकर प्रतिरोध रहित समर्पण के दर्शन को स्थापित करते हैं।

श्री नरेश मेहता मूलतः कवि हैं। उनका कवि मानस वैष्णव संस्कारों से युक्त है। उनके उपन्यासों में ये संस्कार निर्णायक भूमिका निभाते हैं। विचार के स्तर पर उनकी कविता शाश्वत मूल्यों की संवाहिका है। कविताएँ नये संदर्भ गढ़ती हैं और पुरा कथाओं को आधुनिक परिप्रेक्ष्य में जीवंत बना देती हैं। उनका गद्य साहित्य समकालीन समस्याओं को शालीन ढंग से समाज के समक्ष रखता है। नरेश मेहता का पूरा साहित्य भारतीय चिंतन के शाश्वत डोर से बँधा जरूर है पर समकालीन सामाजिक समस्याओं में नया-नया रंग भी भरता रहा है। मध्यवर्गीय पारिवारिक संस्था की रीढ़ नारी को उन्होंने अपने उपन्यासों में अहम स्थान दिया है। इसमें पारिवारिक संस्था (संयुक्त परिवार) को सुरक्षित रखने का उद्देश्य झलकता है।

बी. एफ. एस. 13,
हरनारायण विहार
सारनाथ, वाराणसी-221007 (उ.प्र.)
मो.- 9415787367

वैष्णवता और माधवता के पोषक नरेश

– सूर्यकांत नागर

जन्म – 3 फरवरी 1933।
शिक्षा – एम.एससी., एल.एल.बी।
रचनाएँ – सत्रह पुस्तकें प्रकाशित।
सम्मान – म.प्र. साहित्य परिषद द्वारा सुभद्राकुमारी सम्मान सहित अनेक संस्थाओं द्वारा सम्मानित।

नरेश मेहता जी के प्रति श्रद्धा, आदर–भाव और लगाव के कुछ खास कारण हैं। एक–वे प्रतिष्ठित साहित्यकार थे। दो–उनका और मेरा जन्म–स्थान एक ही है–शाजापुर। तीन–उनके उपन्यासों के कुछ पात्र बचपन में मेरे देखे भाले हैं। कारण और भी हैं, मसलन उनकी पारखी दृष्टि और चेहरे पर विराजित तेजस्विता और तपस्विता। नरेश जी के चचेरे भाई नंद किशोर भट्ट के शाजापुर स्थित निवास पर जाने के अवसर भी आए थे। भट्ट जी ने संघर्ष के दिनों में लखनऊ और दिल्ली में नरेश जी की काफी सहायता की थी। नंदकिशोर भट्ट सांसद रहे थे। दूसरी बार उन्होंने इंदौर से सांसद का चुनाव लड़ा था, पर समाजवादी नेता कल्याण जैन हार गए थे। साम्यता का एक और कारण भी है। नरेश जी औदिच्य ब्राह्मण थे और औदिच्यों और नागरों द्वारा मनाए गए हाटकेश्वर जयंती समारोह के वे अध्यक्ष थे। मेहता जी के उपन्यासों के कुछ पात्रों से रू–ब–रू होने का अर्थ था बचपन में लौटना सुखद होता है और आनंददायी भी। भरोसा इतना था कि जब इंदौर छोड़कर स्थायी रूप से बसने के लिये भोपाल गए तो शोधार्थियों द्वारा उन पर की गई पी.एच.डी. के पाँच शोध–प्रबंध मुझे दे गए। शोध ग्रंथ आज भी धरोहर के रूप में मेरे पास सुरक्षित हैं।

नरेश जी का अधिकांश समय इलाहाबाद (लूकरगंज) में बीता। उनका सारा महत्त्वपूर्ण सृजन वहीं हुआ पर वहाँ के साहित्यकारों की राजनीति से दुखी थे। उनका न कोई मठ था न गुट। वहाँ रहकर भी मालवा उनकी यादों में रचा–बसा था। उपन्यास उत्तर कथा और 'यह पथ बंधु था' में मालवा पूरी शिद्दत से मौजूद है। उपन्यास पढ़कर मालवा की माटी की सौंधी सुगंध का एहसास होता है। उपन्यास पढ़कर एक पाठक की प्रतिक्रिया थी कि उत्तर कथा तो मालवा की भागवत जी है (श्रीमद् भागवत् पुराण)। 'यह पथ बन्धु था' पर उन दिनों काफी चर्चा हुई थी, लेकिन 'उत्तर कथा' का किसी नामवर ने खास नोटिस नहीं लिया था। उसके पीछे की राजनीति का एहसास नरेश जी को था।

इलाहाबाद और मालवा को लेकर एक विरोधाभासी स्थिति का ध्यान आता है। 1984 के आसपास उन्हें प्रेमचंद सृजनपीठ, उज्जैन का निदेशक बनने का प्रस्ताव दिया गया था। मालवा उन्हें कितना ही प्रिय हो किन्तु लम्बे समय से इलाहाबाद में रहने के कारण इलाहाबाद छोड़ने का उनका मन नहीं था। इस द्वन्द्व से निकलने में उन्हें पूरा एक वर्ष लगा। सन् 1985 से 1992 तक वे प्रेमचन्द विद्यापीठ के निदेशक रहे। इस दौरान उनका एक और रूप देखने को मिला। उज्जैन पहुँचने पर पाया कि निदेशक के लिए यहाँ न साधन सम्पन्न आवास की सुविधा है न ढंग का कार्यालय है। स्टेशनरी तक के लाले पड़े हैं। हर तरफ अव्यवस्था थी। अव्यवस्था के खिलाफ उन्होंने जिहाद छेड़ दिया था। इस हद तक कि आखिर लाल फीते

में कसे प्रशासन को तमाम वांछित चीजों की पूर्ति करना पड़ी थी। लम्बे अरसे तक चली इस लड़ाई के संबंध में कुछ लोगों की राय थी कि रमेश जी को इतना आक्रामक रिजिड नहीं होना चाहिये था, पर नरेश जी का कहना था कि साहित्यकार को पूरा सम्मान दिया जाना चाहिये और उसे जरूरी सुख-सुविधाएँ मुहैया करानी चाहिये। नरेश जी के चूजी होने और सुविधा के प्रति आग्रही होने का एक और वाकया याद आता है। इंदौर के कवि रामविलास शर्मा के सम्मान-समारोह में नरेश जी बतौर मुख्य अतिथि आमंत्रित थे। ठहराने के लिए उन्हें साथ लेकर हमने छोटी ग्वाल टोली की पाँच-छः होटलों का निरीक्षण किया था। काफी भटकने के बाद बमुश्किल उन्हें एक होटल सुविधाजनक लगा था।

नरेश जी, कवि रामविलास शर्मा और मैं प्रगतिशील लेखक संघ, खरगोन के कार्यक्रम में शामिल होने के लिये खरगोन गए थे। नरेश जी ने अध्यक्षता की थी और आयोजन में उन्हें आमंत्रित करने के निर्णय पर आश्चर्य व्यक्त किया था। गनीमत थी कि खरगोन के भोले-भाले श्रोताओं ने कोई हंगामा नहीं किया था। उल्लेखनीय है कि नरेश जी 1945 से 1955 तक कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के सदस्य, कम्युनिस्ट पार्टी के कार्ड होल्डर थे और उन्होंने स्वतंत्र राह चुनी थी। वामपंथी सोच का यह आलम था कि उन्होंने आकाशवाणी की सरकारी नौकरी से त्याग-पत्र दे दिया था। यही नहीं, उनकी 'समय देवता' कविता में प्रगतिशील सोच है। आयोजन का सकारात्मक पक्ष यह था कि आज के सर्वमान्य कार्टूनिस्ट और तब के नौसिखिए युवा कार्टूनिष्ट 'लहरी' की कार्टून प्रर्दशनी भी वहाँ लगी थी, जिसे देख नरेश जी ने कहा था कि इस युवा व्यंग्य चित्रकार में काफी संभावनाएँ हैं। आज निःशब्द कार्टून बनाने की दौड़ में उनके समान कोई नहीं।

नरेश मेहता ने कविता के क्षेत्र में अपनी विशिष्ट बनायी थी। कथ्य और शैली उनकी अपनी थी। बोलने दो चीड़ को, अरण्य, उत्सवा, बनपारखी सुनो, देखना एक दिन तुम मेरा मौन हो, संशय की एक रात (खंड-काव्य) उनकी कुछ प्रमुख काव्य-रचनाएँ हैं। कविता में उनके भाषिक प्रयोग कुछ अलग होते हुए भी आकर्षित करते हैं। अज्ञेय के दूसरा सप्तक में उनकी कविताएँ छपी थीं। प्रकृति, मनुष्यता, वैष्णव, देवत्व, इतिहास, वेद-पुराण, वनस्पति, उपनिषदीय चेतना और माधवता की अंतरधारा मौजूद है। वे भारतीयता की अपनी गहरी दृष्टि के लिए जाने जाते हैं। महिमा जी से सुने दो वाकये बेटी वान्या (बुलबुल) से ताल्लुक रखते हैं। बुलबुल के विवाह के समय धन के अभाव की वैसी ही समस्या आ खड़ी हुई थी जैसी अमृतलाल नागर की बेटी अचला के विवाह के समय हुई थी। लेकिन दोनों ही प्रकरणों में चमत्कारिक ढंग से समस्या का सुखद समाधान हुआ था। दूसरी घटना रोमहर्षक है। एक बार नाट्यकर्मी खानाबदोश वसंत पोद्दार इलाहबाद में नेता जी के निवास पर पहुँच गए। नरेश जी से उनका प्रत्यक्ष पूर्व परिचय नहीं था। किसी साहित्यकार के माध्यम से पोद्दार वहाँ पहुँचे थे। पोद्दार वहाँ सात-आठ दिन रहे। इसी बीच उन्होंने परिवार के सभी लोगों के दिल जीत लिये। खास तौर पर नन्ही वान्या तो इतनी घुलमिल गई कि बस! बसंत पोद्दार जाने लगे तो उन्होंने कहाँ कि वे वान्या को भी साथ ले जाना चाहते है। दो-चार दिन बाद लौटेंगे तो वान्या को छोड़ जाएँगे। उन्हें सहर्ष अनुमति मिल गई। एक सप्ताह से अधिक समय हो गया। न पोद्दार का कोई अता-पता था न वान्या का। नरेश मेहता दम्पती की जान साँसत में। चिंता ग्रस्त। लेकिन अंततः आठ दिन बाद पोद्दार जी अनायास वान्या के साथ अवतरित हुए। वान्या तब भी प्रसन्न थी। बता दूँ फक्कड़ तबीयत बसंत पोद्दार मूलतः इन्दौर के थे। मार्तंड चौक में निवास करते थे।

श्री नरेश मेहता छः वर्षों तक चौथा संसार, इंदौर के प्रधान संपादक रहे। वैसे वे अखबार के दौनंदिनी कार्य में दखल नहीं देते थे। पत्र के स्वामी सुरेन्द्र संघवी का मत था कि वरिष्ठ साहित्यकार के संपादक होने से अखबार की गरिमा

और साख में वृद्धि होती है। इसीलिए उनके पूर्व संघवी जी ने प्रभाकर माचवे को चौथा संसार का प्रधान संपादक बनाया था। मेहता जी संघवी द्वारा उपलब्ध कराए गए संगम नगर स्थित भवन में निवास करते थे। ख्यात कथाकार, उपन्यासकार कवि और महाराष्ट्र हिन्दी साहित्य अकादमी के पूर्व अध्यक्ष डॉ. दामोदर खड़से को मेहता जी से मिलाने के लिए वहाँ ले गया था। तब नरेश जी के साथ लिया एक चित्र आज भी मेरी स्टडी में लगा है।

इन्दौर में रहते हुए नरेश जी के साथ दो घटनाएँ घटीं। एक सुखद, दूसरी अत्यंत दुखद। सुखद यह कि इंदौर में रहते हुए ही उन्हें प्रतिष्ठित ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त हुआ था। दुखद यह कि उनके युवा पुत्र ईशान (बाबुल) का कार-एक्सीडेन्ट में असामयिक निधन हो गया। ईशान का विवाह दो माह पूर्व ही हुआ था। इस हादसे से परिवार पर जो वज्रपात हुआ था उसे लफ्जों में बयाँ नहीं किया जा सकता। शव-यात्रा में सैकड़ों लोग सम्मिलित हुए थे। अंतिम संस्कार रामघाट मुक्तिधाम पर हुआ था। बड़ा हृदय विदारक दृश्य था। एक ओर बेटे की चिता जल रही थी, दूसरी ओर बैंच पर लगभग अकेले बैठे नरेश जी का वह खामोश, गमगीन चेहरा। स्थितप्रज्ञ बैठे नरेश जी के अंदर हाहाकार मचा हुआ था, पर संत की तरह वीतरागी हो उन्होंने स्वयं को साथ रखा था। उनकी स्थिति ऐसी थी कि किसी की हिम्मत नहीं हो रही थी कि पास जाकर सहानुभूति के दो बोल बोलें।

छः वर्षों तक इंदौर निवास के पश्चात् 1998 में नरेश जी भोपाल शिफ्ट हो गये थे और मध्यप्रदेश शासन द्वारा एन.आर.आई. कॉलोनी में दिए गए मकान में निवास करने लगे थे। उनसे आखिरी मुलाकात 1999 में हुई थी। जब साहित्यकार बटुक चतुर्वेदी को नरेश जी मिलाने के लिए उनके आवास पर गया था। तब वे अस्वस्थ थे। ऊपर से उतरकर नीचे आने में उन्हें कष्ट हो रहा था। मैं अपराध-बोध से भर आया था। नरेश जी को अस्थमा की पुरानी बीमारी थी। अटैक आने पर कष्ट बढ़ जाता था। इसी सब के चलते 15 फरवरी 1922 को जन्म नरेश जी का 20 नवम्बर 2000 को निधन हुआ। उनके साथ कविता का एक युग समाप्त हो गया। वैष्णवता को ठीक से न समझ सकने वाले भी उस दिन अपनी अश्रुधारा रोक नहीं पाए।

81, बैराठी कॉलोनी नम्बर-2,
इन्दौर-452014 (म.प्र.)
मो.- 9893810050

विशेष अनुरोध

सम्मानित सदस्यों से विनम्र अनुरोध है कि सदस्यता शुल्क मनीआर्डर, आर.टी.जी.एस / एन.ई.एफ.टी, आदि ई-बैंकिंग माध्यमों से भेजने के पश्चात् एक पोस्ट-कार्ड पर अपना पूरा नाम-पता, पिन कोड नम्बर सहित लिखकर 'अक्षरा' कार्यालय को अवश्य सूचित करें। ताकि पत्रिका प्रेषित करने / मिलने में होने वाली असुविधा से बचा जा सके।

बैंक, खाता संख्या निम्नवत् है-

Ac/ No. 50413818696, IFSC- IDIB000T610

इंडियन बैंक, हिन्दी भवन शाखा, भोपाल

मानवीयता के उत्कर्ष की कविताएँ

– आनन्द प्रकाश त्रिपाठी

जन्म – 15 अप्रैल 1960।
शिक्षा – एम.ए., पीएच.डी., डीलिट्।
रचनाएँ – आठ पुस्तकें प्रकाशित, कतिपय सम्पादित।
सम्मान – अंबिका प्रसाद दिव्य रजत अलंकरण सहित अनेक सम्मानों से सम्मानित।

कवि नरेश मेहता का काव्य-संसार मानवीय औदात्य के उत्कर्ष का आख्यान है। वैष्णवता उनके काव्य की मूल चेतना है। भारतीय संस्कृति, आर्ष परंपराओं और औपनिषदिक चिंतन से उनके काव्य की आधारभूमि अभिसिंचित है। मनुष्य में वैष्णवत्व की प्रतिष्ठा कवि का उद्देश्य है। इसी भावना से प्रेरित होकर नरेश मेहता लिखते हैं–'मनुष्य से अधिक उन्नत एवं संस्पर्शी रचनात्मक वाद्यता सृष्टि में अन्यत्र नहीं। प्रकृति, पदार्थ और चेतना को मिश्रित रूप में इससे अधिक विकसित नहीं कर सकती। जिस दिन मनुष्य गुणसंपन्नयुक्त अपने भागवत स्वरूप को पहचान लेता है, वह पूर्ण पुरुष होने के लिए बाध्य है।' **(महाप्रस्थान, पृ. 10)** यही विचार उनके काव्य में अंतर्निहित चेतना के रूप में विद्यमान है। मानवीय गरिमा की प्रतिष्ठा के लिए धर्म, दर्शन, इतिहास, संस्कृति से भी मनुष्य की संपृक्ति होना चाहिए। डॉ. संतोष कुमार तिवारी का कहना है कि 'पर को स्व के निकष पर अंगीकार करते हुए नरेश मेहता व्यष्टि-मनस को समष्टि-मनस से जोड़ते हुए चलते हैं। उनकी दृष्टि एकांगी नहीं है बल्कि वह सामाजिक वैचारिकता का प्रतिफल है।' **(नरेश कवि एक अध्ययन, पृ. 73-74)**

मनुष्य की गरिमा और उसकी अस्मिता को अपनी काव्य सर्जना में साकार करने के निमित्त कवि ने कहा है कि–'रचना की उदात्तता से तात्पर्य है कि वह केवल अपने सृष्टा, रचयिता की गरिमा, महत्ता का ही बोध न करवाए, बल्कि पाठक की गरिमा तथा स्वत्त्व को भी संबोधित, जाग्रत तथा उदात्त करें।' **(उत्सवा, पृ. 19)**

यही भावना उन्हें मानवीय औदात्य का प्रतिष्ठापक सिद्ध करती है। इसकी अनुभूति उनके काव्य के पाठकों को अवश्य हुई होगी। मनुष्य की ऊर्ध्वगामी चेतना के संरक्षक नरेश मेहता की ढेरों कविताओं में मानवीयता के उत्कर्ष के प्रति आस्था का स्वर मुखरित हुआ है। चाहे उनके आख्यानमूलक काव्य हों या कविताएँ। उनमें मनुष्यता के उत्कर्ष की प्रखर अभिव्यक्ति को देखा जा सकता है। मानवीय सदाशयता की उच्चभूमि पर अवस्थित कविताओं में नाना युगीन संदर्भ और सत्यता का उद्घाटन करने में कवि आगे रहा है। उनकी कविताएँ अमांगलिकता के प्रति एक चेतावनी भी हैं। पृथ्वी को रक्त स्नात और सती-सी दग्ध होने से बचाना कवि की प्राथमिकता है। इसके लिए मानव जीवन में करुणा की अविरल धारा प्रवाहित रहे, यही कवि की आकांक्षा है। उसकी उदात्त भावना का प्रमाण स्वरूप कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं–

'संत्रस्त लोगों के पुनः उत्सव होने से अधिक/न कोई मंत्र है/ और न वैष्णवता/ मनुष्य का कविता हो जाना ही उत्सव है।' (अरण्या, पृ. 57)

यही उत्सवधर्मिता नरेश मेहता की कविताओं में संजीवनी की तरह मौजूद है। नरेश मेहता मानवीय संबंधों की प्रगाढ़ता के अद्वितीय कवि हैं। यह प्रवृत्ति उनकी रचनाशीलता को विशेष प्राणवत्ता प्रदान करती है। उनकी आरंभिक दो कविताएँ– 'धेनुएँ' और 'समय देवता' से उन्हें विशेष ख्याति मिली। अपने टटके एवं अछूते काव्य बिंबों के लिए भी उनकी कविताएँ

विशेष चर्चित हुईं। दिक् अर्थात् भूगोल से जुड़ी 'समय देवता' शीर्षक लंबी कविता में कवि ने विश्व के अनेक महादेशों की काव्ययात्रा की है और उन देशों की सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्थितियों का दिग्दर्शन कराया है। डॉ. बच्चन सिंह ने अपने 'हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास' ग्रंथ में लिखा है कि 'इसके माध्यम से कवि विभिन्न भूखंडों के भूगोल, इतिहास और संस्कृति पर कुछ इस ढंग से प्रकाश डालता है कि वहाँ के निवासियों की रीति-नीति और आशा-आकांक्षाएँ उद्घाटित हो उठती हैं। जगह-जगह देश-विदेश के सांस्कृतिक चिन्हों का उल्लेख करते हुए कवि ने संबद्ध संस्कृति और दर्शन को भी रेखांकित किया है। सोवियत भूमि के प्रति उसमें गहरी आस्था प्रकट की गई है।' **(पृ. 436-437)**

नरेश मेहता ने आख्यानमूलक काव्यों-संशय की एक रात, प्रवाद पर्व, शबरी आदि में मानव जीवन के अंतर्द्वंद्व और जीवन संघर्ष का निरूपण करते हुए अपने समय और समाज के अनेक ज्वलंत प्रश्नों को उठाया है और उसका सकारात्मक जवाब भी प्रस्तुत किया है। उनकी कविताएँ भी हमारे जीवन की नाना चिंताओं और समस्याओं को केंद्र में रखकर मानवता के उत्थान का मार्ग खोजती हैं। वन पाखी! सुनो! बोलने दो चीड़ को, मेरा समर्पित एकांत, उत्सवा, तुम मेरा मौन हो, अरण्या, पिछले दिनों नंगे पैरों, आखिर, 'समुद्र से तात्पर्य' और 'देखना एक दिन' मेहता जी के महत्त्वपूर्ण कविता संग्रह हैं। 'चैत्या' उनकी चुनी हुई स्फुट कविताओं का संकलन है। यहाँ इन संग्रहों की कविताओं के आलोक में कवि की मानवीय उत्कर्ष की भावना और समाज, राष्ट्र के कुछ महत्त्वपूर्ण प्रश्नों की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया गया है।

वास्तव में नरेश मेहता व्यापक सामाजिक और सांस्कृतिक सरोकारों के कवि हैं। भारतीयता उनके चिंतन की धुरी है जिस पर उनकी मानवीय चेतना पूरी तरह विकसित हुई है। यद्यपि उनके काव्य में रोमानी प्रभाव भी परिलक्षित होता है। किंतु मानवता का पक्ष सबसे ऊपर और प्रखर है। मानव का संघर्ष, उसके जीवन का राग-विराग, चुनौतियाँ आदि उनकी कविताओं में अभिव्यक्त हुई हैं।

नरेश मेहता प्रकृति सौंदर्य की अद्वितीयता के भी दुर्लभ कवि हैं। उनका प्रकृति प्रेम मनुष्य के उत्कर्ष का द्वार खोलता दिखाई देता है। अपने मन का संघर्ष, चिंताएँ, सकारात्मक सोच को कवि ने बड़ी संजीदगी से औदात्य के साथ पेश किया है। कवि को मकई के दानों में जीवन की नवकिरण फूटती दिखाई देती है। **(दूसरा सप्तक, पृ. 112)** कवि को मानव जीवन के स्वस्थ बने रहने की चिंता है। वह नयन को रागमय और अधर को गीतमय बने रहने की कामना करता है। वह उन 'कल्याणमयी किरणों' को 'फसलों का संगीत लोक' तैयार करने के जरिए धरती के सपनों को साकार करना चाहता है। नरेश मेहता प्रकृति को लेकर बहुत संवेदनशील हैं। उन्होंने प्रकृति के माध्यम से समाज और व्यक्ति जीवन में व्याप्त जीर्णशीर्ण परंपराओं से छुटकारा पाना आवश्यक माना है क्योंकि तभी बदलते मानवीय मूल्यों की जीवन में प्रतिष्ठा संभव होगी। '**भूमि का भोगो सुख/ नदियों का सोम पियो / त्यागो सब जीर्ण वसन/ नूतन के संग चलो।' (दूसरा सप्तक, पृ. 118)** उक्त बातें कहने का तात्पर्य यह है कि प्रकृति नरेश मेहता के चिन्तन और जीवन में मानवता के उत्कर्ष का आमंत्रण है। 'बोलने दो चीड़' में संकलित कविता 'माघ भूले' में वसंत से कवि का उलाहना है कि उसने भी कवि की पुकार को अनसुना कर दिया है। उसका कहना है कि -

माघ भूले वन हमारे
जब पधारे
नाथ गाज-कुल हरसा
नरसुलों के फूल पर सहसा
रंग तो बरसा-हलद सरसों संग
सुनहला काँस भी सरसा
पर हम न भीगे
रंग में या गंध में
क्या ना हम तुमको पुकारें?
किंतु तुमको तो लगे कचनार
टेसू ही अधिक प्यारे।'

प्रकृति चित्रण के माध्यम से कवि ने अनेक महत्त्वपूर्ण मानवीय बिंदुओं, प्रकृति व मनुष्य के संबंधों को विशेष महत्त्व दिया है। नरेश मेहता की मानवीय संबंधों के प्रति अतिरिक्त सजगता

और समष्टि चिंतन उन्हें श्रेष्ठ कवि बनाता है। जनसाधारण के आँसुओं का मोल उन्हें पता है। 'अहं की मीनार की ही नींव' में पत्थर हिचकियाँ लेते हैं। अहं का वह ऊँचा गगन व्यर्थ है जिसकी गहरी नींव आँसुओं की नदी में हो। कवि मानवीयता को जीवन का सर्वोच्च मूल्य मानता है। उसका संवेदनशील मन मानव मात्र को पीड़ित देखकर अत्यंत दुखी होता है। उसके लिए पीड़ा मन की आत्मजा है, वह सृष्टि का सबसे बड़ा दान है। कवि के अनुसार उसे कल्पवृक्ष जैसा मानकर ही सब कुछ हासिल किया जा सकता है–

सृष्टि पीड़ा है
कल्पवृक्ष
दान समझ, शीश झुका
स्वीकारो–
ओ मन करपात्री! मधुकरि स्वीकारो!
वहन करो, सहन करो
ओ मन! वरण करो पीड़ा! (वनपाखी सुनो, पृ. 9)

जनसामान्य की चिंता करने वाले कवि नरेश मेहता के लिए अहंनिष्ठ वैयक्तिकता अर्थहीन प्रतीत होती है। पीड़ा ही उनकी कविताओं में सहज ही उतर आई है। करुणा का स्रोत उनकी कविताओं में प्रस्फुटित हुआ है। जनसामान्य के गीत गाने में कवि का विश्वास है। वे कहते हैं–'जो न सहा गया वह बन गया गायन।' वे वैयक्तिक चेतना को सार्वभौमिकता से जोड़ लेना चाहते हैं। ईश्वर से वे कहते हैं–'बस प्रभु! रक्त से लिखि जाई, वोई गान जन गाई!' जनता के पक्ष में वे सदैव खड़े रहे हैं और उसके जीवन का सारा दर्द उन्होंने गहराई से महसूस किया है। अन्यायी शक्तियों से लड़ने का माद्दा पैदा करने का भाव कवि जनमानस में जगाना चाहता है। नया सबेरा लाने के लिए वह रक्त से गान लिखने की तैयारी करता है, क्योंकि करोड़ों जन का जीवन अन्याय में पिस रहा है।

हमीं स्मरणीय नहीं, हमीं वरणीय नहीं
अन्याय अंधारे हमीं लघु ध्रुवतारा
तार-तार वेषे हमीं
लड़ी जावे युग पथे। (वनपाखी सुनो, पृ. 30)

कवि को अपने खेत-खलिहान और घर-आँगन की उतनी चिंता नहीं होती है जितनी कि पुरजनों के खेतों और पोखरों की सुरक्षा की चिंता बनी रहती है। मानवीय सहजता से उत्प्रेरित होकर कवि 'धरा को तीर्थ' करने के साथ ही मनुष्य की मुक्ति के लिए याचना करता है। उसे लगता है कि बंधनों में सत्य कुंठित हो गया है। यह विचार 'बनपाखी सुनो' कविता में व्यक्त हुआ है। प्रकृति, लोकजीवन, मानवीय आस्था और धरती की हलचल मेघ में 'शीर्षक कविता में वर्णित है।' तीर्थ जल कविता स्वस्थ सामाजिकता को रेखांकित करती है। काई के बंधनों को काटने की, मेहराबों की पत्थर कारा तोड़ने की बात कवि इस आशय से करता है कि वह शेष सृष्टि से जुड़ सके और सभी बाधक तत्त्वों को पृथक् कर एक रागात्मक संबंध स्थापित किया जा सके। व्यक्ति का अपनी मूल चेतना से जुड़ना संभव हो सकता है। जीवन के बहुत गहरे में उतरकर कवि व्यक्ति मन और उसकी समस्याओं को समझने की कोशिश करता है। वह समष्टिवादी चिंतक कवि है जो धरती के लिए सर्वस्व न्यौछावर करने की कामना करता है। वह कहता है–'अपने को दे दो इस पृथ्वी को / यही तुम्हें धारेगी–यश कि यह पत्नी है।' कवि एकांत में जीने की इच्छा किसी तरह पलायन के भाव से नहीं कहता है, बल्कि उसका एकांत मानव मुक्ति के लिए अर्पित है। इसके लिए मनुष्य में 'दूब जैसी विनयशीलता' होना चाहिए न कि अहंकार भाव। समस्त पीड़ा और वेदना के बीच कवि मानवता की रक्षा के लिए सचेष्ट रहता है। 'मेरा समर्पित एकांत' कविता में कवि ने कहा है –

आग झुलसाए मनुज को जो
स्वाहा हो सकूँ उसमें प्रथम
यह पुष्प दो
ओ वरेण्य पिता!
लिख सकूँ प्रत्येक की
हाहाकार-कोलाहल कथा
यह एकांत दो (मेरा समर्पित एकांत, पृ. 6)

कवि नरेश मेहता समष्टि के कल्याण के लिए मानवीय मूल्यों के प्रति व्यक्ति में निष्ठाभाव का संचार करना आवश्यक मानते हैं। सत्य तो यह है कि वृहद और महत्त् की साधना वीतराग और अनाम रहकर की जा सकती है

–

जो अपने घर का मोह छोड़
इस राजमार्ग पर
अंकित हो जाने को तत्पर है
इस राजमार्ग को
नाम नहीं
निष्ठा देती है (मेरा समर्पित एकांत, पृ 37-38)

प्रेम के बिना मानव जीवन अधूरा है। प्रेम की राह पर अग्रसर होकर ही मानवता का गान लिखा गया है। इस प्रेम पर आसन्न संकट को कवि ने समझा है। 'पीले फूल कनेर के' नरेश मेहता की बहुत प्रसिद्ध कविता है। वैसे भी वे प्रेम के विलक्षण कवि माने जाते हैं। 'तू मेरा मौन हो' संग्रह में भी कई प्रेम कविताएँ हैं।

पता नहीं कौन? और वन हंसिनी महत्त्वपूर्ण प्रेम कविताएँ हैं।

वन हंसिनी!
तुम्हारा यह चलना भी पर्व है
और मेरे जल में
यह पर्व-प्रतिबिंब और प्रकंपन दोनों उत्पन्न करता है; अपने फैले केशों
चपल चितवनों
और कनेरी अँगुलियों में-
यह मेरे सर्वस्व अपहरण का
कैसा वल्लभा अनुष्ठान
देह की समस्त आलाप-भाषा के साथ
कौमुदी-महोत्सव सा
मेरे सामने संपन्न हो रहा है।'

'दूसरा सप्तक' में 'चाहता है मन' भी चर्चित प्रेम कविता है। चीन की साम्राज्यवादी नीति ने भारत की सीमाओं के लिए हमेशा संकट पैदा किया है। 1962 में हुए युद्ध का परिणाम देश जानता है। हिंदी कवियों ने चीन और भारत के खराब संबंधों पर अनगिनत कविताएँ रची हैं और अपना आक्रोश व्यक्त करते हुए सावधान रहने की सलाह भी दी है। नरेश मेहता ने भी चीन और भारत के संबंधों के संदर्भ में चीन की हिंसक नीति तथा झुलसी हुई मृतप्राय वसुंधरा को देखा है। बारूद उगलती बंदूकों और बम के गोलों ने धरती को बाँझ बना दिया है। हरी-भरी फसलों के महल जल गए हैं। कवि जापान के हिरोशिमा और नागासाकी पर गिराये गये परमाणु हमले के भयानक विध्वंस में कराहती मानवता की पीड़ा को बड़ी संवेदनशीलता से समझने की कोशिश की है। इस त्रासदी की भयावहता भी उसे परेशान करती है। यहाँ विज्ञान कब्र में मनुज मर गया है, संगीत जल गया है। इसी तरह कवि तिब्बत में दस्तक दे रही नवक्रांति के स्वर को भी पहचान लेता है। **(नरेश कवि : एक अध्ययन, पृ. 31)**

नरेश मेहता ने भारत के भौगोलिक और सांस्कृतिक परिवेश को भी अपनी अनेक कविताओं में उजागर किया है। असम के जंगलों, गोदावरी के गीतों, विंध्य के बादलों और अजंता में योग-भोग के समन्वय की ओर भी संकेत किया है। किंतु, उन्हें इस बात की गहन चिंता और क्षोभ है कि 'शस्य श्यामला इस धरती पर फसल जल रही है, मनुज मर रहा।' देश में कहीं शरणार्थियों की समस्या है तो कहीं सांप्रदायिक तनाव है और उस तनाव भरे वातावरण में खून से लथपथ लोगों के हाथ दिखाई देते हैं। कवि आधुनिकता का पोषक है। परंपरा से उसने उन सृजनात्मक तत्त्वों और भावों को अंगीकृत किया है जो आधुनिकता को संपुष्ट करते हैं। नवीनता को अपनाने के प्रति उसका आग्रह है। वह जीर्ण पुरातन का परित्याग कर वर्तमान को शक्तिशाली नवनिर्माण की भूमि प्रदान करने के लिए उत्साहित है। क्योंकि; आस्थामय भविष्य की प्रतिष्ठा हेतु वह आशावादी दृष्टिकोण रखता है। नवनिर्माण का संकल्प दुहराते हुए कवि कहता है –

नहीं चाहिए जीवन पुरातन
बासी लहरों से
सरिता का कभी नहीं शृंगार हुआ है
जीवन पूज्य है
वर्तमान मेरी बाँहें हैं
मैं भावी की नींव धर रहा (मेरा समर्पित एकांत, पृ. 56)

नरेश मेहता सार्वभौमिक चेतना के प्रति आस्थावान् कवि हैं। वे आध्यात्मिक चिंतनशील व्यक्ति हैं। विश्व मानवता के लिए उनकी सोच सार्वभौमिक है। उन्हें संपूर्ण पृथ्वी की चिंता है। उन्होंने समय देवता से विश्वयुद्ध की कगार पर खड़े राष्ट्रों की स्थिति भी स्पष्ट कि है। मानव विनाश के स्थान पर विश्व निर्माण की आकांक्षा कवि को महान बनाती है। वास्तविक स्थिति यह है कि 'धुएँ' की चिड़िया धरती का धान खा रही है। लगभग 40 पृष्ठों की इस लंबी कविता के अंत में कवि ने विश्वमंगल की कामना की है। मनुष्य के श्रम की रेखाएँ नए

रूप में आल्प्स की रचना करेंगी, नदियाँ नए जल छंद लिखेंगी। वह सूर्य, चंद्र को आमंत्रित करता है, मनुष्य के घावों को सहलाने और नई जागृत देने के लिए कवि का संदेश है –

मनुज घाव पर
चेत शरद की चाँदनियों की
रेशम पलकें हवा कर सकें
गगन आम पर
स्वर्ग कहीं बैठा-बैठा
तारों की वंशी हमें सुनाए।
धरती नीले तारों का परिवार बन सके
इसीलिए खेतों में संध्या केसर बरसे। (वही 80)

नरेश मेहता बेहद संवेदनशील व्यक्ति हैं और चराचर जगत् के कल्याण की कामना करने वाले हैं। उनके भाव जगत् में मनुष्य, प्रकृति, जीव-जगत् की व्यथा कथा अनेक रूपों में उभर कर सामने आई है। कवि की व्यापक भाव-संपदा में सब की व्यथा और सब का कोलाहल निहित है जो उनका अपना दुख-दर्द और शोर बन गया है। यही 'संपदा होना ही सर्वस्व होना है।' केदारनाथ सिंह ने इसी बात को कवि की 'एक साँस की डिबिया में ब्रह्मांड का समा जाना' कहा है। नरेश मेहता ने लिखा है कि-'काव्य का स्थान समस्त वैचारिक सत्ता में न केवल सर्वोपरि है, बल्कि अपनी भाववाची सृजनात्मक प्रकृति के कारण परम पद भी कहा जा सकता है। काव्य का प्रयोजन है कि मनुष्य मात्र को उसके भीतर जो अनभिव्यक्त पुरुष है उसको रूपायित तथा संचरित किया जाए।' कवि की प्रकृति से जो मानवीय संलग्नता है वह हिंदी साहित्य में बेजोड़ है।

यदि बन सके
इन पर्वतों की भाँति औघड़
नदियों की भाँति पारदर्शी स्वरूप
और इन आदम हवाओं की भाँति अनागत
तो, तुम्हें
यह घासों वाली छोटी सी निर्जनता ही
केश खोले किन्नरियों सी अलभ्य लगेगी
और इसी अलभ्यता के आमंत्रण के
किसी छोर पर ही
साधारण दूर्वाओं जैसी वह अपर्याप्तता है
जो कामधेनु है।' (अरण्या, पृ. 67)

समय देवता को कवि मिट्टी का विश्वास सौंपता है कि यह धरती पुष्पवती हो। उसे पूरा भरोसा है कि मनुष्य के मस्तक पर चिंता से उभरी तूफानों की नई हवाएँ शांत होंगी। संपूर्ण मानवता के मंगल हेतु कवि कामना करता है। नई कविता जिस अंतर्राष्ट्रीय मानवता की बात करती है उस मूल चेतना का गहरा संस्पर्श इस कविता में है। इसमें समग्र धरती का मानव प्रेम ध्वनित हुआ है। कवि की दृष्टि मनुष्य पर केंद्रित रही है। वह मानवीय पीड़ा और अवमानना को उजागर करता है। व्यक्ति की कर्मठ भुजाओं के दम पर पुष्पवती धरती के प्रति आस्था व्यक्त करता है। यह कविता पतनशील स्थित की भी पड़ताल करती है। युद्ध, युद्ध की विघटनकारी भयावह परिस्थितियों के मध्य भी अनंत संभावनाओं और उपलब्धियों को उजागर करने वाली कविता के रूप में इसका महत्त्वपूर्ण स्थान है। समाज की विषम स्थितियों और उत्पीड़न की वास्तविकता को समझते हुए कवि स्पष्ट कहता है –

विकल्प के वल्कल में संशय विष पीड़ित
किसी भग्न मस्तूल सरीखे खड़े हुए हैं
दृक्ष भाव से
संकल्पहीन पर
अब भी हम में प्रश्न शेष है – (बनपाखी सुनो पृ. 13)

समय और समाज की वास्तविकता को नरेश मेहता ने अपनी कविताओं में बखूबी उभारा है। जीवन की प्रतिकूलता इस कदर बढ़ गई है कि 'हो गए पथ तक अहेरी।' फूलों में षड्यंत्रों की गंध आ रही है, परंपराओं में सड़ांध आने लगी है और संकल्पहीनता के कारण मनुष्य के आंतरिक संशय का वध संभव नहीं है। ज्वार-भाटा के कारण तट पर बिखरी हुई संदर्भ भटकी यात्राओं की तरह मानव जगत की स्थिति हो गई है। 'भोर भीगी जलों वाली सीढ़ियों का दुख' और व्यक्ति की अवलंबनहीनता व टूटन एक जैसी है। हम रूढ़िवादी संस्कारों के शव से चिपके चले जा रहे हैं। इसीलिए कवि समाज की इस मानवता विरोधी व्यवस्था और मनुष्य की टूटन को समाप्त कर नरेश युग का निर्माण करना चाहता है। इस युग की सामाजिक, धार्मिक और अन्य विषमताओं ने मानवीय संबंधों को चकनाचूर कर दिया है। सारे सामाजिक रिश्तों को भी प्रभावित किया है।

इस वैज्ञानिक चिंतन के युग में व्यक्ति के जीवन मूल्य छीजते जा रहे हैं। वह लोहे के पाताल नगर में न जाने कहाँ खो गया है। नरेश मेहता व्यक्ति के खोखलेपन पर चोट करना नहीं भूलते हैं। व्यक्तिवादी दृष्टि से समाज का कभी भला नहीं हुआ है। नकलीपन से व्यक्ति जीवन आक्रांत होता गया है।

'बूढ़े मसूड़ों का जुलूस' कविता में कवि को इस बात का यकीन हो गया है कि यह शहर नकली दाँत लगाये घूम रहा है। चमकदार सफलताओं की सुखद कल्पनाएँ लोगों को बनावटी हँसी हँसने के लिए विवश करती हैं। सभ्य कहलाने का नाटक चल रहा है। 'बूढ़े मसूड़ों का जूलूस' कविता लिखने के पीछे कवि का मंतव्य बहुत स्पष्ट है कि न तो कहीं नवीनता है न कहीं उपलब्धि। सफलता का झूठा एहसास उनमें बड़प्पन का ख्वाब बुनता रहता है। समाज में हर व्यक्ति समाज का नेतृत्वकर्ता बनना चाहता है। मानवता के उत्कर्ष की चिंता से सभी को परहेज़ है। स्वयं को समाज में सर्वोपरि मानने की होड़ मची हुई है। पाखंड, अहं, ईर्ष्या, विरोध की भावना बलवती हो रही है और मनुष्य अपने प्रभुत्व को स्थापित करने में सारी नैतिकता और सामाजिकता को नजरों से ओझल कर बैठा है। 'इतिहास के दावेदार' कविता में कवि वस्तुस्थिति पर व्यंग्योक्ति करते हुए कहता है–

नित्य बैठे हुए कहवाघरों में
हम अपने अहम के गुब्बारे
दूसरों के आकाश में उड़ाते हुए
प्रतिस्पर्धी होते थे।
इसलिए हमारे नाखूनों में उगी रहती थी।
हम सब अपने विरोधियों के नाम तक
इतिहास से मिटा देने के लिए
छुपी ब्लेडों का समझौता करने में
रत रहते हैं। (मेरा समर्पित एकांत, पृ. 25)

अवसरवादी राजनीति और दरबारी प्रवृत्ति ने देश और समाज का बहुत अहित किया है। भीड़ प्रिय नेताओं ने लोकतंत्र का मखौल उड़ाया है। इतिहास में अपना नाम दर्ज कराने के लिए न जाने कितने ही अमानवीय समझौते किए हैं। किंतु, कवि को भरोसा है कि यह अवसरवादी साँठगाँठ बहुत दिनों तक नहीं चलेगी। वह कहता है– 'इतिहास में समझौतों को चीर/ रचना फूल बनकर आती है।' कवि अपने समय की राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक हलचलों से बेखबर नहीं है। निराशा, घुटन, भटकाव के बीच संघर्ष और आस्था को बचाए रखने की कवायद वह करता है। कर्मशीलता मनुष्य होने की पहचान है। जीवन और जगत् का कल्याण तभी संभव हुआ है। पुरुषार्थ की अवधारणा को जीवन में चरितार्थ होते देखना कवि को सुहाता है। मिट्टी को मनचाहा रूप देने की अपार शक्ति उसमें है। इस कर्म में कहीं देवत्त्व का भाव निहित है। कवि का कहना है–

'मिट्टी प्रतिमा बनती ही तब है/जब वह धरती पर आकाश का प्रतिनिधित्व करती है /मनुष्य देवता बनता ही तब है/ जब वह व्यक्ति का नहीं वैराग्य का प्रतीक होता है।' (अरण्या, पृ. 39)

मालवा और काशी की संस्कृति और समाज में उनका जीवन बीता और वहाँ के परिवेश का प्रभाव उनके जीवन, उनके चिंतन से होकर उनकी कविताओं में छलकता दिखाई देता है। कवि के शुरुआती दिनों के एक वक्तव्य को देखा जाए जो 'तीसरा सप्तक' में उन्होंने कहा है कि वह 'आग' लिखना चाहते थे, किन्तु उनका वक्तव्य 'आग' लिखने से मना करता है। इस बात का यकीन हम तारसप्तक की 'किरण धेनुएँ' और उषस् कविता के गीतों में देख सकते हैं।

धर्म की सारी व्याख्या मनुष्य ने अपने स्वार्थ के वशीभूत होकर कर ली है। वह मनचाहे ढंग से धर्म को संचालित करने लगा है। यहाँ नरेश मेहता धर्म को स्त्री संदर्भ से जोड़कर उसके प्रति होने वाले अन्याय का विरोध किया है। वे धर्म के उन तथाकथित ठेकेदारों को भी नहीं बख्शते हैं जो समाज में अशांति फैला कर एक स्त्री को बंधनों में जकड़ कर फिर से 'चौखट की मेड़' बनाना चाहते हैं। स्त्री पर अमानवीय अत्याचार को देखकर उन्हें अपार पीड़ा होती है और वह उसके अधिकारों के हनन पर गंभीरता के साथ विचार करते हैं। नारी मुक्ति के समर्थन में वे कहते हैं–

एक दिन/ साध्वी की भूषा में लिपटी उस नारी ने /उतार दिए आवरण/ लाँघे ताप सता के सारे चौखटे/ और मुक्ति के लिए वरणकर किसी को/ लौटा दी /अपने को अपनी ही नारी।' (आखिर समुद्र से तात्पर्य पृ. 54)

स्त्री अस्मिता के प्रश्न कवि के ज़ेहन में बराबर मौजूद हैं जो उसे व्यथित करते हैं। उसकी प्रगतिशील सोच के दायरे में स्त्री मौजूद है। स्त्री के प्रति उसकी सच्ची सहानुभूति और उसकी मुक्ति हेतु पक्षधरता का भाव है। पुरुष की गर्हित भावना और उसके पशुत्व से वे भलीभाँति परिचित हैं। वे लिखते हैं–

सिर से पैर तक / विवश देवत्व का नाम/ स्त्री और सिर से पैर तक/ आक्रमक पशुता का नाम पुरुष। (आखिर समुद्र से तात्पर्य, पृ 23)

स्त्री के दो प्रमुख रूप हैं–प्रेमिका और माँ। इन दोनों की विवशता से वे परिचित हैं–'यही तो है रोना / जो सुन लिया है, रोना/ बच्चे का/ पर खाली हाथ हो, तब न।' (वही, पृ. 70)

नरेश जी ने पुरुष के पुरुषार्थ पर अँगुली उठाई है। पुरुषार्थ की उनकी व्याख्या है–'**नारी देह पर बलात् आधिक्य ही विलास की पराकाष्ठा।' (वही, पृ. 5)** कवि की तीखी निगाह से सामंतवाद और पूँजीवाद का चेहरा छुपा नहीं है। उसे मालूम है कि इतिहास सदाशयी लोगों के लिए नहीं होता है। स्त्री के प्रति दोनों का नजरिया बेहद खौफनाक होता है। स्त्री के लिए 'हविस का बूचड़खाना' कहकर कवि ने स्त्री शोषण की ओर संकेत किया है। श्रम की विजय में कवि का घोर विश्वास है। वह प्रकाश, दुधारी चेतना, धूप का अभिषेक और शील की प्रतिष्ठा करना चाहता है –

ओ सम्यक दिन! लौटो
हमें आलोको
हमारी रचनाओं को दूबों का शील दो–
हमारी मृत चेतनाओं को धेनु करो
धूपाभिषिक्त करो। (वनपाखी सुनो, पृ. 37)

नई पीढ़ी श्रमशील है। श्रम के वह गीत गा रही है–यशस्वी धरा के नए इंद्र देखो, श्रम की नई संहिता गा रहे हैं। कवि सामाजिक विषमता को मिटाने के लिए खेतों की खुली पुस्तकों पर श्रम के गीत लिखने का विचार रखता है। 'बोलने दो चीड़ को' कविता की पंक्तियाँ देखें–हमारी पुस्तक खुले खेतों खुली है /रक्त हस्ताक्षर तुम्हारा चाहिए– (पृ. 45)

नरेश मेहता कि मानवीय दृष्टि अधिकांश कविताओं में नये–नये मुद्दों पर जाती है। 'अरण्या' में एक स्थान पर वे लिखते हैं–'**सन्त्रस्त लोगों के पुनः उत्सव होंगे/ न कोई मंत्र है/ और न वैष्णवता/ मनुष्य का कविता हो जाना ही उत्सव है।'**

ईश्वर से ज्यादा वे मनुष्य को महत्व देते हैं। मनुष्य के साथ ही प्रकृति भी जुड़ी हुई है। वह समग्र मानवता, प्रकृति और सृष्टि को अपने में समेट लेने की ख्वाहिश रखते हैं–'**मनुष्य या दूर्वा / किसी के भी हँसते हुए/ मुख से बड़ी / न कोई प्रार्थना है /न कोई उत्सव है /और न स्वयं ईश्वर ही।' (वही)**

नरेश मेहता किसान की भी चिंता करते हैं, किंतु वह किसान को सर्वहारा न मानकर उसे गायत्री व्यक्तित्व का ऋषि कहते हैं; क्योंकि किसान अपने कर्म से जीवनपर्यंत बँधा रहता है, अपने कर्तव्य के प्रति समर्पित रहता है। यह बात कवि को ज्यादा प्रभावित करती है। धनधान्य का महाकाव्य रचने वाला किसान उन्हें प्रिय है। वे कहते हैं कि 'अनात्मता केवल ऋषि में ही संभव है।' किसान उनके लिए मनीषी सा है। अन्यत्र भी उन्होंने लिखा है –

मेड़ पर जनक भाव से खड़े
इस कृषिकाय के नेत्रों में
सर्जक की अनासक्तता, तथा
नवांकुरों को पहली बार
शशकों की भाँति बैठे देखकर
जो आनंद है
वह ऋषि व्यक्तित्व में ही संभव है
जो धरती को
अन्न, रंग और गंध की भाषा में रच रहा हो
ऐसा मनीषी
देश को नहीं, देशत्व को
काल को नहीं कालत्व को
मनुष्य को नहीं
मनुष्यत्व को पदार्थिक दृष्टि से नहीं देखता इसलिए वह सर्वहारा नहीं होता
वह तो मिट्टी में उगे गायित्री व्यक्तित्व का ऋषि होता है। (अरण्या, पृ. 22)

नरेश मेहता का काव्य मनुष्यत्व की एक अंतरंग यात्रा भी है। वह मनुष्य को चैतन्य बनाने का विचार रखते हैं। चैत्य पुरुष उनके काव्य का प्रयोजन है जो मनुष्य को देश–काल की सीमा से परे ले जाता है। जाहिर है उनकी

कविता देश काल का अतिक्रमण कर मनुष्य मात्र का अभिषेक करती है–

परंतु मनुष्य में ही इस देश और काल के पाश से मुक्त हो जाने की केवल क्षमता ही नहीं है बल्कि उस पुकार का स्रोत भी है जो आक्रोश के आकाश पर व्योम से आती है और उसे पैगंबरत्व प्रदान करती है। अक्षर बनाती है इसीलिए व्यक्ति का नहीं मनुष्य मात्र का चैत्य पुरुष बनना ही मेरा काव्य है। **(वही पृ. 17)**

कविता आदमी को सहज और सार्थक बनाती है। इस धारणा को लेकर नरेश मेहता बहुत सजग हैं। वह अपनी संपूर्ण काव्य यात्रा में पृथ्वी को अपनी दृष्टि से ओझल नहीं होने देते हैं क्योंकि उसे समर समर्पित कर्म अमोघ शक्ति संपन्न होता है। प्रकृति और मनुष्य के रिश्ते को लेकर कवि बहुत सजग हैं। उसे इस रिश्ते के लगातार छूटने–टूटने की गहरी चिंता और व्यथा है। मनुष्य का अपनी प्रकृति धर्म से अलग होना त्रासद है? वह जानता है कि हवाओं के घोष, जैविक ध्वनियाँ, वनस्पतियों का औषधीय तत्त्व, ऋतुओं के रंग–वर्ण ने पृथ्वी को गर्भवती बनाया है। कविता के यही उपकरण कवि को नई अर्थवत्ता प्रदान करता है। मनुष्य और प्रकृति की एकरूपता, एकरसता और तादात्म्य–स्थित का आत्मीय भाव एवं परस्पर संलग्नता कवि की इन पंक्तियों में दृष्टिगत होती है –

जब भी मैं
फूल नदी या आकाश पर कविता लिखता हूँ
तो वह मानवीय प्रकरण ही होता है
क्योंकि जब भी मनुष्य की आँखों में आँसू होते हैं
मैंने फूल, नदी, आकाश को रोते देखा है –

इसलिए मेरे लिए न प्रकृति, केवल प्रकृति है और न मनुष्य केवल मनुष्य। मनुष्य और प्रकृति की यह सहभागिता नरेश मेहता के काव्य का वैशिष्ट्य है। पिछले दिनों नंगे पैरों 'कविता संग्रह में नरेश मेहता इतिहास के मलबे में दबे मनुष्य और मनुष्यता को समझने की सार्थक कोशिश करते हैं। इतिहास के संदर्भ के बहाने वर्तमान भारतीय लोकतंत्र की विकृतियों एवं शोषण व्यवस्था की ओर उन्होंने हमारा ध्यान आकृष्ट किया है। वर्तमान राजनीतिक दुरभि संधियों की उन्हें गहरी पहचान है और उसके खतरे को लेकर वे सतर्क हैं। वे भाँप लेते हैं सारी अमानवीयता को, जिसे उद्घाटित करते हुए उन्होंने उसके दंश की पीड़ा को समझा है। 'इतिहास की दीवारों' के बहाने कवि ने देश ही नहीं, वैश्विक संदर्भ में पृथकतावाद, जातिवाद, भाषावाद के संकट को बहुत संजीदगी से हमारे सम्मुख उपस्थित किया है। इन प्रश्नों से घिरे और बंटे इस देश को और आदमी के विभाजित और खंडित व्यक्तित्व को लेकर चिंता व्यक्त की है।

जब तक दीवारें हैं
इबादतें नामुमकिन हैं
प्रार्थनाएँ असंभव हैं
घरों, मिलों, इमारतों को दीवारों वाला होने दो मगर दीवारों वाला आदमी तो मत बनाओ। (पिछले दिनों नंगे पैरों, पृ. 136)

वस्तुतः नरेश मेहता का काव्य इंसानियत के खिलाफ तमाम दुश्वारियों का आईना है जिसमें समाज के विकृत चेहरे को धकेलते हुए मनुष्य की उदात्त प्रतिमा को प्रतिस्थापित किया गया है। समाज के कितने ही सवाल और जीवन की पेंचीदगियाँ उन्हें बेचैन और परेशान करती हैं। वे हर हालात में मानवीयता और उन सभी जीवन मूल्यों को बचाने की तड़प लिए अपनी कविताओं में एक नया सामाजिक सत्य स्थापित करना चाहते हैं। समाज की विद्रूपताओं से वे मुँह नहीं फेरते, बल्कि उसका प्रतिकार करना उचित मानते हैं। यदि नई सदी में उनकी व्यापक चित्तभूमि पर एक सुंदर समाज की रचना का सूत्र विकसित हो सके तो मानवता का जीवन पथ प्रशस्त हो सकेगा।

आचार्य, हिंदी विभाग
अध्यक्ष, संस्कृत विभाग
डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय
सागर–470003 (म.प्र.)
मो. –9425656284

नरेश मेहता का काव्यात्मक औदात्य

– करुणाशंकर उपाध्याय

जन्म – 5 अप्रैल1968।
जन्मस्थान – शिवगढ़, प्रतापगढ़ (उ.प्र.)।
शिक्षा – पोस्ट डॉक्टरल रिसर्च।
रचनाएँ – 22 पुस्तकें प्रकाशित एवं 12 पुस्तकों का संपादन।
सम्मान – महाराष्ट्र राज्य हिंदी साहित्य अकादमी का बाबूराव विष्णु पराड़कर पुरस्कार सहित अनेक सम्मान।

नरेश मेहता नई कविता के प्रमुख कवियों में से हैं। इनके काव्य में सुरुचिपूर्ण आभिजात्य दिखाई पड़ता है। मालवा और काशी की सांस्कृतिक छाप के कारण इनके काव्य में सांस्कृतिक राग की हल्की-गहरी अनुगूँज सुनाई पड़ती है। इस कारण इनकी कविता सांस्कृतिक सरोकार की कविता बन गई है। नरेश मेहता की वेशभूषा और प्रारंभिक काव्य पर सुमित्रानंदन पन्त का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है किन्तु उनमें कल्पना के विस्तार के स्थान पर संवेदना अधिक पाई है। इनकी कविता पूरा साहित्य का नई अर्थच्छटाओं के रूप में आविष्कार करती है। ये मिथक को समकालीन अर्थवत्ता प्रदान करते हैं। इनका नाम नई कविता के इतिहास निर्माताओं में दर्ज है। इन्होंने नई कविता को अर्थ व्याप्ति देने के साथ उसकी अति वैक्तिकता पर चोट भी की है। इन्होंने लिखा है कि, 'जिस दूसरी बात ने हमें पंगु बना दिया है वह है हमारी विलायती क्षयिष्णु वैक्तिकता। हम जीनियस रोग से पीड़ित रहने लगे हैं। हमने वैक्तिक संकट के नाम पर जिस बीमार व्यक्तित्व को साहित्य में व्यक्त होने दिया था, अनुत्तरदायित्वपूर्ण आत्मरति भाव। इस काल में या तो राजनीति के क्रीत दासों ने प्रणयन किया था या फिर इन बीमार आधुनिकों ने। राजनीति के पास देने के नाम पर दासता थी और इस विलायती वैक्तिकता के पास देने के लिए 'द्विपभाव' था। किन्तु यह राजनीति का तथा वैक्तिकता का दर्प है, दंभ है।' इस तरह नरेश मेहता का कवि आरंभ से ही एक प्रखर चिन्तक के रूप में हमारे सामने आता है। वह काव्य की बहुआयामी तेजस्विता को समझते हुए धर्म-दर्शन एवं संस्कृति से उसका तादात्म्य स्थापित करने का उपक्रम करता है। उनके कवि का स्पष्ट अभिमत है कि कि, 'जांगलिकता से सांस्कृतिकता की ओर, देह से मन की ओर, जड़त्व से चेतनत्व की ओर मानवी यात्रा सम्पन्न हुई, इसका एकमात्र प्रमाण काव्य है।' कविता मानवीय जलयात्रा की सबसे उदात्त सृष्टि है। यही इनके कवित्व का केन्द्रीय तत्त्व भी है।

इसी तरह नवीनता की सनक के सम्बन्ध में श्री मेहता के विचार और भी साहसपूर्ण एवं सारपूर्ण हैं। आप लिखते हैं, 'इससे अधिक संकट में हमारा नवीनतम साहित्य है। यहाँ मैं नई कविता पर ही कहूँगा। नवीन वह कई अर्थों में निश्चित है किन्तु नवीनता अपने आप में कोई साध्य नहीं। कविता में आज अज्ञानता, उच्छृंखलता आदि बातें मौलिकता मानी जा रही हैं। परम्परा से हीन होने को आधुनिकता की संज्ञा दी जा रही है।' इस तरह नरेश मेहता एक प्रकार का क्लासिक तेवर लेकर हिंदी साहित्य की जमीन पर अपना पाँव रखते हैं। ये परम्परा और आधुनिकता के बीच संतुलन साधनेवाले कलाकार हैं। इन्होंने न तो स्वयं को परंपरा के बोझ से दबने दिया और न ही आधुनिकता के फैशन से आक्रांत होने दिया।

नरेश मेहता पहली बार 'दूसरे सप्तक' में छपे तो उन्होंने अपनी शैल्पिक सतर्कता और नवीनता के कारण पाठकों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया। आज अपनी अनेक कृतियों के माध्यम से नरेश एक सजग सर्जक के रूप में प्रतिष्ठित होकर अपना सर्वश्रेष्ठ देकर स्वर्गीय हो चुके हैं। लेकिन उनकी लेखनी का स्पर्श पा कर जहाँ एक ओर कविता रोमांचित हुई वहीं दूसरी ओर गद्य साहित्य भी समृद्ध हुआ। इन्होंने गद्य में उपन्यास से लेकर कहानी तक और नाटक से लेकर एकांकी तक में अपनी प्रयोगशील प्रतिभा का लोहा मनवाया। नरेश मेहता ने काव्य के क्षेत्र में 'दूसरा सप्तक' से लेकर 'मेरा समर्पित एकांत' तक की यात्रा की है तो उपन्यास में 'प्रथम फाल्गुन' से लेकर वह 'नदी यशस्वी है' के किनारे तक जा पहुँचा है। यह दूसरी बात है कि अपनी इस यात्रा के बीच में उसे कतिपय कहानियों को भी पार करना पड़ा है और जीवन की संगतियों-असंगतियों से उल्लसित एवं क्षुब्ध होकर इन्होंने नाटक एवं एकांकियों की सीमारेखा को भी स्पर्श किया है।

'दूसरे सप्तक' में नरेश मेहता की दस कविताएँ संकलित हैं। ये दसों कविताएँ प्रकृति चेतना, प्रेमिल भावना और सांस्कृतिक भूमिका पर कवि की विश्व मानवतावादी दृष्टि का स्फुरण हैं। प्रकृति की राशि-राशि दृश्यावलियाँ कवि-मन को अभिभूत कर लेती हैं। विवेच्य कवि शब्द के बजाय कविता में अर्थ लिखने का आग्रही है। उसका मानना है कि जहाँ शब्दों की सीमारेखा समाप्त होती है, वहीं से कविता की दुनिया शुरू होती है। यथा : -

'अर्थ तो शब्द का होता है
और कविता में
शब्द -
सरोवर में डूबी सीढ़ी है
जहाँ हम समाप्त होते हैं
और सरोवर आरम्भ होता है
सीढ़ियाँ तो
केवल खड़े होने के लिए होती हैं
जबकि अवगाहन सीढ़ी हीन सम्पूर्ण समर्पण माँगता है
इसलिए
शब्द पर जाकर खड़े मत रहो
शब्द का उल्लंघन ही कविता है।'

नरेश मेहता का काव्य संसार इसी ढंग का है। इनकी अधिकांश रचनाएँ प्रकृति का महागान हैं। 'उषस्' शीर्षक से कवि ने कई कवितायें लिखी हैं और प्रकृति के स्वस्थ, विराट और पावन रूप का स्तवन किया है। ये कवितायें प्रत्यूष के सौन्दर्य का चित्र तो हैं ही, साथ ही वैदिक काव्य से भावों की विराटता ग्रहण करके सहज एवं कल्पना प्रधान रचनाएँ प्रस्तुत करने का उद्योग भी इन कविताओं में किया गया है। इनका स्वत्वबोध और सांस्कृतिक चेतना प्रकृति के साथ मिलकर एक सम्मोहक संसार गढ़ते हैं -

'किरणमयी तुम स्वर्णकोश में / स्वर्णदेश में
सिंचित है केसर जल से / इन्द्रलोक की सीमा
आने दो सैन्धव / घोड़ों का
रथ कुछ, हलके धीमा, / पूषा के नभ के मंदिर में
वरुणदेव को नींद आ रही, / आज अलकनंदा, किरणों की
वंशी के संगीत गा रही/ अभी निशा का छंद शेष है,
अलसाये नभ के प्रदेश में।'

नरेश मेहता को संध्या, प्रभात, दोपहर, रात्रि, वर्षा, मेघ, वसंत और फागुन मास के सौन्दर्य ने अधिक प्रभावित किया है। इनके 'वनपाखी सुनों' संग्रह में अधिकांश कविताएँ प्रकृतिपरक हैं। 'पीले फूल कनेर', 'मेघ पाहन द्वार' और 'मालवी फाल्गुन' कविताएँ इस सन्दर्भ में उल्लेख्य हैं। कवि प्रकृति के फलक पर लोकचित्र बनाने का असफल प्रयास करता है। वह अपने लोकचित्रों की व्यंजना करनेवाले गीत में ग्रामीण शब्दों की झड़ी लगा देता है किन्तु कोई विशिष्ट चित्र उसकी रचनाओं में नहीं उभरता, जैसे 'पीले फूल कनेर' का एक अंश देखिए-

'पीले फूल कनेर के / पथ अँगोरते
सिन्दूरी बड़री अँखियन के /फूले फूल दुपेर के
दौड़ी हिरना / बन-बन अँगना
बेंत वनों की चोर मुरलिया/समय-संकेत सुनाएँ
नाम बजाये।'

'मेघ' नरेश मेहता का प्रिय विषय है, जिस पर वे अलग-अलग भावों की अभिव्यक्ति के लिए, भिन्न सन्दर्भों में कविताएँ लिखते हैं। साथ ही, अपनी सर्जक कल्पना का उपयोग करते हुए मनोरम बिम्ब भी निर्मित करते हैं। आख़िर चाँदनी के सौन्दर्य को ही लीजिए -

'यह सोन जुही सी चाँदनी / नव नीलम पंख कुहर-खोंसे
मोर पंखिया चाँदनी / नीले आकाश में अमलतास
झर-झर गोरी छवि की कपास / किसलियत गेरुआ वन पलास
किसमिसी मेघ चीरव विलास/ मनबरफ शिखर पर नयन प्रिया
किन्नर रम्भा चाँदनी।'

इसी क्रम में 'वनपाखी सुनो' कविता संग्रह में प्रकृति के संदर्भों के बीच में प्रेम-जनित पीड़ा और उससे सम्बंधित पराजय भाव की विभूति भी कुछ कविताओं में परिलक्षित होती है। कवि के हृदय में एक पीड़ा है और वह विरह के शाम का मुकुट पहने हुए गोमती नदी के उस किनारे पर चला जाता है जहाँ 'फुनगियों पर कपोती सी चाँदनी अलसा रही थी।' प्रेम के पीर को भोगता हुआ कवि प्रणय के ज्वार के चले जाने पर कुछ ऐसी स्थिति में हो गया है-

'शंख सीपियों के बीच / समुद्री झरबेरी से हम
अब भी भीगी पलक / अधूरे वाक्य कंठ में लिए खड़े हैं।'

नरेश मेहता प्रकृति के मनोरम चित्र अंकित करते हुए भी अपनी सांस्कृतिक निष्ठा नहीं छोड़ते। जब वे प्रकृति पर कविता लिख रहे होते थे तो उन्हीं के शब्दों में, 'उत्सव उपनिषद हो जाता था, प्रज्ञा वैष्णवी हो जाती थी, प्रकृति और नदियाँ गायत्री हो जाती थीं, वनस्पति मंत्रोच्चार करने लगती थी, समुद्र साम-संगीत गाने लगता था और उषा किरण धेनुओं के साथ आती थी-या यों कहें प्रभात का ग्वाला किरन धेनुओं को लेकर आता था।' कहने का आशय यह है कि नरेश जी की समग्र कविताएँ प्रकृति एवं संस्कृति का सुन्दर-सार्थक रूपायन हैं। कवि उन्हें अभिव्यंजना के औदात्य तक ले जाता है। यह काव्यात्मक औदात्य ही इनकी विशिष्ट पहचान है।

विवेच्य संग्रह का शिल्प भी वर्ण्य विषय के अनुकूल है। इसमें जिस तरह प्रकृति चेतना को सर्वोपरि स्थान प्राप्त है, वैसे ही शैल्पिक सन्दर्भ में कवि के नवीन भाषा-प्रयोग भी अपने उत्कर्ष पर हैं। कवि ने शब्द चयन एवं पदविन्यास में नित्य नवीनता का परिचय दिया है।

'बोलने दो चीड़ को' नरेश का दूसरा कविता संग्रह है। इसमें 37 कविताएँ हैं जो अपनी सहजता के कारण पाठक का मन बाँध लेती हैं। प्रतिपाद्य की दृष्टि से प्रकृति, प्रेम, वेदना, जीवनव्यापी असंगतियों तथा विचार और भाव का सम्मिलन दिखाई पड़ता है। आलोच्य कवि रोमानी भावनाओं का यथार्थवादी कवि है। वह अशेष आस्था का संबल लिए हुए है। यदपि कभी-कभी उसकी शाम उदास भी प्रतीत होती है किन्तु वह उदासी उस समय दूर हो जाती है जब कवि धूप की पीली तितली से आशा और विश्वास का संबल लिए हुए कहता है -

'मेरी पत्नी की पुत्री बनने के लिए / कल आएगी
जरूर आएगी / क्योंकि मैं प्रतीक्षित हूँ
मेरी पत्नी को उसकी प्रतीक्षा है / नाली के उस छोटे से जल को
जैसे उसी की प्रतीक्षा है।'

शिल्प के धरातल पर विवेच्य संकलन कवि की परिपक्वता का द्योतक है। इसमें प्रकृति की राशि-राशि दृश्यावलियाँ हैं, सौन्दर्य की मनोरम छवियाँ हैं, जीवन की विवशता के यथार्थ स्वर हैं, रस और आनंद की नई भूमिका है और उन सबको कवि एक अशेष आस्था से जोड़े हुए है। इस संकलन का शिल्प-शौष्ठव एवं कलात्मक विन्यास अद्वितीय है। कवि ने सर्वत्र कवितापन का निर्वाह किया है।

'मेरा समर्पित एकांत' नरेश मेहता का अगला काव्य सोपान है। इसमें कवि का जीवन से गहरा सरोकार है। इसमें कहीं व्यथा है कहीं जीवन की विडम्बनाएँ हैं, कहीं शाम की उदासी है, कहीं संकल्प-विकल्प का ज्वार है, कहीं मानवीय दु:ख का अहसास है कहीं मानवीय स्वभाव में व्याप्त अहं, प्रतिस्पर्धा, ईर्ष्या एवं विवशता के चित्र हैं।

इसमें कवि का भावबोध और शिल्पबोध दोनों ही कवि की स्वस्थ प्रयोगशीलता को दर्शाते हैं। यहाँ कवि अज्ञेय के प्रभाव क्षेत्र में आया हुआ दिखाई पड़ता है। परन्तु नरेश में प्रकृति की पवित्रता, स्वस्थता एवं सांस्कृतिक चैतन्य का जो बोध है वह अज्ञेय के काव्य से उन्हें अलगाता भी है। 'संशय की एक रात' मिथकीय ताने-बाने से बुनी हुई आधुनिक भावबोध की प्रबंध कृति है जो अपने नवीन प्रश्नों के कारण बहुचर्चित रही है। इसमें युद्ध को लेकर राम के मन में उठने वाले गहन द्वन्द का चित्रण है। राम का संशय अर्जुन के संशय से मिलता-जुलता है। फर्क यह है कि गीता के अर्जुन दार्शनिक आधार पर युद्ध के लिए प्रस्तुत होते हैं और 'संशय की एक रात' के राम लोकमत के निश्चय के आधार पर। वे स्वयं कहते हैं-**'अब मैं निर्णय हूँ/ सबका/अपना नहीं/ क्योंकि मैं अब निर्णय हूँ, व्यक्ति नहीं।'**

कवि समूह के निर्णय के सम्मुख इकाई के अनिर्णय को हावी दिखाकर सामूहिक चेतना अथवा बोध की महत्ता प्रतिष्ठित करना चाहता है। अंततः राम स्वीकार करते हैं -

'अब मैं केवल / प्रतीक्षा हूँ
क्रचित कर्म हूँ / प्रतिश्रुत युद्ध हूँ
निर्णय हूँ सबका / सबके लिए
केवल अपने ही लिए संभवतः नहीं।'

कवि अपनी कल्पनाशीलता के बल पर जिस राम को सांस्कृतिक प्रतीक और औदात्य सृष्टि के रूप में चित्रित करता है, वह उन्हीं राम के गहन अंतर्द्वंद्व, अनिर्णय, दायित्वबोध तथा व्यष्टि और समष्टि के संबंधों को लेकर मन में उठनेवाली व्यग्रता का चित्रण करके उनके व्यक्तित्व को निर्वैयक्तित्व तथा सामान्यीकृत करता है जिससे पाठक राम की पीड़ा से जुड़ाव तो महसूसता है। परन्तु राम का द्वन्द स्थूल नैतिकता को पारकर आंतरिक स्पर्श तक नहीं कर पाता। यहाँ स्थूल नैतिकता की परिणति भी स्थूल बनकर रह गई है। इस कृति में मूल्यों का उहापोह है, अन्वेषण है। कवि संशय और शंकाओं से उबरकर कर्मवादी जीवन-दर्शन की प्रतिष्ठा का हिमायती है। मिथक के सहारे कवि ने आधुनिक भावबोध, जीवन-दर्शन और मूल्यों को जिस कुशलता से साथ उतारा वह कवि की शैल्पिक चेतना का ही प्रमाण है। भाषा का आभिजात्य, बिम्बों की ताजगी इस शिल्प की विशिष्टताएँ हैं जो पाठक को प्रभावित करती हैं।

अपनी दूसरी प्रबंध कृति 'महाप्रस्थान' में नरेश मेहता ने 'महाभारत' के अंतिम प्रसंग 'स्वर्गारोहण' को युग यथार्थ से सम्पृक्त कर नई अर्थवत्ता और सन्दर्भ देने का यत्न किया है। विवेच्य कृति तीन खण्डों में विभक्त है यात्रा पर्व, स्वाहा पर्व, तथा स्वर्ग पर्व। इनमें यात्रा पर्व का काव्य-सौन्दर्य सर्वाधिक उदात्त है। नरेश मेहता का हिमालय वर्णन कालिदास तथा जयशंकर प्रसाद के हिमालय वर्णन की याद दिलाता है। यहाँ वानस्पतिक उत्सव का सौन्दर्य-गान उनके संवेदनात्मक औदात्य को विश्वसनीयता प्रदान करता है। प्रकृति के मानवीकरण का यह मनोरम चित्र दर्शनीय बन पड़ा है-'चीड़ों के वन-झरने से कलकल करते जैसे अभियार प्रिया उन्मुक्त केशिनी का चीनांशुक चीड़ों से। हँस-हँस यक्ष की कथा कह रहा है।' हिमाच्छादित हिमालय के वर्णन में भव्यता और विराटता का सुन्दर आलेखन है। महाप्रस्थान नाटकीयता से भरपूर है इसलिए चितन के बावजूद उसमें प्रवाहशीलता बरकार रहती है। वैसे तो नरेश मेहता ने क्लासिकी भाषा का प्रयोग किया है किन्तु नए बिम्बों और प्रतीकों से जुड़कर वह नए भावबोध को वहन करने में पूरी तरह सक्षम है। अपने उदात्त काव्य-सौन्दर्य, पात्रों के द्वंदात्मक व्यक्तित्व, युधिष्ठिर की प्रज्ञावान अंतश्चेतना और चिंतन के नए सूत्रों के कारण 'महाप्रस्थान' नई कविता की विशिष्ट प्रबंध कृति है।

'प्रसाद पर्व' रामायणीय सन्दर्भ को लेकर लिखा गया एक ऐसा काव्य है जिसमें समकालीन जीवन के ज्वलंत प्रश्नों को 1975-76 के वर्ष के उठे प्रश्नों को मानवीय संदर्भ में समाधानित किया गया है। एक व्यक्ति की

निरंकुश सत्ता और प्रजातांत्रिक शक्तियों के सम्बंधों को निरूपित करनेवाला यह काव्य अपनी समस्त पौराणिकता का अतिक्रमण कर जाग्रत सन्दर्भों को रेखांकित करने लगता है। जब कोई शासक अपने को राष्ट्र–राज्य के ऊपर मान बैठे तथा उसके समस्त प्रयास लोकविरोधी होने लगे तो ऐसी स्थिति में नरेश मेहता जन क्रांति का समर्थन करते हैं –

'रावण/राष्ट्र का प्रतीक बन चुका था
इसलिए लोगों के वर्चस्व ने
राष्ट्रीय मुक्ति के लिए युद्ध किया।'

कवि लोक बनाम राजतंत्र की समस्या को आमने–सामने रखने और प्रजातांत्रिक मूल्यों की प्रतिष्ठापना में सफल हुआ है। 'शबरी' का प्रकाशन 1977 में हुआ जिसकी कथा का आधार रामायण है। शबरी एक साधारण अन्त्यज नारी है। वह निम्नवर्गीय होकर भी किस प्रकार संघर्ष करती हुई आत्मोत्थान कर सकी, यही इस कथा का मूल बिंदु है। कवि ने शबरी के चरित्र को प्राणिमात्र के प्रति करुणा से अनुप्राणित माना है। करुणा जैसे आंतरिक मूल्य से युक्त होने के कारण उसे पूरी सृष्टि प्रभुमय प्रतीत होती है–

'उन नयनों में करुणा थी / औ थी पवित्र पावनता,
उसको सब प्रभुमय लगता / थी उसमें प्रभु की प्रभुता।'

आलोच्य काव्य में शबरी अपनी नगण्यता साधारणता को कर्मदृष्टि के सहारे वैचारिक उच्चता के शिखरों तक ले गई है। वह आत्मिक संघर्ष करती हुई पावन और मंत्रपूत चरित्र तक बन गई है। उसके तापस रूप का चित्रण कवि ने इस प्रकार किया है–

'मंदार पुष्प सा जिसका, सर्वस्व समर्पित प्रभु को,
जो स्वयं तपस्या है अब, क्या वेद मंत्र है उसको।'

शबरी प्राणिमात्र के प्रति विश्वबन्धुत्व का भाव रखती है। कवि ने निम्न कथन के माध्यम से उसके चरित्र को और भी ऊँचा बना दिया है–'माना यह सब कुल–कुटुंब है। अपने ही हैं प्रियजन।' शबरी एक सहज भावोत्छल काव्य है। इसमें भाव और शिल्प की, कल्पना और विचार की तथा प्रश्न और समाधान की एकरूपता विद्यमान है। नरेश मेहता की अन्य महत्त्वपूर्ण कृतियाँ हैं 'उत्सवा' और 'अरण्या' जो साहित्य अकादमी से पुरस्कृत रचनाएँ हैं। उत्सवा उनके कवि व्यक्तित्व का चरम निदर्शन है। यहाँ उनकी कविता वेदमंत्रों की तरह पूत और निर्माल्य है। वह कवि के उदात्त सौंदर्य बोध एवं लोक मंगलाशा के प्रकटन का सशक्त माध्यम है। कवि प्रकृति के खुले परिवेश तथा अनंत रमणीय सौंदर्य के दर्शन में औपनिषदिक चेतना का आभास पाता है। उसने बड़े कौशल के साथ मेघ, वर्षा, संध्या, चाँदनी, दूर्वा, फूल, पत्तियाँ, घास, पीपल, चीड़, कदली, नदी, वनस्पतियाँ इत्यादि का मनोहारी अंकन किया है। जिसे पढ़कर पाठक वृंदावन के उल्लास वैष्णवी पवित्रता का अहसास करता है–

'धरती के काल-संकलन जैसे / ये वन उपवन/ साम्राज्ञीयों के चीनांशुकों से/ ये धन खेत/ खुला कार्तिक अबाध आकाश/ कृष्ण–आकुल गोपिका नेत्रों जैसे/ ये श्यामलाल मेघ / वृंदावनी सारंगी सी/ ये दाक्षिणात्य हवाएँ/ कुछ भी/ क्या कुछ भी तुम्हें आमंत्रित नहीं करते।'

कवि मिथकीय प्रसंग का उल्लेख नैसर्गिक सादृश्य–विधान के सहारे जिस निपुणता के साथ करता है वह सहृदय पाठक के मन पर अमिट छाप छोड़ जाती है। यहाँ कवि जिस ढंग से घ्राण बिंब का निर्माण करता है उससे उसके प्रातिभ कौशल को विश्वसनीयता प्राप्त होती है –

'धूप की तुलसी उन्मत्त किए देती है। कैसी केवड़े की गंध ही अकेली /धूप–कृष्णा का नाम ले / मन को वृंदा किए देती है।'

कवि बड़ी संजीदगी के साथ वृक्ष के व्यक्तित्व में निहित परोपकार तथा आत्मविसर्जन के बोध का चित्रण करता है–**'अपने में से फूल को जन्म देना कितना उदात्त होता है, यह केवल वृक्ष जानता है। और फल–वह जो जन्मांतरों के पुण्यों का फल है।'**

इसी क्रम में नरेश मेहता का महत्वपूर्ण काव्य संकलन 'अरण्या' का प्रकाशन एक उल्लेखनीय उपलब्धि है। इस

संकलन की कविताएँ आदिम रस-गंधों से सराबोर हैं। इनमें कवि आदिम हवाओं की भाँति अनागरिक हो जाने की आकांक्षा व्यक्त करता है। कवि प्रकृति के वानस्पतिक उत्सव को मानवीय जीवन से जोड़कर देखता-

'जब भी मैं/फूल, नदी या आकाश पर कविता लिखता हूँ/ तो वह मानवीय प्रकरण ही होता है/क्योंकि जब भी मनुष्य की आँखों में आँसू होते हैं/ मैंने फूल, नदी, आकाश को रोते देखा है।' इसी तरह कवि फूल की ऋषि रूप में परिकल्पना करके अपने पवित्र हृदय तथा उदात्त बोध का परिचय देता है-

'धूप में/यह अनुष्टुप-सा खड़ा/फूल नहीं/सावित्री-सिद्ध एक ऋषि है। जो सूर्य की प्रशंसा में/सुगंध के मंत्रों का साक्षात् कर रहा है।'

प्रस्तुत संकलन की एक अतिशय महत्त्वपूर्ण कविता 'अरण्यानी से वापसी' है जिसमें कवि वैष्णव, मनुष्य, उत्सव और मनु हो जाने की कामना करता है-

'न कोई मंत्र है, और न वैष्णवता
मनुष्य का कविता हो जाना ही उत्सव है
कविता का लोगों के बीच लौटना
मनु के लिए लौटना जैसा होगा।'

नरेश मेहता के काव्योत्कर्ष का अंतिम सोपान सन 1990 में प्रकाशित 'पिछले दिनों नंगे पैरों' तथा 'देखना एक दिन' नामक काव्य-संकलन हैं। ये काव्य संकलन नरेश जी को प्रार्थना लोक में प्रत्यावर्तन करने के लिए अभिप्रेरित करते हैं -

'प्रार्थना है नदी का एकांत / जो उसे पर्वत से बनाता है नदी।'

नरेश मेहता की एक कविता 'नदी और भाषा' शीर्षक से मरणोपरांत प्रकाशित हुई है जिसमें कवि का यह अकृत्रिम वक्तव्य उसकी अविरल साधना का साक्ष्य बन पड़ा है- **'नदी को भी भाषा चाहिए होती है/एक भाषा/ जो नदी सी ही हों प्रवाहित'** नरेश मेहता का कवि आजीवन नदी की भाँति तरल, तारंगायित और अनवरुद्ध और प्रवाहमान बना रहा।

इसके अतिरिक्त उन्होंने उपन्यास, कहानी, एकांकी और नाटक लिखे हैं। उनके उपन्यासों में प्रथम फाल्गुन 'डूबते मस्तूल', 'वह पथ बंधु था', 'नदी यशस्वी', चर्चित रहे हैं। 'डूबते मस्तूल' अनेक प्रकार की विसंगतियों से भरा हुआ प्रयोगशील उपन्यास है। इसी तरह वह पथ बंधु था उपन्यास आधुनिक अर्थबोध से असंपृक्त है। जो लोग मूल्यहीन, व्यर्थता और अकेलापन देखकर अभ्यासवश किसी उपन्यास को आधुनिकतावादी कह डालते हैं, वे आधुनिकता का सही अर्थ नहीं लेते। आधुनिकताजन्य व्यर्थता स्वचेतना के आधिक्य या होने के बोध से उत्पन्न होती है। यों इस प्रकार का बोध किसी उपन्यास के लिए अनिवार्य नहीं है। श्रीधर की त्रासदी यह नहीं है कि वह आदर्शवादी है। बल्कि यह है कि वह समाज के लिए नहीं अपने आदर्शों के लिए जीते हैं। उसमें ऐतिहासिक समझदारी का भी अभाव है अन्यथा वह अकेले इतिहास बनाने का संकल्प न करता। इस उपन्यास को महत्त्वपूर्ण बनाने का श्रेय स्वयं श्रीधर को है। अपनी संवेदना के बावजूद वह बीते हुए मूल्यों के ध्वंसावशेषों में रमता रहता है। वह व्यावहारिक धरातल पर आधुनिक नहीं बन पाता।

सारांश यह है कि नरेश मेहता की प्रतिभा बहुआयामी है। वे रोमानी संस्पर्शों वाले क्लासिकल तेवर के प्रयोगशील रचनाकार हैं। उनका सृजन यथार्थ के बोध से वलयित है। नवीनता के रंगों से रंजित है और दो टूक शैली की बंकिम छवियों से आलोकित है। वह नई कविता के प्रमुख कवियों में से है। उनका समूचा साहित्य संवेदात्मक औदात्य से भरपूर है। यह औदात्य उनके प्रकृति प्रेम और सांस्कृतिक निष्ठा की परिणति है। इस कारण इनका महत्व अक्षुण्ण है।

1102-सी-विंग, लक्षचंडी हाइट्स,
कृष्णवाटिका मार्ग, गोकुलधाम गोरेगाँव,
पूर्व मुंबई-400063 (महा.)
मो.- 9167921043

आधुनिक साहित्य के प्रमुख हस्ताक्षर : नरेश मेहता

– राजेन्द्र परदेसी

जन्म स्थान – बबुरा, भोजपुर (बिहार)।
शिक्षा – ए. एम. आई. ई.,डी.लिट्।
रचनाएँ – अठारह पुस्तकें प्रकाशित।

साहित्य अकादमी व ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित नरेश मेहता हिन्दी साहित्य में एक साथ कवि उपन्यासकार, आलोचक, निबंध लेखक तथा पत्रकार के रूप में एक प्रबल समर्थ हस्ताक्षर हैं। यह निर्णय करना तनिक कठिन है कि उनके साहित्यिक व्यक्तित्व का कौन सा रूप–कवि अथवा गद्यकार, अधिक प्रमुख व प्रखर है। हिन्दी साहित्य में पाँचवाँ ज्ञानपीठ पुरस्कार जैसे चिरभिनन्दीय गौरव को प्राप्त करने का सु–अवसर प्राप्त हुआ है। इससे पूर्व हिन्दी साहित्य को यथा समय परम वन्दनीय दिवंगत स्वनामधन्य सुमित्रानन्दन पन्त, रामधारी सिंह दिनकर, अज्ञेय व सुश्री महादेवी वर्मा उक्त पुरस्कारों से अभिमंडित हो चुके थे। इसे एक परम सुखद संयोग ही समझिये कि हिन्दी साहित्य में पाँचों ही बार उक्त पुरस्कार से कविता क्षेत्र ही अलंकृत हुआ है।

1992 में ज्ञानपीठ पुरस्कार नरेश मेहता को कवि के रूप में प्रदान किया गया। भले ही हिन्दी गद्य साहित्य को गल्प क्षेत्र में प्रेमचन्द, फणीश्वरनाथ रेणु तथा आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के बाद अभी विशिष्ट प्रतिभा संपन्न गल्पकार की प्रतीक्षा है किन्तु उसे नि:सन्देह अपने गणमान्य प्रतिभा संपन्न कविवर्ग पर गर्व है। नरेश मेहता का जन्म शाजापुर, मालवा (मध्यप्रदेश) में 15 फरवरी, 1922 ई. को कुलीन ब्राह्मण परिवार में हुआ था। उनके पूर्वज मूलत: गुजराती थे, पर काफी दिनों से शाजापुर में बसे हुए थे। बालक नरेश की प्रारम्भिक शिक्षा स्थानीय विद्यालयों–महाविद्यालयों में हुई पर उच्चतर शिक्षा हेतु बनारस गये। उन्होंने एम.ए. की परीक्षा हिन्दी विषय लेकर काशी विश्वविद्यालय से उत्तीर्ण की।

नरेश मेहता में कालानुराग प्रारम्भ से ही था। काशी आकर उन्होंने साहित्य के प्रति अभिरुचि और अनुराग विकसित किया। आपके अध्ययन काल के दौरान ही द्वितीय विश्वयुद्ध का प्रारम्भ हो गया था, इसलिए सैनिक शिक्षा प्राप्त की। अध्ययनोपरान्त वे पत्रकारिता, लेखन और राजनीतिक गतिविधियों में सक्रिय रहे। कुछ वर्षों तक उन्होंने आकाशवाणी में नौकरी और कई केन्द्रों में कार्यक्रमों का सफल सम्पादन भी किया।

सरकारी नौकरी को अपनी राजनीतिक और साहित्यिक गतिविधियों में बाधा मानकर सन् 1953 में त्याग पत्र दे दिया। तत्पश्चात् स्वतंत्र लेखन एवं सम्पादन में सक्रिय हो गए। उन्होंने दिल्ली में कई वर्षों तक 'कृति' नामक पत्रिका का सफलतापूर्वक सम्पादन एवं प्रकाशन किया, पर दिल्ली निवास में बहकाव का अनुभव कर सन् 1959 में इलाहाबाद आ गए। तब से इलाहाबाद रहकर ही वे साहित्य सृजन व अन्य साहित्यिक सांस्कृतिक गतिविधियों में सक्रिय रहे। उनकी मृत्यु 78 वर्ष की आयु में नवम्बर 2000 में हुई। उनकी पत्नी श्रीमती महिमा मेहता कानपुर की थीं और

वहीं उनकी शिक्षा पूरी हुई। वे भी एक सफल कहानीकार थीं।

नरेश मेहता ने मुख्य रूप से काव्य सृजन किया। अज्ञेय के सम्पादन में सन् 1951 में प्रकाशित दूसरे 'सारसप्तक' के प्रमुख कवि हैं। आपकी 'तारसप्तक' में प्रकाशित 'समय देवता है' नामक कविता विद्वतमण्डली द्वारा सराही गयी। आपके मुक्तक एवं प्रबन्ध दोनों ही काव्य के रूपों में काव्य सृजन किया। आपके 'वनवासी सुनो', 'बोलने दो चीड़ को', एवं 'समर्पित एकान्त' प्रमुख काव्य संग्रह हैं। मेहता जी नवीन चेतना के प्रयोगवादी कवि के रूप में उभरे थे। बाद में प्रबन्ध काव्यों के रूप में भी काव्य सौन्दर्य का निदर्शन देखने को मिला। उनकी 'संशय की एक रात', 'अपांक्तेय', 'महाप्रस्थान', 'शबरी', 'प्रवादपर्व', उत्सवा आदि रचनाएँ प्रबन्ध काव्य के अन्तर्गत रखी जाती हैं। अपनी प्रबन्धात्मक कृतियों के अन्तर्गत उन्होंने पौराणिक मिथकों में समसामयिक अर्थ सौन्दर्य को प्रस्तुत किया है। 'वाग्देवी' उनके द्वारा सम्पादित काव्य ग्रन्थ है। उनके काव्य-ग्रन्थों में प्रयोगवादी रचना धर्मिता और आधुनिक भाव बोध का कलात्मक चित्रण देखने को मिलता है।

नरेश मेहता ने 'डूबते मस्तूल' (1954), 'वो एकांत' (1954), 'धूमकेतु एक श्रुति' (1962), 'नदी यशस्वी है' (1967), 'वह पथ बंधु था' (1967), 'प्रथम फाल्गुन' (1968) आदि अनेकों उपन्यासों का सृजन किया। आत्मकथात्मक शैली में लिखे गए प्रथम उपन्यास 'डूबते-मस्तूल' में एक ऐसी रूपगर्विता हतभागिनी नारी की करुण कथा को प्रस्तुत किया गया है जो अनेक पुरुषों का प्रणय प्राप्त करके भी पत्नी और माता बनने का गौरव नहीं प्राप्त कर सकी। नायिका रचना का आत्महत्या कर लेना, नारी जीवन की विडम्बनाओं का मार्मिक निदर्शन करता है।

'दो एकान्त' में विवेक और वानीरा के माध्यम से दाम्पत्य सम्बन्धों की विसंगतियों का यथार्थपरक चित्रण किया है। पत्नी के पर-पुरुष की ओर आकर्षण को देखकर पति पहले तो मौन रहता है पश्चात् सम्बन्ध विच्छेद कर लेता है। दोनों ही एक घर में रहते हैं एकान्तवासी बनकर। 'धूमकेतु एक श्रुति' भी आत्मकथात्मक शैली में लिखा गया उपन्यास है। यह आपका मनोवैज्ञानिक उपन्यास है। लेखक ने 'उद्यन' के माध्यम से व्यक्ति और समाज के सम्बन्धों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया है। 'नदी यशस्वी है' इसी उपन्यास का अगला खण्ड है। धूमकेतु एक श्रुति' का बाल और किशोर उद्यन 'नदी यशस्वी है-में भावुक युवक बन जाता है और उनका व्यक्तित्व कावेरी पर केन्द्रित हो जाता है। नरेश मेहता का 'यह पथ बंधु था' सर्वाधिक ख्याति प्राप्त उपन्यास है। इसमें एक अध्यापक श्रीधर के माध्यम से शिक्षक और लेखक के जीवन प्रसंगों को प्रभावशाली शब्दों में प्रस्तुत किया गया। 'प्रथम फाल्गुन' में लखनऊ के आर्ट्स कालेज के उप प्रधानाचार्य और एक लड़की गोपा की प्रेम कथा को शाश्वत रूप में प्रस्तुत किया गया है। नरेश मेहता के उपन्यास मर्मस्पर्शी एवं रोचक हैं।

नरेश मेहता की कहानियों की संख्या अपेक्षाकृत कम है। उनके कहानी संग्रह दो हैं -'तथापि' (1961) और 'एक समर्पित महिला' (1967)। उन्होंने अपनी कहानियों में मुख्य रूप से जीवन के यथार्थ को अभिव्यक्ति दी है। 'किसका बेटा', 'दुर्गा', 'वह मर्दषी' आदि कहानियों को पढ़कर ज्ञात होता है कि मानव जीवन के यथार्थ को पहचानने की उनकी गहन अन्तर्दृष्टि है। 'चाँदनी', 'अनबीता व्यतीत', 'एक इतिश्री', 'एक महिला', 'तिष्यरक्षिता की डायरी' आदि उनकी प्रमुख कहानियाँ हैं। डॉ. लक्ष्मी शंकर वार्ष्णेय के अनुसार 'ये कहानी को अभिव्यक्ति मानते हैं, घटना मात्र नहीं।'

नरेश मेहता की कहानियों में जीवन का स्थूल पक्ष या विराटता का बोध चाहे प्राप्त न होता हो, किन्तु उन्होंने निष्ठा, गरिमा और मर्यादा का संतुलित चित्रण किया है। अपने पात्रों को उन्होंने पूर्ण सहानुभूति दी है, और उन्हें उचित संगति में प्रस्तुत किया है, जिसकी आधार भूमि व्यापक है। श्रव्यकाल के साथ दृश्य काव्य के क्षेत्र में भी, नरेश मेहता का योगदान सराहनीय है। दृश्यकाल के विविध रूपों में प्रमुख दो हैं–नाटक और एकांकी। 'सुबह के घण्टे' (1956), 'खण्डित यात्रायें' (1962), 'रोटी और बेटी' आदि प्रमुख नाटक हैं। त्रिभुवन सिंह के अनुसार 'सुबह के घंटे' एक राजनैतिक नाटक है। एक क्रान्तिकारी के जीवन को केन्द्र में रखकर स्वाधीनता–पूर्वक और स्वाधीनता–प्राप्ति के बाद की राजनीतिक परिस्थितियों पर इस नाटक में प्रकाश डाला गया है। गाँधीवादी कांग्रेसी, मार्क्सवादी तथा क्रान्तिकारी दलों के सिद्धान्तों और गतिविधियों पर इस नाटक में अच्छा विवेचन हुआ है। फ्लैशबैक टेकनीक (उपदीप्त शैली) का इस नाटक में प्रयोग किया गया है।

'खण्डित–यात्रायें' नाटक सामाजिक–आर्थिक समस्याओं और मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रियाओं पर आधारित है। इसमें प्रचलित संस्कारों और आधुनिक भाव–बोध के टकराव को रोचक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। नाटक में शिल्पगत नवीनता दृष्टव्य है। नाटक में कुल तीन अंक हैं पर परस्पर सम्बन्ध होते हुए भी हर एक अंक का पृथक अस्तित्व है।

'रोटी और बेटी' हरिजन समस्या पर आधारित नाटक है। लेखक ने इस नाटक में बड़ी मार्मिकता से स्पष्ट किया है कि हमारे देश में एक हरिजन राष्ट्रपति तो हो सकता है, पर सबके साथ रोटी–बेटी का सम्बन्ध नहीं रख पाता।

'सनोवर के फूल' एकांकी संग्रह है और 'पिछली रात की बर्फ' रूपक संग्रह है। 'उलझन' तथा 'दामाद' हास्य–व्यंग्य प्रधान नाट्य रचनाएँ हैं। 'फैसला' में उन्होंने विधवा जीवन की त्रासदी को नाट्य रूप में प्रस्तुत किया है। श्री मेहता की नाट्य कृतियाँ आधुनिक भाव बोध और प्रयोग धर्मिता से अनुप्राणित हैं।

नरेश मेहता ने स्फुट रूप से समीक्षात्मक निबन्ध भी लिखे हैं। कतिपय पुस्तकों की समीक्षाएँ भी उन्होंने की हैं। 'काव्य का वैष्णव व्यक्तित्व' (1972) उनकी प्रमुख समीक्षा कृति है। कुछ काव्य ग्रन्थों की भूमिका के रूप में भी उन्होंने अपनी समीक्षात्मक दृष्टि का परिचय दिया है। उदाहरणार्थ 'प्रवाद पर्व' की भूमिका 'काव्यात्मकता और काव्य भाषा की भूमिका' को देखा जा सकता है, जिसमें उन्होंने काव्य, काव्यात्मकता और काव्य भाषा का सूक्ष्म विवेचन किया है।

नरेश मेहता सुधी साहित्यकार हैं। उनमें भावयित्री और कारयित्री प्रतिभा का सुन्दर समन्वय हुआ है। बहुमुखी प्रतिभा के धनी नरेश मेहता ने नाटक, एकांकी, उपन्यास, कहानी आदि अनेकानेक विधाओं में साहित्य का सृजन किया। वे मुख्यत: कवि हैं और उनकी काव्य प्रतिभा का सर्वोत्तम निदर्शन उनके खण्ड काव्यों में देखने को मिलता है। दूसरे तारसप्तक के उदीयमान कवि नरेश मेहता ने अपने खण्ड काव्यों में पौराणिक प्रसंगों को आधुनिक सन्दर्भों में प्रस्तुत किया है। आकाशवाणी के माध्यम से हिन्दी सेवा के साथ ही उन्होंने 'कृति' जैसी पत्रिका का सम्पादन व प्रकाशन भी किया था। लगभग सत्तर वर्ष की अवस्था हो जाने पर भी वे शिथिल और शान्त नहीं हुए वरन् अविराम अपनी अन्तिम साँसों तक साहित्य–साधना में तल्लीन रहते हुए अपने विचारों को एवं लेखनी को विराम देकर अपने मूल तत्व में 22 नवम्बर 2000 को समाहित हो गए जो कि चिरशाश्वत है।

136, मयूर रेजीडेंसी, फरीदी नगर,
लखनऊ–226015 (उ.प्र.)
मो.– 9415045584

उत्सव पुरुष : नरेश मेहता

-विवेक सत्यांशु

जन्म – 20 जनवरी 1970।
शिक्षा – एम.ए।
रचनाएँ – चार पुस्तकें प्रकाशित।
सम्मान – हिन्दुस्तानी अकादमी सम्मान से सम्मानित।

नरेश मेहता उन थोड़े से लोगों में एक थे जो हिन्दी कविता के और तार सप्तक के सिर्फ महत्त्वपूर्ण कवि ही नहीं थे, बल्कि उतने ही महत्त्वपूर्ण उपन्यासकार भी थे। उनका चर्चित उपन्यास 'वह पथ बंधु था' अपने समय का महत्त्वपूर्ण दस्तावेज है। वह भीड़-भाड़ की चकाचौंध से दूर अपनी जड़ों से, जमीन से जुड़े रचनाकार थे। उनके लिये रचना शौक नहीं थी, शब्द की साधना थी, आराधना थी। इसीलिए अपने लेखन में वे शब्द पर विशेष बल देते थे। भाषा की सर्जनात्मकता पर विचार करते हुए अज्ञेय को बार-बार लगा कि सृजन की मूल समस्या सर्जनात्मक शब्द की उपलब्धि की समस्या है। अज्ञेय एक स्थान पर लिखते हैं-'मैं कह सकता हूँ कि सर्जक कवि का सरोकार भाषा का नहीं, शब्द का प्रयोग है। जहाँ भाषा पीछे छूट जाती है और केवल शब्द रह जाता है। शब्द जो कि समय से परे भी जा सकता है। नरेश मेहता के लिए शब्द साधना थी, आराधना थी।

नरेश मेहता स्वयं उत्सव पुरुष थे। उन्होंने इस शब्द का प्रयोग सिर्फअपने लेखन में ही बार-बार नहीं किया है, वे जीवन में भी उत्सव प्रिय ही थे। उत्सव-प्रियता उनके स्वभाव का स्थायी स्वर था। जबकि उनका जीवन बहुत संघर्षों भरा था। इलाहाबाद बहुत निर्मम और संवेदन शून्य शहर है। यहाँ साहित्य भी लोगों के लिए अय्याशी और मठाधांशी है, सर्जनात्मक कर्म नहीं। ऐसे निर्मम वातावरण में सर्जक नरेश मेहता के लिए जीवन-यापन बहुत कठिन था। उनके पास जीविका का कोई आधार नहीं था। बहुत मुश्किल से उन्हें पंत जी की वजह से रेडियो की नौकरी मिली तो प्रगतिशील लेखक संघ का सदस्य होने की वजह से यह नौकरी छूट गयी।

प्रगतिशील लेखक संघ सी.पी.आई. का सांस्कृतिक संगठन है, जो एक वामपंथी संगठन है। नरेश मेहता जी ने इसकी सदस्यता से त्यागपत्र दे दिया और रेडियो की नौकरी के लिए बहुत प्रयास किया, लेकिन वह नहीं मिली। सत्य उद्घाटित करने के अपने-अपने रंग होते हैं। साथ ही यह भी ध्यान रखा जाए अनुभूतिगत सत्य, वस्तुगत सत्य से कहीं अधिक सजीव होता है। महिमा मेहता जी ने एक जगह इसमें लिखा है- और अचानक उनके मुँह से निकल गया 'अगर किसी कवि से तुम्हारा विवाह हो जाए तो?'
'कभी नहीं। किसी कवि से विवाह करने से तो अच्छा है एक चपरासी से विवाह करना।'

'क्यों?'

'मैंने देखा सुना और पढ़ा है कि कवि जिम्मेदार व्यक्ति नहीं होता। घर संसार के प्रति लापरवाह होता है। अपने परिवार को सच्चे दिल से प्यार नहीं करता, सिर्फ अपनी रचना को प्यार करता है। सारे दिन घर में रहता है और कुछ कमाकर भी नहीं लाता। चपरासी में दो विशेषताएँ तो दिखती ही हैं कि वह दिन में दस बजे से शाम पाँच बजे तक घर से बाहर रहता है और महीने के अंत में तनख्वाह लाता है।'

दुर्भाग्य से महिमा मेहता जी का साहित्यकार से ही विवाह होता है और सारी विषमताओं को जीवन भर झेलना पड़ता है। नरेश मेहता जी पूर्णतः साहित्यकार थे, अपनी वेषभूषा से लेकर जीवन शैली तक वे पूर्णतः सन्त गृहस्थ थे। परिवार ही उनकी शक्ति थी, जिसके चलते वे बड़ी से बड़ी चुनौतियाँ झेल गये। दूसरी तरफ यह भी सत्य है कि अगर नरेश मेहता जी को महिमा मेहता का साथ न मिला होता तो उनका यह पूर्णकमल सा विकास सम्भव न हुआ होता। सारी धूप अपने माथे पर लेकर महिमा जी ने योग्य सहधर्मिणी के नाते नरेश मेहता को जो छाँह प्रदान की, उसी में आश्रय लेकर नरेश जी अपना मनचाहा कर पाये, साहित्य की बंशी में सुमधुर स्वर फूँक सके, शिखरों पर चढ़ते हुए वापस लौटने का ध्यान ही न रहा।

नरेश मेहता की कविताएँ अद्वितीय हैं। वैसे ही उनका व्यक्तित्व भी अनोखा था। वे ध्रुवान्तों में जीने वाले व्यक्ति रहे हैं। एक तरफ वे क्रान्तिचेता रहे तो दूसरे वैष्णव सन्तों की संवेदना में जीते हुए अपना योगक्षेम धर्म निभाते रहे। वे घनघोर प्रेमपगी मानसिकता में भी जी सकते थे तो वे वैराग्य की अतियों तक भी पहुँच सकते थे। विद्यार्थी जीवन के कुछ वर्षों में वे फौज में भर्ती भी हुए थे और बौद्ध भिक्षुक भी बन गये थे। निरन्तर अभावों में रहते हुए उनके भीतर एक मानसिक अभिजात्य भी था। उनकी निश्छल हँसी में उनकी निश्चिन्तता और बड़प्पन झलकता था।

नरेश मेहता जी की सहधर्मिणी महिमा मेहता जी ने नरेश मेहता पर संस्मरण की एक किताब लिखी है–उत्सव पुरुष नरेश मेहता। महिमा मेहता जी द्वारा लिखी हुई यह पुस्तक नरेश मेहता पर सिर्फ संस्मरण ही नहीं है, एक श्रमबहुल ऊबड़-खाबड़ मार्ग की जिजीविषा भरी सहयात्रा के साथ ही एक सृजन धर्मी व्यक्तित्व को समझने की कोशिश भी है। नरेश मेहता के पास कोई जीविका का आधार नहीं था। उनकी पत्नी महिमा मेहता जी एक विद्यालय में अध्यापिका थीं। उन्हीं की नौकरी से घर परिवार चलता था। महिमा मेहता जी ने इस किताब में एक जगह लिखा है–'परन्तु जिस विवशता और विषमता में, मैं विद्यालय में अपने कर्त्तव्य का निर्वहन कर रही थी, वह राह बड़ी कठिन थी। कर्त्तव्य परायणता से जहाँ सम्मान स्वतः प्राप्त हो जाना चाहिए, वहाँ मुझे बड़ी कठिनाई और सूझबूझ से अपने लिये सम्मान अर्जित करना पड़ रहा था। वहाँ किसी का भी पानी कभी भी उतारा जा सकता था, बल्कि उतार दिया जाता था। मेरा पति कहीं नौकरी नहीं करता था यानी की दुनिया की नजर में नाकारा था। मेरे साथ तो यह एक 'वीक पाइण्ट' भी था। मैं बारह-पन्द्रह रुपये की सूती धोती और बाटा की चप्पल पहनती थी। चप्पल चटकारते हुए पैदल विद्यालय आती-जाती थी। मेरी कोई सामाजिक प्रतिष्ठा नहीं थी।'

14/92 शिवनगर कालोनी, अल्लापुर,
इलाहाबाद-211006 (उ.प्र.)
मो.-7068327987

वैदिक-चेतना के आर्ष कवि नरेश मेहता

- प्रभुदयाल मिश्र

जन्म - 16 अक्टूबर 1946।
शिक्षा - एम.ए.।
रचनाएँ - पैंतीस पुस्तकें प्रकाशित।
सम्मान - म. प्र. संस्कृत अकादमी द्वारा व्यास सम्मान।
विशेष - अध्यक्ष, महर्षि अगस्त्य वैदिक सस्थान।

पिछली सदी के अस्सीवें दशक के उत्तरार्द्ध के एक वर्ष 'कविता की तीसरी आँख' के द्रष्टा-समीक्षक श्री प्रभाकर श्रोत्रिय ने भोपाल में श्री नरेश मेहता के आत्मकथात्मक रचना पाठ का एक त्रिदिवसीय आयोजन सम्पन्न कराया। इसमें वैदिक ऋषि चेतना के महासर्जक नरेश मेहता के साक्षात्कार का वह अवसर मुझे अविस्मरणीय है। उनकी 'उत्सवा' पर श्रोत्रिय जी की यह टिप्पणी उनकी परम वैष्णवी छवि के इसी महाभाव का समाकलन करती है-

'धरती को जहाँ से छुओ, ऋचा लगती है, वह दूर्वादल की भाषा वाली एक भागवत कथा है, वन-उपवन धरती के काव्य संकलन हैं, नदियाँ कृष्ण प्रियाएँ हैं और हवाएँ पीपल पर अपनी प्रार्थनाएँ टाँग सूर्यास्त का पीछा करते हुए आकाश के भी आकाश में गरुड़ों सी चली गई हैं।' वैदिक अनुगूँज की इस भावभूमिका में ही मैंने दिल्ली पहुँचकर लालबहादुर शास्त्री संस्कृत केंद्र से श्री सातवलेकर का दशभागीय वेदभाष्य संग्रहीत कर जैसे इस महामनीषी से तदाकारता का एक अक्षुण्ण भाव सँजोया!

वेद का कवि अपनी 'मनीषी परिभू : स्वयम्भू;' (यजुर्वेद 40/8) सत्ता में परमात्मा के एकदम समकक्ष है। वेद के अनुसार परमात्मा संसार की परिकल्पना करने वाला एक कवि ही है-

'योधर्ताभुवनानांयउस्त्राणाम्, अपीच्यावेदनामानिगुह्या।
कविः काव्यापुरुरूपंद्यौरिवपुष्यति, नभन्ताम्अन्यकेसमे॥ (ऋक्. 8.41.5)

-जो परमात्मा सभी लोकों का और उन लोकों को प्रकाशित करने वाली प्रकाश की किरणों को धारण करने वाला है, जो परमात्मा अबतक प्रकट न हुए और छिपे हुए नामों को भी जानता है, वह कवि (परमात्मा) अपने काव्यों को ऐसे ही प्रकट करता है जैसे सूर्य विभिन्न रूपों को प्रकट करता है।' श्री नरेश मेहता की कक्षा के ज्ञान के लिए हमें यजुर्वेद की इस ऋचा का विशेष रूप से ध्यान आता है -

परिद्यावापृथिवीसद्यइत्वा परिलोकान्परिदिशः परिस्वः।
ऋतस्यतन्तुंविततंविचृत्य तदपश्यत्, तदभवत्, तदासीत्। (यजु. 32-12)

अर्थात् सृष्टि के परम सत्य की खोज में एक अन्वेषक द्युलोक और पृथ्वी लोक के चारों ओर गया। सभी दिशाओं में भी गया, और यहाँ तक कि स्वर्गलोक में भी गया। उसने पाया कि सभी जगह एक ही गतिशील सत्य व्याप्त है। उसने उस सत्य को भली प्रकार देखा, और फिर वह उस सत्य का अंग बन गया। पर अंत में उसने जाना कि वह तो सदा ही उस सत्य का अंग था।

वैदिक मनीषा की दृष्टि के दो भाव-बोध हैं-एक ऋषि-दृष्टि और दूसरा मुनि-मार्ग। अपनी प्रसिद्ध 'वेद मीमांसा' में अनिर्वाण (वेद विद्या प्रतिष्ठान, उज्जैन से प्रकाशित) इसकी व्याख्या करते हुये कहते हैं-'देवदर्शन और आत्मदर्शन दोनों ही का मार्ग समान रूप से अतिप्राकृत अथवा अलौकिक है। देववादी उस बृहत् को बोधिग्राह्य वस्तु के रूप में हृदय के आवेग द्वारा प्राप्त करते हैं, एवं आत्मवादी उसे अपने ही आत्मरूपायन के

रूप में आत्मशक्ति के द्वारा प्राप्त करते हैं। वेद की भाषा में एक को 'आवेगकांपित विप्र' और एक को 'पौरुषदृप्त नर' कहा गया है। एक की प्राप्ति का माध्यम 'श्रद्धा' एवं 'बोधि' या 'परमज्ञान' है तथा दूसरे का तर्क और बुद्धि है।'

वेद-बोध की ये दृष्टियाँ नरेश मेहता से साक्षात्-कृत थीं। उन्होंने जैसे प्रकारांतर से ही गजानन माधव मुक्तिबोध से अपनी तुलना करते हुये कहा था कि वे जहाँ भीतर से शिव और बाहर से वैष्णव हैं वैसे ही मैं बाहर से शिव और भीतर से वैष्णव हूँ। शिव और वैष्णव की यह तात्विक एकता वस्तुत: भारतीय अध्यात्म का अर्थबोध ही नहीं आर्ष मेधा की परावस्था है -

'मैं जानता हूँ तुम वामन हो
पर हिरण्यगर्भ तो हो
और हिरण्यगर्भ होने का तात्पर्य है
युगनद्ध शिव होना
पर लगता है उषा के सोम अभिषेक ने
तुम्हें सदा के लिए शम्भु बना दिया
तुम शक्ति हो चुके हो।
पर शायद सृष्टि को जन्म देने के उपरान्त
उसके पालन के लिए तुम प्रकाशरूप
विष्णु हो। (पुरुष)

श्री नरेश मेहता की इस एक प्रतिनिधि कविता में जैसे वैदिक दर्शन के निगम-आगम, अव्यक्त, निराकार, साकार-वैष्णव, शैव तथा शाक्त सभी दर्शनों और भावबोधों का एकसाथ परिमाणन हुआ है। इसमें ऋग्वेद के नासदीय (19/129), हिरण्यगर्भ (10/121), पुरुष सूक्त (10/90), विष्णु सूक्त (1/154) और सूर्य सूक्त (1/115) की एक साथ समग्र छाया देखी जा सकती है। यह एक परिपूर्ण वैदिक दृष्टि है।

एक अच्छे विचारक और समर्थ द्रष्टा (कवि) को सर्वथा यही विधेय कहा जा सकता है कि वह पुराण और इतिहास के ऊहापोह से निवृत्त होने के लिए पुन: वेद की शरण में जाये क्योंकि मत-मतांतर के काल प्रक्षेप से अव्यक्त ही नहीं प्रतीकार्थी सगुण-साकार से अकल्पनीय दूरियाँ ला दी गईं हैं। श्री नरेश मेहता की शैव और वैष्णव के मेलापक की यह कविता क्या इन्हीं दूरियों को नहीं पाटती है -

'युद्ध के अठारह दिनों के रक्ताभिषेक के बाद ही
कृष्ण की वैष्णवता
इतिहास का वासुदेव बन सकी थी।
शतानक हुई इस पृथिवी
और संत्रस्त लोगों के पुन: उत्सव होने से अधिक
न कोई मंत्र है
और न वैष्णवता।
मनुष्य का कविता हो जाना ही उत्सव है।' (अरण्यानी से वापसी)

श्री मेहता की सृजन यात्रा के मुख्य पड़ाव, उनके प्रबंध काव्य- संशय की एक रात, महाप्रस्थान, प्रवाद पर्व, और शबरी उनके अंतर्योग द्वारा कुंडलिनी-प्रज्ञा के उन्नत चक्रवेध ही कहे जा सकते हैं जो उन्हें अपने साथ उनकी कविता के पाठक वर्ग को भी रसवंती 'गगन-गुफा' तक प्रवेश की सामर्थ्य प्रदान करते हैं।

श्री नरेश मेहता लिखते हैं-'**जब भी मैं/ फूल, नदी, या आकाश पर कविता लिखता हूँ/ तो वह मानवीय प्रकरण ही होता है / क्योंकि जब भी मनुष्य की आँखों में आँसू होते हैं/ मैंने फूल, नदी, आकाश को रोते देखा है।**'

'वैष्णव यात्रा' एक यह छंद पृथिवी सूक्त के इस मंत्र से सर्वथा तुलना योग्य ठहरता है-

यस्तेगंध:पुरुषेषुस्त्रीषुपुंसुभगोरुचि:
योअश्वेषुवीरेषुयोमृगेषूतहस्तिषु
कन्यायांवर्चोयद्भूमेतेनास्मॉअपिसंसृजमानोद्विक्षतकश्चन।
(गंधजोपृथिवि, तुम्हारी पुरुष में है
और नारी में
परस्पर कांति, शोभा
अश्व, मृग, हाथी
सुकन्या आदि कावर्चस्व
वह करे सुरभित हमें भी
द्वेष रतन कहीं कोई
कभी हो हम से।)
(अथर्ववेद 12/1/25)
- जब भी कोई फूल
पैरों के नीचे आ जाता है
लगता है कोई मंत्र दब गया है
चींटी के आहत होते ही संहिता की हत्या सा लगता है।
(वैष्णव यात्रा)

इसी प्रकार 'शबरी' की अधोक्त पंक्तियों में ऋग्वेद के अस्यवामीय सूक्त के इस प्रसिद्ध मंत्र की छाया प्रकट देखी जा सकती है –

इन्द्रंमित्रंवरुणग्निमाहु-रथो दिव्यःससुपर्णोगरुत्मान्
एकंसद्विप्रावहुधावदंत्यग्निंयमंमातरिश्वानमाहुः।46।
(इन्द्र वह, वह मित्र है उसको वरुण,
पावक कहा जाता
दिव्य पंखों युक्त है वह गरुड़
सत्य है ही एक
पर विद्वान्
बहुधा ही उसे
अग्नि, यमयामातरिश्वा
आदि कहते हैं।)
(ऋग्वेद 1/164/46/)
-शक्ति एक है
किसी मार्ग से चलो, वहाँ पहुँचोगे
योगी भक्त कहाओ कुछ भी
प्रभु तक ही पहुँचोगे। (शबरी)

'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' के वेदान्त उद्घोष को मुंडक उपनिषद् मकड़ी के द्वारा जाल उत्पन्न करने के उदाहरण से 'यथा ऊर्णनाभिः तन्तून् सृजते गृह्णते च यथा पृथिवीम् ओषधयः सम्भवन्ति' जिस प्रकार समझाता है 'महाप्रस्थान' के समय युधिष्ठिर को इसका प्रबोध सर्वथा समीचीन हो जाता है –

'मकड़ी की भाँति
इस मृत संसार को
बारंबार अपने ही करों से
बुनते रहने से क्या होगा?
जो वास्तविकता में नष्ट हो चुका
उसे स्मृतियों में भी नष्ट हो जाने दो।' (महाप्रस्थान)

तथा–

'झर जाने दो
इस शेष देह-भाव को भी
पृथ्वी जब देह का बोध त्याग देती है
तब शिव के कालजयी ललाट-सी
शुभ्र हिमालय हो जाती है
त्यागो इस देह को भी युधिष्ठिर।' (महाप्रस्थान)

दर्शन का यही उदात्त भावबोध 'प्रवाद पर्व' प्रबंध काव्य की भी जैसे आधार भूमि बनता है–

'इतिहास
खड्ग से नहीं
मानवीय उदात्तता से लिखा जाना चाहिए
इतिहास को भी वनस्पतियों की भाँति
सम्पूर्ण मेदिनी की
शोभा और गंध होने दो
उसे मानवीय अभिव्यक्ति का
औपनिषदिक पद दो।' (प्रवाद पर्व)

पुरुष कविता की पूर्व में भी चर्चा आई है तथा इसके परिपूर्ण भावबोध में इस आलेख का उपसंहार भी उचित प्रतीत होता है। इसमें कवि मेहता आकाश में चरखे के बिम्ब का साक्षात्कार करते हैं। सृष्टि के निर्माण और विस्तार की इस प्रक्रिया में उन्हें प्रभु की परात्परता का साक्षात्कार होता है –

'आकाश के चरखे पर
बादलों की पूनियाँ काती जा रही हैं।
देखते नहीं
यह प्रभु नहीं
प्रभु की परात्परता है।' (पुरुष कविता)

अथर्ववेद (कांड 10 सूक्त 7 स्कंभ सूक्त) में लगभग इसी प्रकार के बिम्ब का परिदर्शन ऋषि अथर्वा इस प्रकार से करते हैं–

'तंत्र में के युवती विरूपे अभ्याक्रामं वयतः षण्मयूखम्'

(छवि विरोधी युवतियाँ दो-दिनप्रभा, रजनी छः ऋतु की खूँटियों पर वर्ष का ताना बराबर बुन रही हैं)

वास्तव में अथर्ववेद जिस 'देव-काव्य' (पश्य देवस्य काव्यं न ममार न जीर्यति-अथर्व-10/8/32) का मानक प्रदान करता है, जो न कभी क्षीण होता है और न ही कभी विनष्ट होता है, श्री नरेश मेहता उसी चिरंतन काव्य के प्रणयिता हैं–तन मनः शिव संकलमस्तु।

35, ईडन गार्डन,
चूनाभट्ठी, कोलार रोड,
भोपाल-462016 (म.प्र.)
मो. - 9425079072

मंत्रपूता शबरी

- राजेश श्रीवास्तव

शिक्षा - एम.ए., पीएच.डी, डी.लिट्।
रचनाएँ - चौदह पुस्तकें प्रकाशित।
सम्मान - वागीश्वरी सम्मान सहित अनेक सम्मान।
विशेष - रामायण केन्द्र भोपाल के निदेशक।

नरेश मेहता अपने खण्डकाव्य शबरी के रचनाकर्म से संतुष्ट नहीं थे। वे दुविधा में थे। एक ओर युगबोध और देश काल की समस्याओं के कवि कर्म की प्रतिबद्धता तो दूसरी ओर शबरी का आर्षचरित्र, जिसके चित्रण की मर्यादा भी महत्त्वपूर्ण थी। शबरी के चरित्र से वे न्याय न कर सके। उनके पास कथासंकेत तो बहुत थे किंतु कथाशोध नहीं। इसका अनुमान उनको शबरी की भूमिका लिखते समय ही हो गया। वे लिखते हैं-मुख्य रूप से इसे किसी इतर प्रयोजन के लिए ही मुझसे लिखवाया गया। इसलिए छंदोबद्ध भी लिखा तथा रचना की संरचना में वैचारिकता कम ही आने दी। फिर भी अपने मूल प्रयोजन में रचना मेरे कवि का उतना ही प्रतिनिधित्व करती है जितना कि अन्य कृतियाँ। **(शबरी की भूमिका)**

शबरी नरेश मेहता का खंडकाव्य है। 1977 में लिखा हुआ। समाज के उपेक्षित वर्ग का प्रतिनिधित्व करती शबरी के संघर्ष को रामकथा के परिवेश में ही चित्रित करने का विचार नरेश मेहता के मन में क्यों आया? यह भी विचारणीय है। रामकथा में अनेक पात्रों की उपेक्षा का आरोप प्राय: वाल्मीकि और तुलसी पर लगता रहा है। शबरी, सुमित्रा, उर्मिला ही क्यों पुरुष पात्रों में दशरथ, जनक जैसे पात्र तो अब तक साहित्य में उपेक्षित ही रहे हैं। उर्मिला पर जिस तरह साकेत लिखा गया ठीक वैसा ही प्रयास शबरी के लिए नरेश मेहता का था। वह भी युगबोध और वर्णव्यवस्था के विमर्श संदर्भ में। नरेश मेहता उस पर खरे नहीं उतरे। लेकिन हाँ, उन्होंने वर्तमान समाज को समझाने के लिए रामकथा की शबरी को एक नए रूप में सबके समक्ष प्रस्तुत कर दिया।

तुलसीदास ने शबरी के चरित्र को संकेत भर में वर्णित किया था।

सबरी देख रामगृह आए। मुनि के वचन समुझि जिय भाए।।

इसके संदर्भ और प्रसंग मानस में नदारद हैं। मुनि का नाम मतंग है, यह वाल्मीकि रामायण के संदर्भ से ही ज्ञात होता है। उनके कौन से वचन थे जो शबरी के जिय को भाए? शबरी कौन थी? तुलसीदास मौन हैं-नाना पुराण निगमागम सम्मत। शबरी राम की प्रतीक्षा में ही थी। राम के आश्रम आते ही भक्तिभाव से शबरी उनके चरणों में लिपट गई और रसीले स्वादिष्ट कंदमूल फल उन्हें दिए। फिर बोली-

मैं नीच जाति की और अत्यंत मूढ़मति हूँ।
अधम जाति मैं जड़मति भारी।

राम ने सुना और उसे नवधा भक्ति का ज्ञान दिया। प्रथम भगति संतन कर संगा। राम ने यह भी कहा कि -

मम दरसन फल परम अनूपा। जीव पाव निज सहज सरूपा।।

अर्थात् मेरे दर्शन का परम अनुपम फल यह है कि जीव अपने सहज स्वरूप को प्राप्त हो जाता है। शबरी ने राम को सब कथा सुनाई और योगाग्नि से देह को त्यागकर दुर्लभ हरिपद में लीन हो गई।

वे यह भी लिखते हैं कि आदिकवि वाल्मीकि का इस प्रसंग

के पीछे सामाजिक प्रयोजन भी लगता है। प्रत्येक व्यवस्था का दोषमय होना नियति एवं प्रकृति है। वर्णव्यवस्था भी इसका अपवाद नहीं हो सकती। एक व्यक्ति किस प्रकार अपने चैतन्य की रक्षा इस सामूहिक जड़ता से कर सकता है? यह प्रश्न आदिकवि के युग में भी ज्वलंत था और आज के वर्गव्यवस्था वाले समाज में भी ज्वलंत समस्या है। वाल्मीकि ने सामाजिक वर्णव्यवस्था से ऊपर व्यक्ति के आध्यात्मिक स्वत्व एवं असंग कर्म को प्रतिस्थापित किया। शबरी वही बीज चरित्र है। चरित्र की दृष्टि से शबरी मंत्रचरित लगती है। वाल्मीकि रामायण के अरण्यकांड के 73-74 वें सर्ग में शबरी की जो थोड़ी-बहुत कथा मिलती है, उसी में सारे संकेत और प्रसंग छिपे हैं। अनेक रामकथाकारों, प्रवचनकारों और छिद्रान्वेषियों ने शबरी के चरित्र को अपनी तरह से अंकित करने का प्रयास किया है। शबरी हमारे विचार के केन्द्र में आती है तो यह भी उस चरित्र की सार्थकता है। यह निम्नवर्ग की साधारण स्त्री के आत्मिक एवं आध्यात्मिक संघर्ष की ऐसी कथा है जो रामायण के शीर्ष पात्रों में भी अपना वैशिष्ट्य स्थापित करती है।

नरेश मेहता ने शबरी कथा का ताना-बाना थोड़ा अलग तरह से चुना। कथा का संचय तो उन्होंने वाल्मीकि की रामकथा से किया। खंडकाव्य के 5 खंड किए-त्रेता, पंपासर, तपस्या, परीक्षा और दर्शन। त्रेता सर्ग में ग्राम्य एवं नगरीय सांस्कृतिक परिवेश और वर्णव्यवस्था का परिचय दिया। वर्णव्यवस्था में विश्वास न रखने वाले राक्षस कहलाए। हिंसा, लूटपाट तथा हत्याएँ इन राक्षसों का जीवन दर्शन था। विंध्यक्षेत्र की शबर जाति में शबरी रहती थी जिसे अपने पारिवारिक कर्म जीवहिंसा के प्रति वितृष्णा थी। इसी कारण वह परिवार त्यागकर चुपचाप घर से निकल जाती है। पम्पासर में ऋषियों के आश्रम हैं। वहीं उसके व्याकुल मन को शान्ति मिलना थी। उसने वही मार्ग चुना। किंतु सामाजिक व्यवस्था से भिज्ञ थी। उसे अनुमान था कि ऋषि समाज उसकी उपस्थिति को स्वीकार न करेगा। हीन भावना से ग्रस्त शबरी छुपकर आश्रम और ऋषियों की सेवा करने लगी। किंतु मतंग ऋषि ने उसे पहचान लिया। वह मतंग ऋषि की स्नेह पात्र बनती है और उसे आश्रम में सेवा दायित्व मिलता है। तपस्या सर्ग में शबरी की कठोर साधना, अनुशासन और गुरुकृपा उसे तपस्विनी के रूप में स्थापित करते हैं। परीक्षा सर्ग में कथा रोमांच लाते हुए कवि ने एक प्रयोग किया। शबरी यद्यपि ऋषि के लिए पुत्री समान प्रिय है किंतु उनकी उदारता से सभी आश्रमवासी विद्रोही हो जाते हैं। शबरी को शूद्र और ऋषि को भ्रष्ट कहकर उनका बहिष्कार किया जाता है। शबरी और ऋषि मतंग अलग अपनी कुटी बनाकर रहते हैं। शबरी पूर्णत: प्रभुमय हो गई है और अपने पति तथा समाज के प्रतिरोध संकटों का सामना करती है। दर्शन सर्ग में राम और लक्ष्मण की मतंग ऋषि और शबरी से भेंट होती है। शबरी राम की प्रतीक्षा में थी। वह उनके दर्शन कर अपने जीवन के लक्ष्य को प्राप्त कर लेती है। वह उन्हें अपने हाथों से बेर खिलाती है और प्रभु से वियोग की इच्छा न रखते हुए उन्हीं की सहमति से योगाग्नि में अपनी देह का त्याग कर देती है।

मतंग ऋषि से राम-लक्ष्मण का परिचय रामकथा का अतिक्रमण है किंतु नरेश मेहता ने यह साहस किया है। व्यक्ति और समवाय के अविरोधी स्वर को भारतीय संस्कृति ही उभार सकी है। शबरी काव्य की भूमिका में नरेश मेहता अपने मन्तव्य को स्पष्ट करते हैं। वे इसी व्यक्तिमत्ता की घोषणा करते हैं-शबरी अपनी जन्मगत निम्नवर्गीयता को कर्मदृष्टि के द्वारा वैचारिक ऊर्ध्वता में परिणित करती है। यह आत्मिक या आध्यात्मिक संघर्ष व्यक्ति के संदर्भ में मुझे आज भी प्रासंगिक लगता है। त्रेतायुग में वर्णव्यवस्था के बीच भी पावन कर्मों से वर्णमुक्ति का प्रयास करने की छूट थी। शबरी इसी मुक्ति के लिए संघर्ष कर रही है। शबरी काव्य का मूल संकेत भी यही है कि वर्णव्यवस्था से ऊपर उठकर कोई भी व्यक्ति आध्यात्मिक स्वत्व को पा सकता है। सामाजिक मूढ़ता, परिवेशगत जड़ता और अपने युग के साथ संलापहीनता की स्थिति में व्यक्ति केवल अपने को ही जागृत कर सकता है। व्यक्ति समाज बन सकता है। शबरी भी इस भूमिका पर आत्मोत्थान करती हुई वर्णमुक्त हो जाती है। वह आत्मिक संघर्ष करती हुई और पावन और मंत्रपूत चरित्र बन गई है।

असमिया गीति रामायण में गिलहरी की यह अनन्य लोकप्रिय कथा मिलती है जो लोक में व्याप्त है। मतंग वन में ही एक

वृक्ष की डाल पर गिलहरी रो रही थी। राम ने कारण पूछा तो उसने कहा सीता के लिए रो रही हूँ। वह राम को सूचना देती है कि रावण ने सीता का हरण किया है। राम ने पीठ थपथपा कर उसे वरदान दिया कि कितनी भी ऊँचाई से गिरने पर तुम्हें चोट न लगेगी।

नरेश मेहता को रामकथा की इन संदर्भित कथाओं में कोई रुचि नहीं है। वे शबरी को एक नारी के रूप में देखते हुए उसकी अस्मिता और जातिगत व्यवस्था के प्रश्नों पर ही केंद्रित रहते हैं तथापि शबरी की उपस्थिति स्वयं ही रामकथा का प्रकाश वहाँ प्रकट कर देती है।

वाल्मीकि और तुलसी के अतिरिक्त अनेक रामायणकारों ने शबरी के विषय में कुछ रोचक तथ्य प्रस्तुत किए हैं। उसका नाम शबरी था। किंतु वह शबर जाति की नहीं थी। वह श्रमणी अर्थात तापसी थी।

श्रमणी शबरी नाम का कुत्स्थ चिर जीवनी (वा रा- 3/73/26)
उसे धर्मसंस्थिता भी कहा गया है। श्रमणी धर्मसंस्थिताम्।
(वा रा - 3/74/7)

मरते हुए कबंध ने भी राम से कहा था–उसका नाम शबरी है। वह संन्यासिनी है और बहुत बूढ़ी है। वह नमस्कार किए जाने योग्य है। आपके दर्शन कर वह स्वर्ग को चली जाएगी। राम भी उससे मिलने को विवश हुए। उन्होंने शबरी से इस तरह संवाद किया मानो वह बहुत पुरानी परिचित है। काम आदि छः रिपुओं को जो तपस्या में विघ्न डाला करते हैं, तुमने जीत तो लिया है न? तुम्हारी तपस्या उत्तरोत्तर बढ़ती तो जाती है न? तुमने क्रोध को अपने वश में कर रखा है न? हे तपोधन! तुम आहार में सँभलकर तो रहती हो न? तुम्हारा मन संतुष्ट है न? तुम्हारे सब व्रत ठीक चल रहे हैं न? शबरी ने कहा–आपके दर्शन से मुझे अपने तप का फल मिल गया। राम ने कबंध से मतंग वन के चमत्कारों की कथा सुन रखी थी। शबरी ने राम की वह अभिलाषा पूर्ण की। राम को मतंग वन भी दिखाया और चमत्कारों का साक्षात्कार भी कराया। वन के संचित स्वादिष्ट फलों का सेवन भी अपने हाथों से अपने प्रभु को कराया। पद्म पुराण में वर्णित राम कथा में इस प्रसंग का विस्तार से वर्णन है। शबरी ने राम को सब बताया कि किस प्रकार मेरे गुरु महर्षि ने मंत्रपूर्वक अपने नीड़ (शरीर) को हूत किया था।

अध्यात्म रामायण के अनुसार विराध के परामर्श देने पर कि शबरी से सीता के संबंध में जानकारी मिलेगी वे शबरी के पास जाते हैं। शबरी उन्हें बताती है कि सीता लंका में है और सुग्रीव के पास जाने का परामर्श देती है। एक रोचक कथा तत्वसंग्रह रामायण में है–राम सीता के विरह में नदी पर्वत वृक्षों से संवाद कर रहे हैं। गोदावरी से पूछने पर उसने उत्तर न दिया तो राम ने उसे श्राप दिया कि तुममें नहाने वाला चांडाल हो जाएगा। बाद में देवताओं की प्रार्थना पर राम ने अपने चाप से गोदावरी की धारा को उस कूप से मिला दिया जिसमें शबरी नहाती थी। बलरामदास कृत रामायण में शबरी अपने पति के साथ राम से मिलती है। रामरसिकावली के अनुसार शबरी एक मुनि पत्नी थी। रामकियेन के अनुसार शबरी एक अप्सरा थी। उसे श्राप था कि वह एक जलते हुए जंगल के निकट तब तक निवास करे जब तक राम स्वयं आकर उसे न बुझा दें। शबरी के निवेदन पर राम ने उस वन की आग बुझा दी। जिससे वह अप्सरा के रूप में अपने स्वर्गलोक चली गई।

रामकथा के पात्रों में युगीन वर्तमान समस्याओं के अधिरोपण से पूर्व कथासंदर्भों के अर्थों पर गहन शोध भी आवश्यक है। नरेश मेहता इसमें कहीं चूक गए किंतु उन्होंने शबरी के माध्यम से अनेक पात्रों को पुनर्विचार के लिए प्रस्तुत किया यह उनकी एक बड़ी उपलब्धि है।

निदेशक, रामायण केन्द्र भोपाल
बी- 16, लेक पर्ल रेसीडेंसी
ई-8, अरेरा कालोनी,
भोपाल-462039 (म.प्र.)
मो.- 7974004023

एक समग्र व्यक्तित्व के धनी : नरेश मेहता

– ममता श्रवण अग्रवाल

जन्म – 13 अप्रैल।
शिक्षा – स्नातक।
रचनाएँ –नौ पुस्तकें प्रकाशित।
विशेष – मोटीवेंशनल रचनाओं का बारह घंटे अनवरत पाठ कर इंटरनेशनल वर्ल्ड रिकार्ड।

युद्ध क्या ऐसे ही होते समाप्त?
जब शस्त्रों से ये शेष कर दिए जाते हैं युद्ध स्थल में,
तब अंतस्थल में युद्ध अशेष हो जीवन भर चलते रहते हैं।
नरेश मेहता (कवि सम्राट और चिंतक)

युद्ध कभी समाप्त नहीं होते और न ही ये हारने वाले को और न ही ये जीतने वाले को शांति देते हैं और इसी गहन भाव को आपने अपने दो खंड काव्य, संशय की एक रात, और, महाप्रस्थान, दोनों में बड़े ही सरल और गूढ़ तरीके से समझाया है। दो और खंड काव्य 'शबरी' व 'प्रवाद पर्व' हैं जिनमें भी आपने भारतीय संस्कृति को आधार मानकर आधुनिक युग की ज्वलंत समस्याओं को सामने रखा है। चाहे वो 'प्रवाद पर्व' का धोबी हो या 'शबरी' का शिष्य समुदाय या महाप्रस्थान के अर्जुन की उदासीनता या फिर 'संशय की एक रात' के राम का संशय। सभी में आपने पौराणिक और आधुनिक युग के लोगों की एक जैसी मन स्थिति को दर्शाया है।

मानव योनि पाकर भी कोई इस जीवन की गहनता को सिद्ध कर परिस्थितियों को अपने अधीन कर लेते हैं और कोई परिस्थितियों के वशीभूत हो अपने को उनमें जकड़ लेते हैं पर संसार सदैव ऐसी ही दिव्य चेतनाओं को अपना साक्षी बनाता हैं जो स्वयं अपना इतिहास रचते और लिखते हैं। आज हम एक ऐसे कवि हृदय की बात करने जा रहे हैं जो न तो परिस्थितियों से घबराए और न ही परेशानियों में डगमगाए और इन सबके विपरीत बिना थके और बिना टूटे निरंतर ऊँचाइयों के पथ पर अग्रसर होते रहे और आज इतिहास के पन्नों में उपस्थित होकर जनमानस के चेतना का अमिट हिस्सा बन गए हैं।

हम बात कर रहे हैं ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित कवि सम्राट 'नरेश मेहता' जी की। नरेश मेहता जी का जन्म मध्य प्रदेश के शाजापुर ग्राम के एक गुजराती ब्राह्मण परिवार में 15फरवरी 1922को हुआ था। आपके पिता श्री बिहारी लाल शुक्ल थे और माता जी जिनका साथ आपकी अल्पायु में ही मात्र डेढ़ वर्ष में ही छूट गया था। स्थितियाँ ऐसी निर्मित हुईं। कि आपका बचपन अपने काका शंकर लाल शुक्ल जी की छत्रछाया में बीता।

आपका बचपन का नाम पूर्णशंकर था पर आगे बढ़ती नदिया की धारा को जैसे अपने आस पास के वातावरण से नई-नई मंजिलें मिल ही जाती हैं, ठीक वैसे ही उनके साथ भी हुआ। जब उनके मित्र शंकर सिंह का उन दिनों उज्जैन के राज परिवार में जाना होता था और संयोगवश एक दिन मित्र शंकर सिंह उन्हें राजमहल में राजमाता जी के पास ले गए और तब तक हमारे पूर्णशंकर जी कस्बे में प्राथमिक शिक्षा लेने के बाद मैट्रिक की पढ़ाई के लिए उज्जैन आ चुके थे और सरस्वती के पुत्र पर माँ शारदे की कृपा का प्रभाव था कि आपके लेखन से प्रभावित राजमाता ने प्रसन्न होकर उन्हें नर श्रेष्ठ यानी 'नरेश' की उपाधि दी और इस प्रकार पूर्ण शंकर मेहता नरेश मेहता बन गए थे।

नरेश मेहता जी का कवि मन राजमाता के स्नेह और आशीर्वाद से और ज्यादा ऊर्जा से पोषित हो गया था और शिक्षा के साथ -साथ उनका लेखन कार्य भी गति पा रहा था पर यहाँ से उनके जीवन में घटी एक घटना ने एक नया मोड़ ले लिया।

आगे की शिक्षा का दायित्व स्वयं सँभालते हुए आपने अपनी शिक्षा को आगे बढ़ाया और काशी बनारस के बनारस विश्व हिंदू विश्व विद्यालय में प्रवेश लेकर स्नातकोत्तर की डिग्री ली। वहीं आप कवि श्रेष्ठ मैथिलीशरण गुप्त जी और कहानी सम्राट प्रेमचंद्र जी के सान्निध्य में आ आपके लेखन को एक नई दिशा और नई गति मिली। साथ ही आप महान क्रांतिकारी भगत सिंह जी के संपर्क से भारत छोड़ो आंदोलन में भी शामिल हुए। इस प्रकार युवावस्था का आगमन होने लगा और आप विवाह बंधन में बँध गए। अति शीघ्र ही पत्नी का स्वर्गवास हो गया जिससे आहत हो आप का मन वेदना से भर उठा। दूसरी पत्नी 'महिमा' आपकी जीवन संगिनी बनकर आईं और सच में वे एक आदर्श भारतीय नारी की भाँति पति के साथ कदम से कदम मिलाकर चलीं। उन्हें पल-प्रतिपल संबल भी दिया और तभी प्रयागराज में सन 1948 में आप आल इंडिया रेडियो के कार्यकारी अधिकारी नियुक्त हुए। 1952 में ही इस पद भार से मुक्त भी हो गए और उन्हीं विषम परिस्थितियों में इनके लेखन के प्रति रुझान को देखते हुए पत्नी महिमा ने आर्थिक क्षेत्र सँभाला और उन्हें लेखन की ओर और प्रेरित किया। पत्नी के आत्मीय संबल और आर्थिक मजबूती से आप पूरी तरह लेखन को समर्पित हो गए और लेखनी की निर्झरणी अबाध निर्झर होने लगी।

साहित्यिक क्षेत्र और निखरता व्यक्तित्व-सरस हृदय रचना सम्राट नरेश मेहता जी के साहित्यिक जीवन दर्शन में उनके अंदर का वे महामानव दिखाई पड़ता है जिसके तत्व ज्ञान की आज महती आवश्यकता है। उनके प्रत्येक काव्य सृजन में उनका व्यक्तित्व परिलक्षित होता है और यथार्थ में देखा जाए तो कोई भी रचना हो अपने रचनाकर का प्रतिबिंब ही होती है।

हम उनके 'अरण्या' खंडकाव्य को ही देखें तो हम पाएँगे कि उसमें वर्णित संदेश किसी पौराणिक युग की वेद ऋचाओं से भी ज्यादा गहन हैं और सुगम भी।

अरण्या यानी संन्यास भाव जो मानव जीवन के विचलित मन की दशा का बोधक है, उसे संबोधित कर वे कहते हैं कि मेरी अरण्या, मुझे अपनी शाश्वती पर लौटना होगा यानी संन्यास का भाव जो कर्म हीनता का परिचायक है उसे पुन: कर्म मार्ग का चयन करना होगा यानी व्यक्ति को संन्यास के पलायन मार्ग में न जाकर कर्म मार्ग में बढ़ना चाहिए और कर्म पथ की बाधाओं से बिना विचलित हुए अपना कार्य करना चाहिए। क्योंकि कवि या कलाकार एक व्यक्ति न होकर एक समग्र व्यक्तित्व होते हैं और जिनके विचार में संसार का कल्याण भाव होता है और वही विचार जब लेखनी से प्रकट होते हैं तब जो लिखा जाता है वह कल्याणकारी होता है और जो कल्याणकारी होता है, वही तो उपनिषद है यानी आत्म उपनिषद यानी जो आत्मा को जागृत कर दे और इस कल्याण भाव को पाने के लिए कवि की रचना को किसी बाह्य आवरण की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए।

यदि भाव चेतना में पवित्रता और एकाग्रता है तो निश्चित ही उसमें पीड़ा और करुणा का समावेश होगा और जब कवि की लेखनी प्रकृति और प्राणी की पीड़ा का अनुभव करेगी तो फिर जो सृजन होगा। वह किसी को सुख या शांति देने वाला होगा और तब यही भाव शांति व आनंद बन जायेगा और यही आनंद काव्य का ललित भाव यानी सौंदर्य है अर्थात् सौंदर्य बाह्य आवरण नहीं है और न ही बाह्य साधनों से इसे पाया जा सकता है न ही विचारों के बाहर रहकर और न ही समाज से बाहर रहकर और वही सच्चा सात्विक साधु है जो समाज में रहकर सभी परिक्षाओं को सहर्ष उत्तीर्ण कर जीवन का युद्ध लड़ता और जीतता है।

अत: कर्म योगी को मान-अपमान की परवाह न करते हुए अपना पथ तय करना ही सच्ची कर्म प्रवीणता है। इस प्रकार जिस कर्मयोगी का भाव आपके साहित्य में सहज दृश्य है, वह शायद वेद पुराणों में भी इतना सहज सुलभ न हो क्योंकि उन्होंने भगवान कृष्ण की गीता के समान ही कर्म योग के मर्म को समझाया है कि संसार में ही रहकर हर अच्छी और बुरी

दृष्टि से सामना करते हुए ही हम अपने व्यक्तित्व को सिद्ध कर पाएँगे क्योंकि आज तक कोई भी महामानव बिना संघर्ष किए कभी मंजिल तक नहीं पहुँचा है। सभी के साथ एक बात सदैव ही एक सी रही है, वह यह कि यहाँ जिसने भी अपने सुख, स्वार्थ और इच्छाओं का त्याग कर दूसरों के हितों का ध्यान रखा है, वही सुख और शांति का अधिकारी हुआ है अर्थात् सुख और शांति व्यक्तिगत न होकर समष्टिगत भाव है जिसमें सभी का कल्याण निहित है।

ऐसे ही आपकी कृति 'दो एकांत' में कितना विरोधाभास निहित है पर आज के परिवेश में जो आज का यथार्थ भी है और गंभीर समस्या भी कि जब दो व्यक्ति सात जन्म के बंधन में बँधकर भी अपने-अपने अहम के कारण नितांत अकेले हो जाते हैं। ये भाव 'दो एकांत' नहीं तो और क्या है। ऐसे ही परिवार में नारी जीवन की परिस्थितियों का गहन चित्रण 'डूबते मस्तूल' में है कि जब परिवार का आधार ही डूब जायेगा तो फिर क्या शेष बचेगा।

ऐसे ही 'संशय की एक रात' के राम के अंदर का उद्वेलन जो केवल राम के मन का ही उद्वेलन न होकर हर उस चेतन मन की व्यथा है जो यथार्थ में मानव है क्योंकि सहृदय मानव मन कभी भी किसी को दुख नहीं देना चाहता और वो भी अपने कारण। यहाँ भी राम के मुख से यह कहलाना कि -'मेरे दुख में क्यों दुख सहें सभी' यह कवि का ही कोमल मन है जो राम को आधार बना कर अपनी बात कह रहे हैं और 'कितनी साँझ इस सिंधु तट पर बिताई पर सब व्यर्थ रहा, से उनके मन का चिंतन यह स्पष्ट कर रहा है कि वे युद्ध के पक्षधर नहीं थे तब ऐसी स्थिति में उनके दिवंगत पिता और पिता के दिवंगत मित्र जटायु के समझाने पर राम रावण से युद्ध के लिए तैयार होते हैं जो राम की मानवीय संवेदनाओं को कवि के मुख से व्यक्त करा रहा है और भारतीय संस्कृति का गौरव गान भी कर रहा है जहाँ 'युद्ध नहीं अंतिम पड़ाव' का प्रवर्तक है।

युद्ध लड़ा जाना किसी समस्या का हल कभी नहीं रहा पर आतताइयों का अंत भी आवश्यक है, यह भाव भी इस काव्य में अभिव्यंजित होता है। इनके किसी भी सृजन को ले लें सभी में जीवन संदेश की पराकाष्ठा है। 'प्रवाद पर्व' खंडकाव्य में देश की तत्कालीन परिस्थितियों को काव्य के माध्यम से बखूबी स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।

यह खंडकाव्य सन् 1977 में प्रकाशित हुआ जब देश में 1957 से 1977 तक आपात स्थिति थी और जिस स्थिति में देश का लोकतंत्र शिथिल कहें या कहें कि मृत हो जाता है यानी जनता गूँगी हो जाती है। उसकी वाचाल शक्ति पर पहरा लग जाता है और यही भाव कविवर ने प्रवाद पर्व में राम के राजा चरित्र से समझाने का प्रयास किया तब जब एक धोबी जो अवध का साधारण सा नागरिक है, उसकी आवाज पर सीता का निष्कासन यानी लोकतंत्र की विजय यानी वही राज्य, राम राज्य बन सकता है जहाँ सामान्य व्यक्ति को भी अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता हो और यदि ऐसा नहीं होता है तो जनता इतिहास को प्रतिइतिहास बना देती है और फिर जिसे भयानक परिक्षाओं से गुजर कर अपनी सत्यता सिद्ध करनी पड़ती है और इस बात को आपने पाँच ऐसे सर्गों में समझाया है जो सर्वथा नवीन प्रयोग रहा और जिसने जनता के हितों को भी बनाए रखा।

ऐसे ही, शबरी खंडकाव्य में आपने शबरी और उनके गुरु मतंग ऋषि के माध्यम से उस समाज को एक आईना दिखाने का प्रयास किया है जो धर्म की धरा में भी अपना सवर्णीय अधिपत्य बनाए हुए थे और जिनके कारण मतंग ऋषि के आश्रम में शबरी का प्रवेश वर्जित था और गोशाले में जाना तो कतई बर्दाश्त नहीं था क्योंकि शबरी अस्पृश्य बिरादरी से थी पर गुरु मतंग उसके भक्ति भाव को पहचान कर उस पर विशेष कृपा दृष्टि रखते हैं तब अन्य शिष्य ही गुरु को समझाते हैं कि मर्यादाओं के टूटने से समाज विछृंखलित हो जायेगा तब गुरु का यह ज्ञान जो कवि ने कहलाया कि सभी को अपने उन्नयन के प्रति स्वयं सचेत होना होगा और समाज से सड़ी गली मान्यताओं को हटाना होगा और साथ ही सभी को यह अधिकार भी है कि वह अध्यात्म पथ अनुगमन करें और यह भाव जातिगत न होकर हृदय जन्य होते हैं जो अन्तस की सरलता, कोमलता और वृहदता में ही प्रस्फुटित होकर पल्लवित होते और चरम आनंद को प्राप्त करते हैं।

इस प्रकार आपने अपनी रचनाओं के माध्यम से एक प्रयोग किया और आधुनिक युग के प्रयोगवादी रचनाकर और एक चिंतक के रूप में जन मानस की चेतना का हिस्सा बन गए क्योंकि आपकी रचनाएँ एक प्रयोग को लेकर चलती हैं फिर चाहे वो आपकी काव्य कृतियाँ बोलने दो चीड़ को 'वन पाखी सुनो' नंगे पैरों 'आखिरी समुद्र' से तात्पर्य हों या, एक नदी यशस्वी हो 'डूबते मस्तूल', हों या पुन: एक युधिष्ठिर, हो या फिर 'एक पथ बंधु था' या एकांकी 'पिछली रात की बर्फ', हो या एक, 'सरोवर के फूल' या कहानी 'एक समर्पित महिला' या नाटक 'साधु न चले जमात' या सिया कचनार की कली, कुछ भी हो सभी में कथानक कहीं का हो, कोई सा भी हो पर प्रयोग धर्मिता हुई है मानव जीवन पर और उनकी वेदनाओं और चिंताओं पर।

उनकी सभी रचनाएँ, सभी उपन्यास, एकांकी, नाटक, कहानियाँ अपने अंतस में एक चिरजीवी ज्ञान को समाहित किए हुए हैं प्रकृति और मानवता का भी संदेश देते हैं जो काव्य के किरदारों में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है और साथ ही आपका लेखन खड़ी बोली में सहज लिखा हुआ है जिसमें कला पक्ष को ध्यान में न रखते हुए भाव पक्ष पर पूर्ण प्रयास हुआ है जो एक लेखक और पाठक के मध्य तारतम्य बना सके। और ऐसे ही भावना प्रधान लेखन में अलंकार आदि का स्वाभाविक रूप से आ जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

आपके लेखन में आधुनिक युग की समस्याओं का निराकरण का जो सहज बोध छुपा है वह निश्चित ही पाठकों को एक दिशा देता है और एक बात जो ज्यादा महत्त्वपूर्ण है वह यह है कि आपके साहित्य में आधुनिकता के प्रवेश से भारतीयता का कहीं भी हनन नहीं हुआ है। उन्होंने भारतीय संस्कृति के माध्यम से जीवन को सरल बनाने का गहन प्रयास किया है और साथ ही प्रतीकात्मकता, भावात्मकता का जो प्रवाह है वह इतना सहज है कि सामान्य पाठक वर्ग भी बड़ी ही सहजता से समझ सकता है।

उनका सृजन के प्रति यह भाव कि मंत्र की गंध केवल ग्रंथों में नहीं होती वरन् यह प्रकृति के कण-कण में है जो केवल वही अहसास कर सकता है जो इनके समीप है और वही अहसास बाद में लेखनी बद्ध हो जाता है, ये भाव उनके प्रकृति के प्रति प्रेम, सेवा, समर्पण और संवर्धन का भी भाव देते हैं और ऐसे रचनाकार को पहले समाज चाहे जितना तिरस्कृत करे पर अंत में उनकी गुणवत्ता अपनी स्वीकार्यता बना ही लेती है और यह स्वीकार्यता युगों-युगों के लिए हो जाती है -

साहित्यिक और जीवन पथ उन्नयन-अब बात आती है उनके साहित्यिक सफर के और उन्नत चरणों की भारत के इन महान रचनाकार की जितनी भी बात की जाय वो कम ही होगी। सतत् समर्पित आपकी लेखनी जब जन मानस में आई तब काव्य मनीषियों में आपका नाम उत्तरोत्तर असीम आकाश को छूने लगा और इन्हीं ऊँचाइयों के साथ आपको सन् 1971 में मध्य प्रदेश सरकार द्वारा 'अरण्या, में साहित्य अकादमी राजकीय सम्मान मिला फिर1983 में सारस्वत सम्मान,1986 में शिखर सम्मान, 1988 में साहित्य अकादमी, 1990 में भारत भारती और अंत में साहित्य जगत का सर्वश्रेष्ठ सम्मान ज्ञानपीठ सम्मान से आप 1992 में ससम्मान सम्मानित हुए और ज्ञानपीठ सम्मान आपके व्यक्तित्व को स्पर्श कर स्वयं सम्मानित हो गया।

इस प्रकार हम जैसे एक लेखक की लेखनी लिखते-लिखते श्रमित हो सकती है पर उनका सृजन संसार और उपलब्धियों का वर्णन कहीं कम नहीं होगा और आज जब हम जैसे साहित्यकार उनका गुणगान कर रहे हैं तो एक बात का अवश्य ध्यान रखें कि वही रचनाकर कलजयी होता है जो युग दृष्टा होता है और जिसकी लेखनी जीवन के सभी पहलुओं को स्पर्श करती हुई एक गहन संदेश देती है और जिनका यह ज्ञान सदियों-सदियों तक लोगों को एक मशाल की तरह दिशा बोध कराता रहता है।

द्वारा श्रवण कुमार अग्रवाल
'अपर्णा निकेतन'
श्री साई नाथ मंदिर के बाएँ गेट के सामने,
धवारी, सतना-485001 (म.प्र.)
मो.-8319087003

गहरे सामाजिक बोध के कवि : नरेश मेहता

– प्रतापराव कदम

जन्म – 19 सितंबर 1961।
शिक्षा – एम.कॉम., पीएच.डी।
रचनाएँ – छः पुस्तकें प्रकाशित।
सम्मान – वागीश्वरी सम्मान साहित अनेक सम्मानों से सम्मानित।

आज तो बीमार सभी / बेहोश सभी
सब के दिमागों में भरा/ क्लोरोफार्म की महक की तरह तेज
यह अँधेरा, वो अँधेरा, वो अँधेरा

ये पंक्तियाँ नरेश मेहता के पहले काव्य-संग्रह 'बन पाखी सुनो' से ली गयी हैं। नरेश मेहता दूसरे सप्तक के कवि हैं। दूसरे सप्तक के अन्य कवि भवानी प्रसाद मिश्र, शकुंतला माथुर, हरिनारायण व्यास, शमेशर बहादुर सिंह, रघुवीर सहाय एवं धर्मवीर भारती थे। इसकी भूमिका में अज्ञेय लिखते हैं- 'दूसरा सप्तक नये हिन्दी काव्य को निश्चित रूप से एक कदम आगे ले जाता है और कृतित्व की दृष्टि से लगभग सूने आज के हिन्दी क्षेत्र में आशा की नयी लौ जगाता है।' ये कवि अभी विराम स्थल पर नहीं पहुँचे हैं, लेकिन उनके आगे प्रशस्त पथ है और एक आलोकित क्षितिज रेखा। गुप्त, प्रसाद, निराला, पंत, महादेवी, बच्चन, दिनकर; इस सूची को हम आगे बढ़ाएँगे तो निस्सन्देह दूसरा सप्तक के कुछ कवियों का उल्लेख उसमें होगा।' आज अक्षरशः अज्ञेय का यह कथन सही साबित हो रहा है।

दूसरे सप्तक में नेरश मेहता की दस कविताएँ हैं। इन कविताओं में प्रकृति चेतना, सांस्कृतिक पक्ष पर वैश्विक दृष्टि, निश्छल प्रेम, समय, जीवन-पद्धति, युद्धोत्तर उत्पन्न विभीषिका, असंगति का चित्रण है। 'चाहता मन' सप्तक की पहली कविता है जिसमें प्रकृति का आलंकारिक रूप है जो सहज, निश्छल प्रेम भी है, वहीं 'किरन धेनुएँ' कविता पूरी तरह प्रकृति परक है। 'उषस्' शीर्षक से कई कविताएँ हैं जिनमें प्रत्यूष के सौंदर्य का जिक्र तो है ही वैदिक काव्य का प्रभाव भी अलग से रेखांकित किया जा सकता है। 'जन गरबा चरैवेति' गतिशील बने रहने की बात कहती है क्योंकि गति जीवन का पर्याय है। जाहिर है ठहराव के पक्ष में, जड़ता के पक्ष में नेरश मेहता नहीं हैं। जड़ता तो मृत्यु के समान है। इस कविता में सूरज के संग-संग चलने का गतिशील स्वर है। जैसे सूरज ने अँधेरे से मुक्त किया वैसे ही उन्मुक्त होकर, अपने अँधेरे से मुक्त होकर मनुष्य समय के साथ आगे बढ़े? नरेश मेहता की रचना के केन्द्र में मनुष्य है, उसके आगे बढ़ने से ही जग भी आगे बढ़ेगा, इस आगे बढ़ने में कई बातें छुपी हैं अतीत से बाहर निकलना भी इसमें छिपा है –

मानव जिस ओर गया / नगर बने, तीर्थ बने
तुम से है कौन बड़ा? / गगन सिन्धु मित्र बने
भूमि का भोगी सुख, नदियों का सोम पियो
त्यागो सब जीर्ण वसन, नूतन के संग-संग चलते चलो

सप्तक में नरेश जी की सबसे उल्लेखनीय कविता 'समय देवता' है-'समय देवता' लंबी कविता है जो राजनीतिक उलट-बाँसियों को उजागर करती है, जिसकी अपनी राजनीतिक मान्यताएँ और ऐतिहासिक परिपेक्ष्य है। समय एक चरित्र की तरह इस कविता में है। मुझे क्षेपक की तरह राही मासूम रजा और मेधा सीरियल महाभारत की याद आ रही है। बी.आर. चौपड़ा जब महाभारत पर सीरियल बना रहे थे तो संवाद लेखन का काम ख्यात कथाकार राही मासूम रजा को सौंपा गया, पहले तो रजा जी ने मना कर दिया पर गंगा-जमुनी संस्कृति की खातिर वे तैयार हो गये, आज वे संवाद घर-घर

में बोले जाते हैं, लोक की जबान पर चढ़ गये हैं, पर मैं दूसरी बात कह रहा हूँ वह यह कि महाभारत की कथा बहुत बिखरी-बिखरी है, भूगोल के हिसाब से भी, समय-काल के हिसाब से भी, चरित्र की दृष्टि से भी, इस बिखरे-बिखरे को एक सूत्र में बाँधना कठिन था तो रजा साहब ने सलाह दी एक सूत्रधार की जो सबको एक सूत्र में बाँधता, कथा में पिरोता है। महाभारत में यह काम 'समय' ने किया। सीरियल की शुरुआत ही इस सूत्रधार से होती-मैं समय हूँ मैंने क्या-क्या नहीं देखा, हस्तिनापुर में . . . तो नरेश मेहता की कविता 'समय देवता' में भी समय एक चरित्र की तरह आता है। इसके माध्यम से कवि विभिन्न राष्ट्रों से परिचित कराता, इस तथ्य-सत्य को स्थापित करता है कि 'समय देवता' सबसे बलवान है। समय निरंतर, निर्निमेष आँखों से पृथ्वी के अंतहीन परिवर्तन-विवर्तन को देखता रहता है। एक समय तो 'समय-देवता' कविता नरेश मेहता की पहचान मान ली गई थी, बाद में स्वयं नरेश मेहता ने इसका अतिक्रमण किया।

'बन पाखी सुनो' यह नरेश मेहता का पहला कविता संग्रह है जो दूसरे सप्तक के बाद आया। इसमें कुल 27 कविताएँ हैं-

दूर उस आकाश के पीपल तले
हवाओं के नीले डैने थे खुले
छू तुम्हारा लाल अंचल मृदु झकोरे
संग चलने के लिए करते सदा थे मृग-निहोरे
पंथ की पसली सरीखी यह उभरती जड़
जहाँ हम बैठते थे
कह रही है-
हम मिले थे, साँझ थी, तट यही, थी कदलियाँ।।

मृति, प्रेम, बिछोह, पीड़ा भी इस संग्रह की एकाधिक कविताओं में है। यही पीड़ा, बिछोह कवि को गोमती नदी के किनारे खींच लाता है जहाँ 'फुनगियों पर कपोल सी चाँदनी अलसा रही थी।' यही बात 'ज्वार गया, जलयान गये' कविता में है-

शंख सीपियों बीच / समुद्री झरबेरी से हम
अब भी भीगी पलक / अधूरे वाक्य कंठ में लिये खड़े हैं।

प्रकृति इन कविताओं में अपने तरह से आयी है, एक तो स्वतंत्र निसर्ग सुषमा की तरह। दूसरे, कवि मनोभाव को उदीप्त करते, तीसरे अलंकरण की तरह। बानगी के रूप में हम 'मालवी फाल्गुन' 'मेघ से पहले' 'पीले फूल कनेर के ' या 'यह सोन जुही की चाँदनी' कविता को रख सकते हैं। कविता की ये पंक्तियाँ देखें -

नीले अकास में अमलतास / झर-झर गोरी छवि की कपास
किसलयित गेरुआ वन पलास / किसमिसी मेघ चीखा विलास

इस संग्रह की कविताओं में जीवन की विषमताएँ, असंगतियाँ, त्रस्त संतप्त जनमानस और युगबोध भी है। लगता ही नहीं कि यह उस काल की कविता है। हमारा आज का समय भी इसमें बोलता है बल्कि यह कहा जाये तो ज्यादा समीचीन होगा कि आज का वाचाल-समय और ज्यादा इसमें मुखरित हो रहा है। इन कविताओं पर बांगला भाषा का प्रभाव अलग से चीन्हा जा सकता है।

'बोलने दो चीड़ को' यह नरेश मेहता का दूसरा संग्रह है। दूसरे संग्रह से अपेक्षाएँ बढ़ जाती हैं, उस कसौटी पर खरा उतरता है यह संग्रह। हालाँकि प्रकृति के प्रति आसक्ति भाव इसमें गहरा हो गया है, प्रकृति के विविध रूपों का अंकन है वहीं सूर्य, चाँदनी, बादल, कुहरा, दिवस, सूर्यास्त के शदचित प्रथावित करते है-

नील कुहर की मच्छरदानी
सिर पर लादे चली आ रही
वह पगली बदली बंजारिन।

कुछ कविताओं में निराशा, अवसाद की परतें अलग से दिखाई देती हैं। संघर्ष, कुंठा, अतृप्ति, प्रश्नों के अंबार से घिरे नरेश मेहता आस्था में रास्ता तलाशते हैं। कवि कामना-आशा, इंतजार, सांस्कृतिक गरिमा-विश्वास के साथ रास्ता तलाशता है। डर भीड़ में गुम होने का भी है, 'अनुनय' कविता में कवि इसी भीड़ का जिक्र करता है, इसी भीड़ से वह घिरा है, सब अपरिचित चेहरे हैं, अपरिचय बोध गहरा रहा है। इसी अपरिचय से कवि परिचय गाँठने की कोशिश करता है। शक्लहीन भीड़ में शक्ल की तलाश करता है। संस्कृति के क्षरण के जिए जो लोग जवाबदेह हैं उनसे मूल्य की बात करता है, उन्हें मूल्यों की खोज के लिए प्रेरित करता है-

पुत्र मेरे / हमारा मनु ही पृथक है
अपने वंश में गौतम नहीं होता
अपनी विवशता के स्वत्व की भिक्षा

अन्य को देकर न तुम छोटे कहाना

'बोलने दो चीड़ को' में कुल 37 कविताएँ हैं। जिनमें जीवन के विविध स्वर भावोत्तेजक क्षणों की अनुभूतियाँ, ठोस वैचारिक धरातल पर हैं, कहीं कोई दुविधा उलझन नहीं –

एक स्तवक की तरह
टटके पूलों वाला धूप भरा दिन
फाल्गुन का पूरा एक दिन
हाथों में लिये चल रहा हूँ
मैं इसे किसी के द्वार पर
रख आना चाहता हूँ

'मेरा समर्पित एकांत' संग्रह दो भाग में है, प्रथम भाग में 19 कविताएँ हैं और दूसरे में 'समय देवता' लंबी कविता, जो दूसरे सप्तक में भी है। कवि का एकांत उसके अकेले का एकांत नहीं होता उस एकांत में दुनिया जहान शामिल होती है। उसके इस एकांत में भी सामाजिक प्रयोजन होता है। जैसे एक वैज्ञानिक एकांत में मानव को तारने के लिए प्रयोग शाला में जूझ रहा होता है, उसी तरह से –

एक शाम होती है / जो आकाश में होती है
लेकिन / एक शाम होती है
जो नितांत मुझमें घटती है

एकांत सृजन का क्षण होता है और सृजन जीवन का पर्याय। मेरा समर्पित एकांत की कविताएँ जीवन के निकट हैं। इनमें व्यथा है, बिडम्बना है, शाम की उदासी है, सुबह का उत्साह है, संकल्प-विकल्प का ज्वार है, मानवीय दुख, मानवीय स्वभाव, अहं, प्रतिस्पर्धा, ईर्ष्या विवशता, एकांत बोध, कोलाहल, विवशता के चित्र हैं–

यह समिर्पित एकांत / सब का कर्म
सब का धर्म / सब का स्वत्व है
मैंने इसे निर्माल्यवत् ही / स्वीकारा प्रभु।

नरेश मेहता प्रकृति, सौन्दर्य संस्कृति के साथ गहरे सामाजिक बोध के भी कवि हैं। उन्होंने पूरी आस्था के साथ मनुष्य को पहचाना है। 'समय-देवता' कविता साक्ष्य के रूप में रखी जा सकती है–

समय देवता! आज विदा लो
किन्तु तुम्हारे रेशम के इस चमक वस्त्र में
मिट्टी का विश्वास बाँध कर भेज रहा हूँ
मेरी धरती पुष्पवती है
और मनुज की पेशानी के चरागाह पर
दौड़ रही हैं तूफानों की नयी हवाएँ

नेरश मेहता का यह संग्रह भाव बोध और शिल्प बोध की दृष्टि से तो महत्त्वपूर्ण है। सामाजिक-सरोकार की कसौटी पर भी खरा उतरता है, उदास शाम, उदास निराश व्यक्ति की तरह होती है। उम्र के एक खास पड़ाव को भी शाम ही कहता है। कवि, जैसे जिन्दगी में शाम घिर आयी है और उसके सारे सुखों को एक-एक कर चुग लिया है–

एक शाम होती है /जो आकाश में होती है
लेकिन एक शाम / होती है
जो नितांत मुझ में घटती है
.....
उस दिन यहाँ से वहाँऽऽ तक
किसी भी आकाश में / कोई शाम ही नहीं हुई

'संशय की एक रात' खण्ड काव्य है।

'जिरह' में पृष्ठ 49 पर श्रीकांत वर्मा लिखते हैं-'जिस कवि की कविता में समकालीन संकट का बोध जितना ही गहरा और व्यापक होता है वह अपने युग का उतना ही समर्थ प्रतिनिधि होता है।' इस कसौटी पर नरेश मेहता को कसें, 'संशय की रात को' तो सामाजिक और वैयक्तिक धरातल पर सभी युगों का बोध इसमें है, आज के राजनीतिक घटाटोप का चित्रण भी इसमें है। पौराणिक आख्यान के मार्फत समकालीन परिवेश में हमारे आज का समय इसमें बुक्का फाड़े नजर आयेगा या अट्टहास करते, या ये दोनों ही दृश्य नजर आयेंगे–

मात्र/श्रेष्ठ हाथों की प्रतीती के लिए
इस मिथ्यात्व को / शास्त्र सम्मत सत्य कह कर
मत छलो। / सब शिखर की नींव में/ सोया अँधेरा है।

'संशय की एक रात' चार सर्गों का खंड काव्य है। प्रथम सर्ग में राम रामेश्वर में समुद्र तट पर चिंतामग्न प्रश्नों से घिरे व्यक्ति के रूप में सामने आते हैं। वे रावण द्वारा किये गये सीता हरण को निजी समस्या, व्यक्तिगत त्रासदी समझते हैं। व्यक्तिगत त्रासदी के लिए समाज समूह को युद्ध में झौंक देना राम को कतई गवारा नहीं –

वहाँ उस साँझ तारे को नहीं / मुझको विलोको।
पश्चाताप में / इस झुके मेरे माथ को
नीले फूलों को / शुभाशंसा प्रदत्तो।
मेरी यात्रा / छोटे शंख सी
यहीं बाल में कहीं गिर / खो गयी है।

दूसरे सर्ग में चिन्ता लीन हैं राम। कुछ छायाएँ डोलती हैं, पूर्वजों की हैं जो। छाया राम के पिता दशरथ की है, छाया सीता को रावण से बचाने जूझे जटायु की हैं, छायाएँ मृत आत्माएँ हैं जो युद्ध की प्रेरणा देती हैं, राम को संशय से उबारने की कोशिश करती हैं –

तुम्हें लड़ना युद्ध / अपने से नहीं
अनास्था से नहीं / संशयी व्यक्तित्व से भी नहीं
केवल सत्य से

तृतीय सर्ग में, सारा आलम निद्रा में मग्न, तब राम युद्ध परिषद की बैठक बुलाते हैं, जिसमें लक्ष्मण, विभीषण हनुमान, सुग्रीव, जामवंत सभी हाजिर हैं। जहाँ राम के संशय को तार्किक ढंग से हनुमान दूर करते हैं, 'युद्ध अनिवार्य है' यह तथ्य-सत्य स्थापित हो जाता है पर आधुनिक प्रज्ञा का प्रतिनिधित्व करने वाले राम की चिंता यह भी है कि क्या युद्ध के बाद शांति स्थापित हो सकेगी। युद्ध जीतना और शांति स्थापित होना दोनों अलग-अलग बाते हैं, समग्र की चिन्ता भी इसमें है-

ओ मेरे विवेक / मुझसे मत प्रश्न करो
संशय की बेला अब नहीं रही / अब मैं केवल प्रतीक्षा हूँ
क्वाचित कर्म हूँ / प्रतिश्रुत युद्ध हूँ
निर्णय हूँ सबके लिये

चतुर्थ सर्ग में संशय से उबर राम ने परिस्थितियों को दिशा दी, उन्हें स्वयं को सौंप दिया और अपने अंतर्विरोधों को भी समझा-समझाया-

मैंने अपने को सौंप दिया / ज्वारों को
विवश धरती सा सौंप दिया / अपने को सौंप दिया

पौराणिक आख्यान के सहारे वर्तमान की सीवन भी इस खंडकाव्य में उधड़ती नजर आती है। बकलम कवि, आलोचक लक्ष्मीकांत वर्मा- 'उसी स्वार्थ-परमार्थ की, मर्यादा और दायित्व की, चुके हुए संस्कार की, स्मृति तथा अजन्मे इतिहास की वेदना से ओतप्रोत काव्य है।' डॉ. हरिचरण शर्मा के अनुसार- 'संशय की एक रात, मूल्यों और मान्यताओं के उहापोह को प्रस्तुत करने वाला काव्य है। परस्पर संघर्ष, विपरीत मूल्यों और मान्यताओं के संघर्ष को नरेश मेहता ने वाणी दी है। एक प्रकार से नरेश ने प्राचीन मान्यताओं को समकालीन मूल्यों की कसौटी पर कसते हुए एक फेरबदल किया है। इसमें अकेले राम का संशय ही नहीं है विभीषण का द्वन्द भी इसमें है। इतिहास भी इसमें अपने ढंग से सामने आता है।'

इतिहास क्या है इसका शायद सबसे अच्छा निरूपण ई.एच.कार ने किया है। काल की शाश्वत धारा में जन्मते-बहते-तैरते इंसान ने यह जानना-समझना शुरू किया कि वह कहाँ से आ रहा है? कहाँ जा रहा है? क्या हो रहा है? और क्या हो सकता है? अर्थात् इंसान या इंसानों का गुट क्या कर सकता है? यही वह चेतना है जिसके जरिए इतिहास-बोध की शुरुआत होती है। क्या सँजोने योग्य है और क्या खारिज करने लायक-यही है इतिहास दृष्टि! इतिहास दृष्टि और इतिहास बोध का समन्वय समय के सच को नकारने की इजाजत कभी नहीं देता और इस तरह का इतिहास समाज को समझने का ही नहीं वरन् उसे बदलने का भी उपकरण बन जाता है। इतिहास का सच मनुष्य की समानता की ओर अग्रसर रहता है।

इस सच से नरेश मेहता साक्षात्कार कराते हैं। कवि कथाकार संपादक, नाटककार निबंधकार नरेश मेहता का जन्म मालवा अंचल के शाजापुर में 15 फरवरी 1922 को हुआ। जन्मनाम पूर्णशंकर था प्रारंभिक शिक्षा नरसिंहगढ़ में हुई। इंटर तक माधव कालेज उज्जैन में फिर काशी, बनारस। कालीदास की भूमि से बाबा तुलसी की भूमि तक की अंतर्यात्रा ने नरेश जी के व्यक्तित्व को नया आयाम दिया। उनकी रचनाओं में मनुष्य ही केन्द्र में है, वही केन्द्रीय तत्व है-

एक दिन मनुष्य सूर्य बनेगा
क्योंकि वह आकाश में पृथ्वी का
और पृथ्वी पर आकाश का प्रतिनिधि होगा (उत्सवा)

-11 शकुन नगर,
खण्डवा -450001 (म.प्र.)
मो. 8718057089

शाश्वत मूल्यों के अनुसंधित्सु हैं नरेश मेहता

– उषारानी राव

जन्म – 15 दिसंबर।
शिक्षा – एम.ए., बी.एड., पीएच.डी.।
रचनाएँ – आठ पुस्तकें प्रकाशित।
सम्मान – सृजनलोक अहिंदी भाषी लेखक सम्मान।

एक रचनाकार सृजन प्रक्रिया के स्तर पर मानवीय धरातल के दायित्व की आंतरिकता में आत्मान्वेषण के द्वारा वृहद यथार्थ से जुड़ता है। अपने अनुभव की दिशाओं में अभिव्यक्ति को लेकर आगे बढ़ता है तो अनुभूति का शिल्प तैयार होता चला जाता है। इसमें वैयक्तिक अनुभूति को समष्टि में मिलाने का प्रयास समन्वय पंथी कहलाता है। अपनी भाव तरलता में व्यष्टि एवं समष्टि के संपूर्ण द्वंद को समाप्त कर समरसता के बिंदु तक पहुँचने वाले चाक्षुष कवि नरेश मेहता अपनी कृतियों के माध्यम से जीवनानुभूतियों को रचते हैं। वस्तुत: जीवन की संगत और असंगत परिस्थितियाँ कवि को प्रेरणा देती हैं। यही कारण है कि नरेश मेहता प्रथमत: कवि हैं, तदनन्तर कहानीकार, निबंधकार, नाटककार आदि हैं। इनकी संवेदन-दृष्टि मानवीय भाव को संस्पर्श करती है। समाज, राजनीति और साहित्य के विभिन्न पहलुओं के व्यापक सत्य को रेखांकित करते हैं। उन्होंने लोक संपृक्ति के गहरे भाव स्तर पर उतर कर आधुनिक बोध के द्वारा धर्म, दर्शन और समाज से कविता के अन्तर्संबन्ध को गहराई से टटोला है। संस्कृति बोध को पहचानने की इनकी पारखी दृष्टि से नि:सृत 'उत्सवा', 'अरण्या' और 'पिछले दिनों नंगे पैर', 'संशय की एक रात', 'महाप्रस्थान' 'प्रवाद पर्व', शबरी, मुक्तिबोध और अज्ञेय पर लिखी गई कविताएँ, 'यह पथ बन्धु था', 'धूमकेतु', 'एक श्रुति और उत्तरकथा', निबन्धों में 'काव्य का वैष्णव-व्यक्तित्व', 'काव्यात्मकता का दिक्काल' जैसी कृतियाँ उनकी रचनाधार्मिता की मिसाल हैं।

तार सप्तक के कवि नरेश मेहता सामाजिक दायित्वों और जीवन की सीमाओं को लाँघकर नए कवि के रूप में वाद रहित चिन्तन के द्वारा मानवीय चेतना का रोपण करते हैं। उनकी रचनाओं में विचार स्पष्टता व गम्भीरता के साथ प्रकट हुए हैं।

वे अपनी रागात्मक, संवेदनात्मक और रचनात्मक धरातल पर उतरकर युग की चेतना और आत्म सजगता को दृष्टि बिंदु तक लाकर निष्ठा के साथ साकार करते हैं। ये पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं –

'तुम्हें लड़ना युद्ध अपने से नहीं/ अनास्था से नहीं
संशय व्यक्तित्व से भी नहीं / असत्य से।'

'संशय की एक रात' खंडकाव्य में कवि को बुद्धि एवं मन के बीच के द्वन्द को दूर कर आधुनिक बोध को विकसित करने में अपूर्व कलात्मक सफलता मिली है। सामाजिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर दशरथ और जटायु की छायाएँ कर्तव्य कर्म की ओर प्रेरित करती हैं। निष्कलुष हृदय में अन्याय की वास्तविकता का बोध कराकर अधिकार के प्रति जागृत करना तथा उसकी प्राप्ति हेतु संघर्ष के लिए प्रेरित करना काव्य के कथ्य का केन्द्रीय तत्व है।

एक ओर जहाँ विज्ञान ने व्यक्ति तथा समाज को सामान्य धरातल से देखने तथा चित्रित करने की प्ररेणा दी, वहीं दूसरी ओर उसने जीवन की समस्याओं के प्रति एक नए दृष्टिकोण

की ओर भी संकेत किया। यह दृष्टिकोण मुख्यत: बौद्धिक है। नरेश मेहता कहते हैं कि–'दर्शन का विचार पथ जब आचरण का रूप ग्रहण करता है तो धर्म बनता है और जब सृजनात्मकता का रूप ग्रहण करता है तो काव्य बनता है।'

इन विचारों से यह तथ्य निकलकर सामने आता है कि समाज की नयी करवट में कवि गंभीर दायित्व के निर्वहन का व्रत लेता है। आज की सामयिक संस्कृति में चुनौतियाँ घनेरी हैं। वैयक्तिकता में सामाजिकता का एकीकरण वैचारिक सन्तुलन का परिचायक है। महाभारत के शान्ति पर्व से कथा प्रसंगों के द्वारा रचित 'महाप्रस्थान' में तत्कालीन परिवेश को काव्य रूप में निरूपित किया तथा जीवन की अनुरूपता में ढालकर नई काव्यात्मक चेतना के लिए एक नया वातावरण रचते चलते हैं। पाण्डव, युधिष्ठिर का कुत्ता, द्रौपदी व धनुर्धर अर्जुन, महाबली भीम, नकुल और सहदेव आदि में जीवन का प्रश्न मूल्यवान अर्थवत्ता के साथ खड़ा दिखाई देता है। वे जीवन की आँखों से रचना करते हैं। स्वर्गारोहण के प्रसंगों में द्रौपदी का हिमपिण्डों में परिवर्तित होना, सूक्ष्म संवेदना का मार्मिक चित्रण है। आदि से अंत तक विचार, सत्य एवं अनुभव का विस्तार इस खण्ड काव्य की भावभूमि का मेरुदण्ड है। काव्य में अभिव्यक्त पक्षधरता जीवन के सौंदर्य और विचारों से प्रेरित है।

इसमें उपस्थित सभी पात्रों ने अपना–अपना सत्य पा लिया है। बहिरंग जीवन मिटकर कवि की चेतना ने अतरंग जीवन में प्रवेश किया तो कुछ बौद्धिक जिज्ञासाएँ जैसे जीवन और मरण संबंधी, प्रकृति और पुरुष संबंधी, आत्मा और परमात्मा संबंधी विषय काव्य में स्वभावत: लक्षित होती हैं। नरेश मेहता के राम मनुष्य की भूमिका में हैं। न्याय–अन्याय के लिए किये जाने वाले युद्ध से विलग होकर राम के द्वारा वैयक्तिक स्तर पर किए जाने वाले युद्ध की समस्याओं को रेखांकित करते हैं।

'शब्दों से नये अर्थ, अर्थों से नयी चेतना, चेतना से नया कला बोध और कला बोध से नयी सौंदर्य भंगिमा हृदय को स्पर्श कर नए रस का संचार करती है।' पंत के ये विचार सकार से सूक्ष्म की ओर प्रवृत्त करते हैं। उसी प्रकार नरेश मेहता ने जीवन की व्यापक पृष्ठभूमि से प्रत्यक्ष संबंध स्थापित कर जीवन के अनुभव का यथार्थ चित्रण रचनाओं की विभिन्न विधाओं में सृजनरत रहकर किया है। यह संवेदनशील व्यक्तित्व का परिचायक है –

'मैं सत्य चाहता हूँ /युद्ध से नहीं,/खड्ग से भी नहीं
मानव का मानव से सत्य चाहता हूँ / क्या यह संभव है?'

कोई भी युग अपने परिवेश में सहज रूप से जन्म लेता है। विषय संबंधी दृष्टिकोण और मनोवृत्ति अभिव्यक्ति के साधन का नवाचार है। यहाँ अस्तित्व की पड़ताल मृत्यु में जीवन की खोज है। यान्त्रिक जीवन से जूझते मानव में आन्तरिक कोलाहल स्वाभाविक है।

बुद्धिगत जीवन मनुष्य को ऊँचाई प्रदान करता है। इसीलिए कवि मानव के वास्तविक सत्य को जानने की जिज्ञासा व्यक्त करते हैं। वे सर्वहत युद्ध की स्थिति से परे प्रजातान्त्रिक समय में मानवीय मूल्य की स्थापना की पराकाष्ठा करते हैं। 'महाप्रस्थान' एवं 'संशय की एक रात' काव्य की कथा पुरावृत्तों पर आधारित काव्यों की परंपरा में उल्लेखनीय है। नरेश मेहता भारतीय दर्शन में न्यस्त मृत्यु के चिंतन से आधार प्राप्त कर नितान्त मौलिक दृष्टिकोण की ओर संकेत देते हैं। जिससे मानव निर्भीक और प्रशस्त हो सके। जीवन की विसंगति, विघटन, अनिश्चय और अनास्था के बीच केवल आत्मतत्व ही नहीं अपितु कर्म के प्रति प्रेरित करते हैं –

'यहाँ सब कर्तव्य है / जयाजय
धर्माधर्म कुछ भी नहीं'– (संशय की एक रात)

राम अपनी वैयक्तिक चिंता सीता के कारण नरसंहार नहीं करना चाहते। अन्तत: दशरथ का यह तर्क कि असत्य के नाश के लिए युद्ध आवश्यक है, फलित होता है। पूरे खंडकाव्य में कर्तव्य कर्म की अवधारणा स्थापित करने का प्रयास किया गया है। वे इस बात पर जोर देते हैं कि संशय और युद्ध में कोई अंतर नहीं है। विवेक की तुला पर कसा हुआ कर्म ही सत्य है।

अकथ बोझ से लदी जीवन की अनेयामी सरणियों में झाँककर नरेश मेहता सभ्यता की परिष्कृति का बीड़ा उठाते हैं। इस दायित्व को पूरा करने के लिए उन्हें किसी मतवाद या राजनीतिक सिद्धान्त के आग्रह की आवश्यकता नहीं है। काव्य स्वयं ही समाज का परिष्कार करता है और परिष्कृत समाज व्यक्ति का हिमायती हो जाता है। यही नहीं उनकी मान्यता में कोई वस्तु जड़ नहीं होती। सबमें चेतना का संचार होता है। उस चेतना का वाहक मनुष्य है। उन्होंने मिथकीय चरित्रों को वर्तमान के परिप्रेक्ष्य में रखकर वैयक्तिकता और बौद्धिक स्वतंत्रता से जोड़कर आधुनिकता के पर्याय के रूप में प्रस्तुत किया है। पौराणिक ग्रंथों से ग्रहित प्रसंगों, पात्रों से रचित काव्य 'संशय की एक रात', 'शबरी', 'महाप्रस्थान' और 'प्रवाद पर्व' के द्वारा उन्होंने आधुनिक समय में जनित समस्याओं को चिन्हित किया है। वस्तुत: वे सामयिकता में व्याप्त युगीन सत्य, संघर्ष तथा मूल्यों के क्षरण को अभिव्यक्त करते हैं –

'एक दिन मनुष्य सूर्य बनेगा
क्योंकि वह आकाश में पृथ्वी का
और पृथ्वी पर आकाश का प्रतिनिधि होगा।'

'उत्सवा' की इन पंक्तियों में मानव की आन्तरिक शक्ति को सर्वोपरि माना गया है। यहाँ संवेदन शक्ति तीव्र है। सूर्य को सत्य का प्रतीक कहा गया है। यह मानवीयता की आश्वस्ति है। पशुता का संहार कर जड़ से चेतनत्व की ओर उन्मुख करता है।

'प्रत्येक व्यवस्था के पास/अपने बघनत्व होते हैं अर्जुन सुदूर भविष्य में क्या यह नहीं संभव है कि राज्य–व्यवस्था समाज से स्वतंत्रचेता व्यक्तियों को ही या तो समाप्त कर दे या उन्हें इतना विवश, पंगु बना दे कि उनका अग्नि–व्यक्तित्व राज्य–व्यवस्था की निरंकुशता को कभी चुनौती ही न दे पाए?'

प्रवाद पर्व काव्य संग्रह समस्याओं के समाधान का मार्ग प्रशस्त करता है तथा साहित्य की प्रामाणिकता सिद्ध करने की एक कलात्मक प्रयुक्ति का द्योतक भी है। सत्ताधारी शासक के द्वारा आमजन की अवहेलना केन्द्रीय विषय है। लोकतांत्रिक मूल्यों की पूर्णरूपेण स्थापना प्रमुख उद्देश्य है। नरेश मेहता विरोधों एवं अवरोधों के बीच सामंजस्य बनाये रखने पर जोर देते हैं। निराला के अनुसार 'भावानुसारणी भाषा काव्य कला के आंतरिक मर्म को व्यक्त करने में सक्षम होती है।' यह स्पष्ट कि व्यक्ति की खोज बाहर नहीं आन्तरिक जीवन में निहित है। काव्य के चरित्र, निर्णय लेने की क्षमता का प्रजातांत्रिक रूप प्रस्तुत करते हैं। निरंकुश व्यवस्था के प्रति मुखर कवि केवल विचारों में ही नहीं प्रत्युत व्यावहारिक जीवन में भी स्वस्थ सामाजिकता का पक्षधर होता हैं। निराला की 'राम की शक्ति 'पूजा, दिनकर का 'कुरुक्षेत्र', कुँवर नारायण का 'आत्मजयी' आदि काव्य कृतियों में चिन्तन का पक्ष गहरा है। इनमें प्रज्ञाशील और प्रश्नाकुल मानव की संशयी मन:स्थिति को ज्ञान, तर्क एवं साधना के उपकरणों से लघुता के भीतर की विराटता को जानने, समझने एवं बदलते की जिजीविषा को खँगाला गया है। द्वन्द एवं संदेह से भरी संक्रान्तिकालीन संस्कृति में यथार्थ की झलक देकर कवि मौन हो जाता है। उनको शैव, वैष्णव तथा जैन मतों के दर्शन की संगति में गुरुता का आभास होता है। रिक्तता, विच्छिन्नता और कुंठा से उत्पन्न स्थितियों से उपर उठकर समानता की स्थापना एवं मानवीय गरिमा की प्रतिष्ठा के प्रति सजग करते हैं।

कविता में कवि का व्यक्तित्व नौका के समान भाव–नदी में तैरता रहता है। नरेश मेहता की कृतियों में प्रेम अपने सातत्य भाव से काव्य भूमि के रस को आत्मसात किये हुए हैं –

'चौंको नहीं प्रिया / यह मेरा हाथ नहीं
बल्कि मेरी भाषा जैसी हवा थी।'

'चौंको नहीं' कविता में स्त्री मनोविज्ञान की अनेक वीथियाँ खुलती हैं।

'तुम मेरा मौन हो' संग्रह की भूमिका में वे कहते हैं कि, 'कविता ऐसी मध्यकालीन माधवता के साथ मेरे निकट आएगी, इसकी कभी कल्पना भी नहीं थी।' वस्तुत: काव्य प्रक्रिया में अनुभूति की प्रामाणिकता सिद्ध है। इसीलिए वे कहते हैं कि 'प्रेम कविता लिखना तलवार की

धार पर चलने के समान है'–

'कभी तो' कविता में
'और कोई क्यों विश्वास करेगा, कि
फाल्गुन
खिलता ही नहीं, बजता भी है
प्रिया! मुझे भी बजा लेने दो
वह ठुमरी/ वह बोल'

प्रेम की तृप्ति और तोष की अनुभूति कविता कराती है। अनुभूति में तथ्य सत्य का रूप धारण कर लेता है। जिससे रागात्मक संबंध स्थापित होता है। उसके प्रेम में मन आन्तरिक लय से झंकृत हो उठता है। प्रेम के सौंदर्य तत्व को भीतर समेटे केन्द्र से खींची असंख्य रेखाओं की तरह काव्य में व्यक्त होता है।

'एक मानव जिस ओर गया
नगर बने, तीर्थ बने
तुमसे है कौन बड़ा?
गगन-सिंधु मित्र बने
भूमि का भोगो सुख
नदियों का सोम पियो।
त्यागो सब जीर्ण वसन
नूतन के संग-संग चलते चलो!
चलते चलो, चलते चलो!

उषस् शृंखला की पंक्तियों में नरेश मेहता अपनी संकल्प, अभाव और विवेक शक्ति से सौंदर्य को जीवन की विविध भंगिमा के द्वारा व्यक्त करते हैं। वे आधुनिक अनुभूति की परिभाषा बाँधने के लिए व्यग्र नहीं हैं। उन्हें विश्वास है कि गतिशील जीवन के क्षणों में भावात्मक सत्य प्रतिदिन पलते एवं पुष्ट होते हैं। जीवन की उठापटक एवं मूल्यों के संक्रमण की पड़ताल के साथ जीवन की चिरंतन समस्याओं को दर्ज करने का भाव-बोध नरेश मेहता का साहित्यिक पक्ष है। नरेश मेहता के गद्य-साहित्य की भूमि विविधमुखी है। निबन्धों व उपन्यासों के माध्यम से विसंगतियों, विकृतियों एवं विषमताओं के बीच समकालीन मानव बोध की संभावनाओं का परिक्षण करते हैं। 'हम अनिकेतन' में नरेश मेहता ने लिखा है कि 'जीवन किसी भी उपन्यास से कहीं अधिक औपन्यासिक होता है।' वे अपनी कृतियों में स्वत्व के अनुरूप ही संवेदना की परिधि का विस्तार करते हैं। नरेश मेहता आज की मनुष्यता तथा समाज चेतना के बीच समन्वय को महत्त्वपूर्ण मानते हैं। इन्होंने आधुनिक कविता को नई व्यंजना के साथ नया आयाम दिया है। मानव-विरोधी तत्वों को चिन्हित कर हमें सचेत करते हैं। लोकतांत्रिक चेतना को रेखांकित करने वाले साहित्य और जीवन की सामंजस्यता के पक्षधर कवि ने भारतीय सांस्कृतिक वैविध्य को अभिव्यक्ति का साधन माना। जो व्यक्ति सत्य और यथार्थ के अधिक समीप पहुँचता है यहाँ भाव का उजलापन रचनाशीलता में गहरे धँसा है। मनुष्यता का संधान बोधकर्ता की सौंदर्य चेतना है। अपनी रचनात्मकता के द्वारा धरती को मानवीय बनाने के मार्ग पर अग्रणी आद.नरेश मेहता जी को जन्मशती पर शतशः नमन।

अरुणिमा, पंचम क्रॉस, पद्मनाभ नगर,
बेंगलुरु -560070 (कर्नाटक)
मो.-9845532140

सूचना

अक्षरा के सम्माननीय पाठकों, सदस्यों से विनम्र आग्रह है कि पते के साथ अपना मोबाइल नंबर भी अवश्य भेजें। ताकि पत्रिका आपको पहुँचने में विलंब न हो।

नरेश मेहता के काव्य में सांस्कृतिक चेतना के स्वर

– अनिरुद्ध सिंह सेंगर

जन्म – 3 अक्टूबर 1961।
शिक्षा – बी.एस.सी.।
रचनाएँ – सात पुस्तकें प्रकाशित।
सम्मान – म.प्र. साहित्य अकादमी साहित अनेक सम्मान।

साहित्य के सजग शिल्पी तथा साहित्य को अन्वेषण की प्रक्रिया मानने वाले आधुनिक भारतीय साहित्य के शीर्षस्थ साहित्यकार एवं आधुनिक हिन्दी को कवि, कथाकार, गीतकार, नाटककार, पत्रकार तथा चिंतक के रूप में अपना प्रदेय सौंपने वाले नरेश मेहता का जन्म 15 फरवरी, 1922 ई. में मध्यप्रदेश के मालवा क्षेत्र के शाजापुर कस्बे में एक निम्न मध्यमवर्गीय वैष्णव परिवार में हुआ। नरेश जी का पारिवारिक नाम पूर्णशंकर था, जो बाद में नरसिंहगढ़ की राजमाता के द्वारा दिये गये नाम नरेश के कारण नरेश मेहता हो गया। दूसरे सप्तक के कवियों में शामिल नरेश मेहता ज्ञानपीठ पुरस्कार (1992) एवं साहित्य अकादमी पुरस्कार (1988) से सम्मानित हैं।

नरेश मेहता की भाषा संस्कृतनिष्ठ खड़ी बोली है। शिल्प और अभिव्यंजना के स्तर पर उसमें ताजगी और नयापन है। उन्होंने सीधे, सरल बिम्बों का प्रयोग किया है। नरेश मेहता की भाषा विषयानुकूल, भावपूर्ण तथा प्रवाहमयी है। उनके काव्य में रूपक, मानवीकरण, उपमा, उत्प्रेक्षा अनुप्रास आदि अलंकारों का प्रयोग हुआ है। नवीन उपमानों के साथ–साथ परंपरागत और नवीन छंदों का प्रयोग किया है। रागात्मक, संवेदना और उदात्तता उनके सर्जना के मूल तत्व हैं। उनके काव्यों में युगीन चेतना व मानवीय संवेदना की सशक्त अभिव्यक्ति है। मानवीय व्यक्तित्व, मानवीय प्रकृति व मानवीय सत्ता के संघर्ष एवं जिजीविषा के मूल्यांकन का नरेश मेहता ने आधुनिक कविता को नयी व्यंजना के साथ नया आयाम दिया है। रागात्मक, संवेदना और उदात्तता उनकी सर्जना के मूल तत्व हैं।

नरेश मेहता भारतीय साहित्य के उन शीर्षस्थ साहित्यकारों में से एक हैं जिन्होंने अपनी लेखनी के माध्यम से एक ऐसे सांस्कृतिक महाभाव की सर्जना की है जिसमें आर्ष सांस्कृतिक सम्पन्नता, औपनिषदिक मेधा एवं वैष्णवता पर आधारित भारतीय अस्मिता प्रवाहमान है। मानवीय स्वतंत्रता एवं मानवीय उदात्तता की ओर उनकी रचनाधर्मिता निरंतर गतिशील रही है। यही कारण है कि इनका काव्य समय का सहगामी होते हुए भी मानवता के भविष्य का दिशा–बोध कराता है और उन्हें एक कालजयी कृतिकार बनाता है। साहित्यकार को समाज का सर्वाधिक संवेदनशील प्राणी माना गया है। वह अपने देखे–सुने–भोगे अनुभवों को ही साहित्य में चित्रित करता है और यदि इस दृष्टि से देखा जाये तो नरेश मेहता त्रिकालदर्शी हैं। वर्तमान को अतीत और भविष्य के मध्य रखकर उसकी महत्ता का ऐसा भव्य और उदात्त चित्र प्रस्तुत करते हैं कि जिसके समकक्ष दूसरा कोई कर ही नहीं सकता। ऐसे बहुमुखी प्रतिभा–प्रसन्न साहित्यकार ने काव्य के अतिरिक्त उपन्यास, नाटक, एकांकी, निबंध, यात्रावृत्त आदि विधाओं को भी अपनी लेखनी से धन्य बनाया है। उनकी प्रमुख कृतियाँ इस प्रकार हैं–बनपाखी सुनो (1957), बोलने दो चीड़ को (1961), मेरा समर्पित एकांत (1962), संशय की एक रात (1967), महाप्रस्थान (1975), प्रवाद–पर्व (1977), शबरी (1977), उत्सवा (1979), तुम मेरा मौन हो (1982), अरण्या (1985), प्रार्थना (1985),

आखिरी समुद्र से तात्पर्य (1988), पिछले दिनों नंगे पैरों (1989), देखना एक दिन (1990)। उपन्यासों में–डूबते मस्तूल, वह पथ बंधु था, धूमकेतु : एक श्रुति, नदी यशस्वी है, दो एकांत, प्रथम फाल्गुन तथा उत्तरकथा आदि प्रमुख हैं। चार नाटक उपलब्ध हैं– सुबह के घंटे, खंडित यात्राएँ, सरोवर के फूल तथा पिछली रात की तरफ। भारतवर्ष की संस्कृति की सर्जना में यहाँ के कवियों का स्तुत्य योगदान रहा है। जहाँ तक नरेश मेहता के रचना–संसार में सांस्कृतिकता का प्रश्न है तो यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि इनकी कृतियों में रचना के बहाने भारतीय संस्कृति की प्राणस्थानिक विवेकमयी वृत्तियों की ही विवृत्ति हुई है।

नरेश मेहता ने आधुनिक मानव–जीवन की विसंगतियों तथा समस्याओं के समाधान के रूप में विपरीत मूल्यों, मान्यताओं के बीच सही दृष्टि अपनाने की चेष्टा की है। उनका प्रयोजन किसी दार्शनिक मत या दार्शनिक जीवन की व्याख्या करना नहीं था बल्कि दर्शन के जो आयाम सहज रूप से उनकी कृतियों में आ गये हैं, उनका शब्दांकन उनकी कृतियों में दिखायी पड़ता है। नरेश मेहता का मत है कि यह संसार अक्षत नहीं है। वह केवल विगत का भ्रम है जो नष्ट हो जायेगा। यही नहीं, युधिष्ठिर के माध्यम से संसार के संबंधों की चर्चा भी करते हैं और मृत संसार से मुक्त होने की सलाह देते हैं–

'मकड़ी की भाँति
इस मृत संसार को
बारम्बार अपने ही चारों ओर
बुनते रहने से क्या होगा ?
जो वास्तविकता में नष्ट हो चुका
उसे स्मृतियों में भी नष्ट हो जाने दो।'

नरेश मेहता के काव्य में जहाँ एक ओर भारतीय मान्यताओं का प्रभाव दिखायी पड़ता है, वहीं उनकी कविता में पाश्चात्य दर्शन का उन्मेष भी देखा जा सकता है। नरेश मेहता ने अपनी रचनाओं में संस्कृतिमूलक विषयों की सटीक व्याख्या की है। उन्होंने अपनी कृतियों में काव्य, काव्यात्मकता, कवि आदि पर सुचिंतित ढंग से विचार किया है।

नरेश मेहता ने व्यक्तित्व प्रकृति तक केन्द्रित माना है। उन्होंने लिखा है कि आकृति की नियामिका भौतिक सम्पदायें व्यक्ति को व्यक्तित्व से हीन बना देती हैं। वस्तुओं से हीन होते जाना ही व्यक्तित्व से सम्पन्न होते जाना है।

नरेश मेहता ने युद्ध के विषय पर भी व्यापक रूप से विचार किया है। उनका मानना है कि युद्ध आवेश नहीं, वरन वह किसी भी पीढ़ी के लिये दायित्व है।

क्या युद्ध
राष्ट्र और इतिहास के लिये दी गयी
समाज की
ऐसी ही अग्नि–परीक्षा नहीं होती ?

नरेश मेहता उपन्यासकारों के रूप में पर्याप्त चर्चित एवं ख्यातिलब्ध रहें हैं। नरेश मेहता आधुनिक उपन्यासकारों में विशेष महत्व रखते हैं, वे व्यक्तिवादी उपन्यासकार हैं। अपनी कई विशेषताओं के कारण नरेश मेहता ने नई पीढ़ी के उपन्यासकारों में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बना लिया है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद सन् 1950–60 तक का हिन्दी गद्य रूमानी मानसिकता से मुक्ति और आधुनिकता के स्वीकार की संक्रमण कालीन चेतना का गद्य है तथा नरेश मेहता में इसी काल की चेतना परिलक्षित होती है।

'यह पथ बन्धु था' नरेश मेहता का सन् 1962 में प्रकाशित वृहद् आकार का उपन्यास है। यह एक ओर तो नरेश मेहता के व्यक्तित्व की शालीनता और पवित्रता को व्यक्त करता हुआ उनके सांस्कृतिक बोध से परिचय कराता है और दूसरी ओर बींसवी शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों से भारत में आये परिवर्तन की कथा कहता है, जो आजादी के आसपास तक फैली हुई है।

नरेश मेहता के साहित्य में सांस्कृतिक चेतना के स्वर मुखर हैं।

बाहुबलीपुरम, गुना
गुना - 473001 (म.प्र.)
मो.–9827201609

वैदिक विचारों का काव्यात्मक स्वरूप

– सरोज गुप्ता

जन्म – 29 नवंबर 1989।
शिक्षा – एम.ए., बी.एड., पीएच.डी.।
रचनाएँ – आठ पुस्तकें प्रकाशित, कतिपय सम्पादित।
सम्मान – बुंदेलखण्ड साहित्य एवं संस्कृति परिषद भोपाल सहित अनेक संस्थाओं से सम्मानित।

हिंदी साहित्य जगत के अक्षय ज्योतिपुंज, भारतीय वैदिक संस्कृति के मर्मज्ञ विद्वान, ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित श्री नरेश मेहता जी धर्म, दर्शन और अध्यात्म को जीवन भर साधते रहे। आपका जन्म 15 फ रवरी 1922 को मालवा के शाजापुर नगर में हुआ। मेहता जी का पूर्व नाम श्री पूर्णशंकर शुक्ल था। इनके पूर्वजों को मेहता की उपाधि गुजरात नरेश ने गुजरात यात्रा के समय दी थी। पिता पं. बिहारीलाल शुक्ल की तीसरी पत्नी श्रीमती सुन्दरबाई से बेटे पूर्णशंकर का जन्म हुआ। श्रीमती सुन्दरबाई मात्र डेढ़ साल के बालक को असहाय छोड़कर स्वर्ग सिधार गईं। पिता ने बेटे के पालनपोषण की अपनी जिम्मेदारी भाई शंकरलाल को सौंप दी। पूर्णशंकर के लालनपालन और पढ़ाई का दायित्व श्री शंकरलाल पर आ गया। वे अपने चाचा के साथ पहले धार मध्यप्रदेश में रहे फि र प्रारम्भिक शिक्षा के लिए नरसिंहगढ़ में पढ़ाई करने लगे। आपके काव्य सृजन की शुरुआत यहीं से हुई। उनकी मित्रता सहपाठी शंकरसिंह से हुई। वह सहृदय, साहित्यप्रेमी और सहयोगी मित्र था। दोनों घनिष्ठ मित्र बन गए। उन दिनों नरसिंहगढ़ रियासत की राजमाता महारानी अपने पति महाराजा के जन्मदिन पर काव्य पाठ का आयोजन कराती थीं। इस काव्य गोष्ठी में जाने का सौभाग्य पूर्णशंकर को मित्र के सौजन्य से मिला। पूर्ण शंकर ने प्रथम बार कविता सुनाकर खूब तालियाँ बटोरीं और सबके दिलों में अप्रतिम स्थान बनाया। राजमाता ने पूर्णशंकर को बुलाकर नाम पूछा अपने हाथ से नारियल और इक्यावन रुपए दिए। पूर्णशंकर ने अपना नाम बताकर कहा कि उनका कोई काव्य नाम नहीं है। राजमाता ने सभागार में उपस्थित कवियों के समक्ष पूर्णशंकर को नरेश नाम दिया। उसी दिन से पूर्णशंकर नरेश बन गये और शुक्ल की जगह परिवार को मिली उपाधि मेहता को ही आपने अपनी पहचान बनाई। **(पुष्पक साहित्यकी पत्रिका सम्पादक डॉ. अहिल्या मिश्र पृ. 12.13 एवं प्रवीण प्रणव, हैदराबाद)**

संघर्षरत जीवन में कई अध्याय जुड़े। आपने बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय से उच्च शिक्षा प्राप्त कर स्वतंत्रता संग्राम में भी सक्रिय और सराहनीय सहभागिता की। आकाशवाणी लखनऊ में भी अपना योगदान दिया। नरेश मेहता जी को कवि रूप में राष्ट्रीय पहचान अज्ञेय जी द्वारा प्रकाशित दूसरे तार सप्तक संग्रह से सन् 1951 में मिली। आपने काव्य संग्रह देखना एक दिन, तुम मेरा मौन हो, उत्सवा, वनपाखी सुनो, पिछले दिनों नंगे पैरों। खंडकाव्य प्रवाद पर्व, संशय की एक रात, महाप्रस्थान। नाटक धूमकेतु, नदी यशस्वी है। उपन्यास डूबते मस्तूल, यह पथ बन्धु था, सुबह के घंटे, खंडित यात्राएँ, निबन्ध काव्य का वैष्णव व्यक्तित्व, हम अनिकेतन, कहानी संग्रह जलसा घर, तथापि, एक समर्पित महिला सहित अथाह साहित्य सृजन किया। प्रयोगवादी, प्रगतिवादी कवि की छाप होने के बावजूद भी आप भारतीय संस्कृति और संस्कारों को सँजोते हुए, वेदों की ऋचाओं के सौंदर्य पर चिंतन–मनन करते हुए प्रतीकों के माध्यम से सृष्टि के अनेक अनसुलझे रहस्यों को सुलझाते रहे। शास्त्रों में कहा गया है कि –

'अपारे काव्य संसारेएकविरेव प्रजापति,
यथास्मै रोचते विश्व तथेदं परिवर्तते।'

काव्य के असीम क्षेत्र में, एक कवि ब्रह्मांड के निर्माता ब्रह्मा की तरह है। जिस प्रकार ब्रह्मा अपनी इच्छा से ब्रह्मांड में

परिवर्तन करते हैं उसी प्रकार एक कवि भी अपनी स्वतंत्र इच्छा का स्वामी होता है। हम कह सकते हैं कि इस सृष्टि को आनन्दमयी बनाने का कार्य एक कवि ही कर सकता है। इस उक्ति को डॉ. नरेश मेहता जी ने अपनी कविताओं के माध्यम से चरितार्थ किया है। वृक्षत्व कविता में वह कहते हैं कि –

'मैंने चैत्र हवाओं से पूछा कि
इतने सारे वृक्षों के पीले पत्ते
क्या तुम छाँट कर गिराती हो?
वह हँसी और बोली नहीं
गिराना मेरा काम नहीं है,
गिरते वही हैं
जो अपना वृक्षत्व खो चुके होते हैं।'

मानवता की प्रतिष्ठा बहुत आवश्यक है। ज्ञानराशि का ऐश्वर्य ही मनुष्यता है। यहाँ वृक्षत्व शब्द से मानवीय संस्कारों की बात नरेश मेहता जी ने कही है। नि:संदेह कविता ही मानव मन की ऋतु बदल सकती है। वह भौतिक तथ्य को आत्मा के सत्य में परिवर्तित कर उसे सुन्दर के माध्यम से शिव तक पहुँचा सकती है।

नरेश मेहता जी ने अपनी अन्तिम रचना 'पुरुष' में सृष्टि के रहस्य की गहन मीमांसा की है। सृष्टि के मौलिक तत्व क्या है। इसके मूल में कौन सी शक्ति है। उसका स्पंदन किस कारण से हुआ किन नियमों से सृष्टि आज तक प्रवृत्त है। शक्ति की प्राणन क्रिया और स्थूल भौतिक पदार्थों में परस्पर क्या सम्बन्ध है? यह सृष्टि रहस्य आप 'पुरुष कविता के प्रतीकों से समझ सकते हैं। 'पुरुष' कविता पर एक दृष्टि –

'पुरुष' हमें जन्म देकर
ओ पिता सूर्य! ओ माता सविता!
क्या इसलिए तुम मार्तण्ड हो कि
अब तुम प्रकाश के अतिरिक्त
और कुछ भी नहीं जन्म दे सकते
मैं जानता हूँ तुम वामन हो
पर हिरण्यगर्भ तो हो
और हिरण्यगर्भ होने का तात्पर्य है
युगनद्ध शिव होना
पर लगता है उषा के सोम अभिषेक ने
तुम्हें सदा के लिए शम्भु बना दिया
तुम शक्ति हो चुके हो।
पर शायद सृष्टि को जन्म देने के उपरान्त
उसके पालन के लिए तुम प्रकाशरूप विष्णु हो।'

नरेश मेहता जी वेद उपनिषद ब्राह्मण ग्रन्थ, पुराण विशेषज्ञ रहे हैं। अपनी सहज प्रज्ञाशील प्रतिभा से वैदिक विज्ञान के सारभूत तत्वों को उन्होंने अपनी रचनाओं में न सिर्फ स्थान दिया है वरन् त्रयी विद्या, सृष्टि विद्या, अग्नि विज्ञान, सूर्य विज्ञान से सम्बन्धित अन्यान्य बोधात्मक सामग्री आपकी कविताओं में देखने को मिलती है। आपकी रचनाओं से पाठक की रुचि में वृद्धि एवं जिज्ञासा जागृत करने की अपार क्षमता है। आपकी रचनाएँ बार-बार पढ़ते हुए प्राचीन काल के ऋषि की अमृतवाणी सुनने जैसा एहसास दिलाती हैं। आधुनिक वैज्ञानिकों की तरह पुरुष; कविता में नरेश मेहता जी ने सृष्टि की रहस्यमयी प्रक्रिया को प्रतीकों के माध्यम से समझाने में सफलता प्राप्त की है। इस कविता में मुख्य प्रतीक हैं-पुरुष, सूर्य, मार्तण्ड, वामन, हिरण्यगर्भ, युगन, शिव, उषा का सोम अभिषेक, शक्ति, विष्णु, वामनतारा महागणपति। इस कविता के सारे प्रतीक अत्यंत प्राचीन व वैदिक हैं। इन्हें समझने और समझाने वाले को भी अपनी दृष्टि भारतीय ज्ञान परम्परा सृष्टि विद्या ज्ञान की ओर आकृष्ट करनी होगी। जो केवल पश्चिमोन्मुखी हैं उनके लिए ये प्रतीक सिर्फ सूर्य चन्द्र नक्षत्र होंगे। इन सब प्रतीकों का स्रोत वेदों में है।

सृष्टि अनन्त है, अणोरणीयान् महतो महीयान के रूप में विराट और अणु की महिमा की तथ्यात्मक स्वीकृति हमारे ऋषियों-मुनियों ने हमें दी है। पुरुष कविता से एक प्रश्न जागृत होता है कि सत्य को अभिधा द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता। उसके लिए बिम्ब चाहिए जो पश्यन्ती तक पहुँच सके। कही हुई बात का अर्थ समझा जा सके। श्रोता को चारों ओर वह प्रतीक दिखाई दे सके। नरेश मेहता जी ने अज्ञात सत्य का, सृष्टि के रहस्य का, अन्वेषण पुरुष कविता द्वारा किया है। कविता लम्बी है और प्रतीकों की भरमार है। प्रतीकों को सत्यान्वेषण के साधन की तरह प्रयुक्त किया है। ज्ञान को सीधे-सीधे अभिधा द्वारा नहीं बताया जा सकता है। पुरुष के स्वरूप की यह

कल्पना वैदिक साहित्य का अतिविशिष्ट अंग है। शरीर मन बुद्धि और आत्मा से विशिष्ट प्राणी पुरुष है। जहाँ एक ओर अधिदेव, अधिभूत सृष्टि है वहाँ दूसरी ओर उतनी ही महत्त्वपूर्ण पुरुष रूपी अध्यात्म सृष्टि है। **(वैदिक परिभाषाओं की व्याख्या, वासुदेवशरण अग्रवाल पृ. 44.45)**

'पुरुष' कविता में सूर्य सृजन की शक्ति है, सृष्टि तत्व का मूल रहस्य है। माता सविता के साथ पिता के रूप में सृजन कर्ता हैं। शायद इसीलिए सूर्य को सविता भी कहा जाता है। पुरुष के दो रूप हैं एक पुर में सोये, वह पुरुष। जो मानव शरीर के भीतर स्थित परमात्म तत्व है वह पुरुष है। दूसरा सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड शरीर रूप में है। इसमें भी पुरुष तत्व स्थित है। प्रजापति का जैसा स्वरूप है वैसा ही पुरुष का है। यहाँ पुरुष का अत्यंत व्यापक अर्थ प्रयुक्त है। आगे कवि कहते हैं।

'क्या इसलिए तुम मार्तण्ड हो कि
अब तुम प्रकाश के अतिरिक्त
और कुछ भी नहीं जन्म दे सकते।'

यहाँ मार्तण्ड कौन? अदिति के सात पुत्र हुए। छः अमरत्व से ओतप्रोत देव शक्तियाँ थीं जो सृष्टि नहीं कर सकती थीं। सातवाँ मरा हुआ अण्डा समझकर दूर फेंक दिया गया। इस मरे हुए अण्डे में गुप्त ऊर्जा विद्यमान थी क्योंकि गुप्त ऊर्जा ही मनुष्य के रूप में सृजन कर सकती है। मार्तण्ड की कथा ऋग्वेद में वर्णित है। मार्तण्ड सूर्य रूप में सम्पूर्ण सृष्टि के सृजन कर्ता हैं। पुरुष कविता में कवि आगे वह कहते हैं –

'मैं जानता हूँ तुम वामन हो
पर हिरण्यगर्भ तो हो
और हिरण्यगर्भ होने का तात्पर्य है
युगनद्ध शिव होना।'

वामन होने का अर्थ है छोटा। सृष्टि विकास के लिए छोटा रूप आवश्यक है। जैसे बीज से वृक्ष, विंदु से सिंधु रूप सृष्टि निर्माण की अद्वितीय प्रक्रिया है। पेड़-पौधे, वनस्पति, जीव-जंतु मनुष्य सबकी सृष्टि बीजवपन वामन रूप से ही सम्भव है। हिरण्यगर्भ सृष्टि के पूर्व एक गोल पिण्ड जिसके भीतर प्रकाश ऊर्जा विद्यमान रहती है। नदी, पहाड़, पर्वत, समुद्र, नीहारिकायें, तारे, आकाश, अनन्त ब्रह्माण्ड सबकी उत्पत्ति का केन्द्र हिरण्यगर्भ है। हिरण्यगर्भ की कथा श्रीमद्भागवत एवं हरिवंश पुराण में खूब चर्चा है। यह सृष्टि का बीज है। हिरण्य अर्थात् सोना। सोना अर्थात् अग्नि। इस कविता में जितने प्रतीक हैं वे साधारण नहीं हैं। हिरण्यगर्भ की बात बहुत विस्तृत व गहराई लिए हुए है। हिरण्यगर्भ अर्थात् जिसके गर्भ में अग्नि हो। सृष्टि का विकास युगनद्ध शिव से, जो शक्ति के साथ आनन्दमग्न हैं। सम्पूर्ण प्रकृति में सृष्टि विकास का यज्ञ चल रहा है। सृष्टि द्वन्द्व से चलती है। अनन्तकाल से सूर्य में अग्निहोत्र चल रहा है। अग्नि और सोम, अन्न और अन्नाद, भोज्य और भोक्ता। सारी सृष्टि सर्वभूतयज्ञ के रूप में अपने आप यज्ञरत है। अंत में वह कहते हैं –

'गणनातीत वर्षों के बाद
ये प्रकाश, ज्योतियाँ, ध्वनियाँ
किस ब्रह्माण्ड में
भूत या भविष्य के किस काल में कब मुक्त होंगी
यह कौन जानता है।' (समिधा-नरेश मेहता पृष्ठ 112-113)

इस कविता में कई प्रतीक छोड़ दिये गये हैं क्योंकि बिना वैदिक ज्ञान के इन प्रतीकों को समझना सरल नहीं है। इसप्रकार सृष्टि के विकास की अभूतपूर्व गौरव गाथा नरेश मेहता जी ने कविता के माध्यम से प्रस्तुत कर एक बड़ा सा प्रश्नचिन्ह हमसबके समक्ष छोड़ा है। मेहता जी की अगली कविता 'अभिषेक पुरुष' है। इस कविता में भी सृष्टि विज्ञान के सत्य का रहस्योद्घाटन कवि ने किया है। बड़ी शिद्दत से कवि ने सत्य के अथाह सागर में प्रतीक रुपी कंकड़ फेंककर सृष्टि की थाह का अनुमान इस कविता में रच दिया है वह कहते हैं–

'होने दो अभिषेक,
इस विश्वात्मन का होने दो अभिषेक।
यह अभिषेक-पुरुष, सृष्टि की उत्सव भाषा है।
मल दो इस वैश्वानर के मुख पर गुलाल,
पहना दो इसे समस्त राग रागनियाँ
नदियों का यज्ञोपवीत, दक्षिणात्य हवाओं के पीताम्बर
ताकि यह सूर्य लगे।
एक दिन मनुष्य मात्र को सूर्य होना है
और सूर्य होना ही ईश्वर होना है।'
होने दो अभिषेक! मनुष्य मात्र का होने दो अभिषेक।

नरेश मेहता जी ने पूरी कविता में सृष्टि की उत्सव भाषा को विभिन्न प्रतीकों के माध्यम से स्पष्ट किया है जैसे वैश्वानर,

रागरागिनियाँ, नदियों के यज्ञोपवीत, मनुष्य मात्र का सूर्य होना आदि यथा ब्रह्माण्डे तथा पिण्डे को सिद्ध किया है। प्रश्न उठता है यह वैश्वानर क्या है? मानव शरीर में जो प्राणाग्नि है उसी को वैश्वानर कहते हैं। मानव शरीर में तीन अग्नियाँ प्रमुख रूप से सक्रिय रहती हैं–पवमान इसे उदराग्नि कहते हैं। पावक हृदय क्षेत्र में स्थित अग्नि है और शुचि–मस्तिष्क में स्थित अग्नि। ये तीनों–अग्नि, वायु और आदित्य रूप हो वैश्वानर अग्नि बनाती हैं। शरीरस्थ वैश्वानर अग्नि प्राण और अपान का संयुक्त स्पंदन ही है। वैश्वानर के स्पंदन के लिए पृथिवी लोक और द्युलोक का द्वन्द्व आवश्यक है। यही अनादि अनन्त माता पिता का युग्म है। पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्यौ ये तीन विश्व प्रत्येक भौतिक पिण्ड में विद्यमान हैं। तीनों की अधिष्ठात्री शक्तियाँ अग्नि, वायु और आदित्य हैं। इन तीनों के परस्पर मिलन से पुरुष रूपी वैश्वानर का जन्म होता है। **(वैदिक विज्ञान और भारतीय संस्कृति–महामहोपाध्याय श्री गिरिधर शर्मा, पृ. 96 से 98)** गायत्री मंत्र में भू भुव: स्व: भी यही है। यज्ञात्मक प्रजापति सम्वत्सर भी वैश्वानर का ही रूप है। नरेश मेहता जी की 'मृत्तिका' कविता देखिए जिसमें वे माटी से संवाद करते हुए माटी की महिमा बता रहे हैं। माटी कहती है –

'मैं तो मात्र मृत्तिका हूँ।
जब तुम मुझे पैरों से रौंदते हो,
हल के फाल से विदीर्ण करते हो।
तब मैं धनधान्य बनकर मातृरूपा हो जाती हूँ।
जब तुम मुझे हाथों से स्पर्श कर,
चाक पर चढ़ाकर घुमाने लगते हो
तब मैं कुंभ और कलश बन जल लाती
अंतरंग प्रिया बन जाती हूँ।
तुम पुरुषार्थ करते मनुष्य हो तो
मैं स्वरूप पाती मृत्तिका।'

नरेश मेहता जी का समिधा संग्रह वैदिक विचारों के काव्यात्मक स्वरूप का अद्वितीय संकलन है। कवि हिन्दी कविता में नये भावबोध, नये विषय, नये शिल्प, नये प्रतीकों के साथ वेदों की ऋचाओं के सौंदर्य को आत्मसात करते हुए शीर्ष स्थान पर हैं। उनकी दृष्टि जरूर अपने आकाश पर रही परन्तु पैर वह जमीन पर जमाये रहे। युग के साथ आगे बढ़ते रहे लेकिन जड़ों से भरपूर रस ग्रहण किया। आपकी दृष्टि भारतीय अध्यात्म के उच्च आकाश को स्पर्श कर ज्ञान परम्परा से शब्द लेकर वर्तमान को ऊर्जस्वित करती रही है। एक बार रवीन्द्रनाथ टैगोर ने कवि सम्मेलन में अपनी मेघदूत रचना सुनाई जिसे सुनकर वरिष्ठ साहित्यकारों ने कहा कि ये कविता तो कालिदास की मेघदूत जैसी है। इसपर टैगोर जी कहते हैं कि हर बहू को अपनी सास के गहनों पर अधिकार है। परन्तु चतुर बहू सास के जेवर लेकर उसे आधुनिक लुक देकर नये फैशन के गहने पहनती है। वैसे ही मेघदूत कालिदास की रचना जरूर है परन्तु यह नये रूप में आपके समक्ष है। मेरी कविता भारतीय ज्ञान परम्परा रूपी शुद्ध चोखे सोने के साथ आधुनिकता के अनुरूप डाले हुए जेवर की तरह नये रूप में नये ढंग से प्रस्तुत है, रसास्वादन कीजिए। इसीप्रकार मेहता जी ने न सिर्फ वैदिक साहित्य का अध्ययन किया वरन् बार–बार अवगाहन कर आत्म साक्षात्कार कर सृष्टि के अनेक अनसुलझे रहस्यों को नये ढंग से ज्ञानात्मक पुट देकर सुलझाया है। यही कारण है कि नरेश मेहता जी की रचनाओं का रसास्वादन इतना रोचकए मनोहारी व सजीव तरीके से हम कर पाते हैं। सृष्टि यज्ञ पर केन्द्रित कविता देखिए–

'यज्ञो यज्ञेन कल्पताम्
यह कैसा है यज्ञ? जहाँ यज्ञ भी यज्ञ को ही समर्पित है
यज्ञो यज्ञेन कल्पताम्
समय–एक काल यज्ञ संपन्न कर रहा है जिसमें आयु मात्र की हवि दी जा रही है।
पृथ्वी–एक वानस्पतिक यज्ञ संपन्न कर रही है जिसमें ऋतु मात्र की हवि दी जा रही है।
समुद्र एक पर्जन्य यज्ञ संपन्न कर रहा है जिसमें जल मात्र की हवि दी जा रही है।
सूर्य एक सावित्री यज्ञ संपन्न कर रहा है जिसमें अंधकार मात्र की हवि दी जा रही है।
चंद्र–एक सोम यज्ञ संपन्न कर रहा है जिसमें औषध मात्र की हवि दी जा रही है ।
मनुष्य–एक विचार यज्ञ संपन्न कर रहा है जिसमें तत्व मात्र की हवि दी जा रही है।
यह सारे यज्ञ एक अस्ति यज्ञ संपन्न कर रहे हैं जिसमें नेति–नेति की हवि दी जा रही है।
जो कुछ है वह यज्ञ है, ब्रह्मांड जिसके वाघाम्बर हैं।
इस यज्ञ पुरुष का यज्ञ ही यज्ञ का यज्ञ है।

यज्ञो यज्ञेन कल्पताम्।'

यज्ञ प्रक्रिया सम्पूर्ण रूप में सृष्टि विज्ञान है। ब्रह्माण्ड तथा पिण्ड की सृष्टि प्रक्रिया की अनुकृति एक संकल्प द्वारा सम्पन्न की जाती है। इस कविता में पूर्ण ज्ञान का विनियोग है। यह जीवन को सामंजस्य, समस्वरता, सौंदर्य और परिपूर्णता प्रदान करने में सक्षम है। इस यज्ञ प्रक्रिया द्वारा अन्तर्बाह्य जगत के दोनों ही पक्षों में सामाजिक जीवन और व्यक्तिगत जीवन में समष्टि और व्यष्टि में इहलोक और परलोक में सुसंवाद स्थापित होता है। राष्ट्र में अभय और मित्र दृष्टि का विकास होता है। चाहे समिधा चयन हो, वेदि निर्माण हो, अग्नि समिन्धन हो, आहुतियों के लिए मंत्र पाठ हो, सब कर्मों में यजमान का अग्नि से मानसिक रूप से तादात्म्य साधना से ही होता है। 'देवो भूत्वा देवं यजेत' से ही कार्य बनता है। अन्तर्बाह्य अग्नि प्रबुद्ध करके ही मनुष्य ऋषित्व प्राप्त करता है। **(लोक और वेद के अभिनव आचार्य पं दुर्गाचरण शुक्ल पृ. 582)** नरेश मेहता जी प्रार्थना पुरुष कविता में कहते हैं कि

'तुम नहीं जानते कि एक कवच है,
एक प्रार्थना है एक मंत्र है।
जो तुम्हें संपूर्ण आवेष्ठित किए हुए हैं
जो तुम्हें निष्णात सुगंधित किए हुए हैं
जो तुम्हें ईश्वरत्व की ओर ले जा रहा है।
कवच की अभेद्यता को, प्रार्थना की अनुग्रहता को,
मंत्र की शक्तिमत्ता को कभी अपने में अनुभव किया है? अपने में
एक प्रार्थना को जन्म देकर देखो!
लगेगा कि तुम एक राजसूय यज्ञ संपन्न कर रहे हो।
संपूर्ण सृष्टि उपहार लिए उपस्थित है।
जिस दिन तुम्हें पृथ्वी पर प्रार्थना करना आ जाएगा,
उस दिन तुम मंत्र, मंत्र नहीं मंत्र देवता,
और मंत्र देवता ही नहीं मंत्र पुरुष हो जाओगे।'

गायत्री फूल कविता देखिए 'वृक्ष जब प्रार्थना करता है तब एक फल का जन्म होता है। तभी तो वृक्ष की गायत्री को फू ल कहा जाता है।' मानवीय सुगंध कविता में वह मानवीय स्वत्व की बात करते हैं। जहाँ–जहाँ प्राणाग्नि व स्पन्दन का व्यापार जारी है एक–एक बीजांकुर में यह केन्द्रस्थ प्राणाग्नि जो बाहर से अपने लिए अन्न अर्थात् सोम लाती है। इसके मिलने से रुद्राग्नि शान्त हो जाती है। अग्नि सोम की प्रतिक्षण होने वाली प्रक्रिया से प्राणात्मक पिण्ड शरीर वृद्धि को प्राप्त होता है। कवि कहते हैं –

'फूल ही नहीं, मनुष्य में प्रार्थना की सुगंध होती है।
प्रत्येक हवा के साथ जब हमारे स्वत्व का चंदन–वृक्ष,
पीपल पत्रों सा प्रार्थनामय हो जाता है ।
तब कोई और नहीं,
यह मानवीय स्वत्व ही कल्पतरु होता है,
मनुष्य का मानवीय स्वत्व ही कल्पतरु है।'

भारतीय उपाख्यानों में कल्पवृक्ष की खूब कथायें वर्णित हैं। कल्पवृक्ष स्वर्ग का ऐसा सनातन महावृक्ष जिसकी छत्रछाया में हम जो कुछ चाहें पा सकते हैं। हमारा मन ही कल्पवृक्ष है। कल्प दो प्रकार का होता है। सम् उपसर्ग लगाकर संकल्प जो जीवन की अंतर्मुखी गति को बताता है और वि उपसर्ग विकल्प रूप बहिर्मुखी वृत्ति का सूचक है। नरेश मेहता जी की कविताओं में जीवन को सार्थकता प्रदान करने का भाव छिपा है। उदात्त गुणों, जन्मजन्मांतरों के पुण्यों के फल की चर्चा वृक्ष बोध– कविता में करते हुए कहते हैं –

'आज का दिन एक वृक्ष की भाँति जिया
और प्रथम बार वैष्णवी संपूर्णता लगी।
अपने में से एक फल को जन्म देना
कितना उदात्त होता है।
यह केवल वृक्ष जानता है
और फल वह तो जन्म जन्मान्तरों के पुण्यों का फल है।'

यह सृष्टि यज्ञ प्रतीक है उस विराट का जो स्वत: सचेतन प्रकाशवान अपने लक्ष्य पर दृढ़ आत्मोसर्ग से आत्मपरिपूर्णता की प्राप्ति का विश्व व्यापक नियम है। यज्ञ एक अग्नि ज्योति भी है और शक्ति भी। यह अग्नि शिल्पी अपनी भट्टी पर कार्य करता हुआ, हथोड़े की चोटें लगाकर हमारी पूर्णता को रच देता है।

अध्यक्ष हिन्दी विभाग
पं. दीनदयाल उपाध्याय शासकीय कला
एवं वाणिज्य महाविद्यालय
सागर 470001 (म.प्र.)
मो .9425693570

श्री नरेश मेहता से जवाहर कर्नावट की बातचीत

ज्ञानपीठ एवं साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित हिंदी के यशस्वी साहित्यकार श्री नरेश मेहता उन शीर्षस्थ लेखकों में हैं जो भारतीयता की अपनी गहरी दृष्टि के लिए जाने जाते हैं। श्री नरेश मेहता ने आधुनिक कविता को नई व्यंजना के साथ नया आयाम दिया। रागात्मकता, संवेदना और उदात्तता उनकी सर्जना के मूल तत्व हैं। हिंदी गद्य और पद्य दोनों विधाओं से उन्होंने हिंदी लेखन जगत को समृद्ध किया। श्री मेहता इंदौर से प्रकाशित 'चौथा संसार' हिंदी दैनिक के संपादक भी रहे। अपनी मूर्धन्य प्रतिभा से उन्होंने पत्रकारिता जगत में भी अनेक कीर्तिमान स्थापित किए। हिन्दी भाषा और पत्रकारिता के वर्तमान एवं भावी परिदृश्य को लेकर पच्चीस वर्ष पूर्व दिए इस साक्षात्कार में श्री नरेश मेहता ने अपने गहन अनुभव एवं चिन्तन की गहराईयों से हिन्दी भाषा एवं पत्रकारिता पर बेबाक टिप्पणी की है । – सं.

जवाहर कर्नावट : – स्वतंत्रता के पश्चात् सामाजिक जीवन में भाषा का स्वरूप एवं प्रयोग लगातार बिगड़ता जा रहा है, भाषिक संस्कार की भूमिका निभाने का कार्य अब समाचार पत्र भी नहीं कर पा रहे हैं। इस बारे में आप क्या कहना चाहेंगे?

नरेश मेहता : – जब हम कहते हैं कि स्वाधीनता के पहले ऐसा था–स्वाधीनता के बाद ऐसा है तो–आज स्वाधीनता के पहले वाला न समाज रह गया है, न मानसिकता रह गयी है, न संस्कार रह गये हैं। तो ऐसी स्थिति में हमने उसको हर लेवल पर अस्वीकार कर दिया है तो अखबार में यह कैसे संभव है कि भाषा का स्वरूप हिन्दी बेल्ट में आए। हिन्दी बेल्ट जो है उसका मानसिक विकास बहुत अक्खड़ तरीके से हुआ है। हम फूहड़ तरीके से आधुनिक हुए हैं।

हमारी आधुनिकता में और एक बंगाली की आधुनिकता में या मराठी की आधुनिकता में काफी अंतर है। जो अपेक्षाकृत अपनी परम्परा के साथ आधुनिक हुआ है। हमारी जो कुछ भी परम्परा थी, जैसी भी थी, उस परम्परा का निर्वहन हमने नहीं किया। असल में हिन्दी बेल्ट की दिक्कत क्या है कि इस पर इतिहास का दबाव सबसे ज्यादा रहा। प्रतिकार की मानसिकता हम पैदा ही नहीं कर सके। मध्यकाल में सारे मुस्लिम दबाव में रहे। हम दबाव को अंगीकार करते हुए चले। इसलिए हमारे भीतर गुलामी की भावना इतनी गहरी बैठी हुई है कि एक स्वतंत्र व्यक्तित्व, अपनी अस्मिता की जो सही चेतना थी, वह भी नष्ट हो गयी, उसी का यह प्रभाव है।

प्रश्न :– हिन्दी में एक भी ऐसा दैनिक नहीं है जिसे हिन्दी का राष्ट्रीय समाचार पत्र या प्रवक्ता कहा जा सके। जबकि अन्य भारतीय भाषाओं एवं अंग्रेजी में ऐसे प्रतिनिधि दैनिक हैं। हिन्दी बेल्ट में ऐसा न होने का आप क्या कारण मानते हैं?

उत्तर : – इसका कारण है–हिन्दी बेल्ट जो है एक महादेश है, हम इस क्षेत्र की स्पष्ट सीमा नहीं बाँध सकते। हिन्दी प्रदेश अपने आप में कई प्रदेश हैं। मुझे लगता कि कोई अखबार इतने बड़े महादेश में सहज रूप में प्रवक्ता बन सकता था। आप केरल की बात करते हैं, बंगाल की बात करते हैं, महाराष्ट्र की बात करते हैं, इन प्रदेशों की भाषाओं का प्रवक्ता अखबार हो सकता है किन्तु बीकानेर से लेकर पूर्णिया तक और मुजफ्फरपुर से लेकर खंडवा तक एक विशाल भौगोलिक क्षेत्र है, यह भौगोलिक स्थिति एक बहुत बड़ा कारण रहा है, एक प्रकार का ऐतिहासिक वास्तविकता का भेद इनमें रहा। अंग्रेज कालीन भारतीय

प्रदेश और रियासतों वाला भारतीय प्रदेश दोनों में सामाजिक, राजनीतिक चेतना का भेद रहना यह भी बड़ा कारण है।

प्रश्न :- स्वतंत्रता के बाद हिन्दी के समाचार पत्रों का प्रसार तो बहुत बढ़ा है किन्तु विचारों के स्तर पर सम्पन्नता नहीं दिखाई देती है, राजनीतिक एवं फिल्मी कवरेज दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। क्या इससे पाठकों की रुचि विकृत नहीं हो रही है?

उत्तर : - आज विकृति पूरे समाज में ही है, इसे दूर करने के उपाय किसी के पास नहीं हैं। फैलाने के साधन सभी के पास हैं। अब राजनीति, आधुनिक मीडिया जब पूरे जोर-शोर से विकृत करने पर तुले हुए हैं, तब अखबार उसमें क्या कर लेगा। खासकर उस स्थिति में जब अखबार, अखबार न रहकर इंडस्ट्री हो गए हैं। अब अखबार निकलता नहीं है, उत्पादित होता है, तो उत्पादन तो मार्केट को देखकर होता है। एक हस्त शिल्पी मार्केट को देखकर चीज नहीं बनाता। लेकिन औद्योगिकता मार्केट को देखकर चीज बनाती है, ये आमूल आधार है, अंतर है। हस्त शिल्पी की रचना के लिए मार्केट उत्सुक रहता है। उत्पादन मार्केट के लिए उत्सुक रहता है। यह एक आधारभूत अंतर आ गया है। आज सारा दृष्टिकोण ही बदल गया है। इसीलिये आप अब क्या ठीक करें?

प्रश्न :- भाषायी दृष्टि से इलेक्ट्रॉनिक मीडिया जिस तरह से निरंकुश हो रहा है, क्या आपको नहीं लगता कि हिन्दी पत्रकारिता के लिए यह एक चुनौती है?

उत्तर : -आप एक बात मानकर चलिए कि आज विचार की आवश्यकता बहुत कम रह गयी है। अब अखबार में किस मंत्री का क्या हुआ? अमिताभ बच्चन ने तय किया और क्रिकेट में कौन जीता-हारा। इस सूचनात्मकता पर से गुजर जाना चाहता है आदमी, किसका क्या लफड़ा हुआ, इसमें इंट्रेस्ट है लेकिन ऐसा क्यों होता है, इस 'क्यों' को जानना उसके लिए असुविधा उत्पन्न करता है। आज सम्पादक क्या स्वयं कुछ जानता है? वह नौकरी कर रहा है, राजनीति में नहीं आ पाया तो यहाँ आ गया। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया कई चीजों को सब्टिट्यूट कर रहा है, लेकिन जो केन्द्रियता है, जैसे हबीब तनवीर का नाटक है या लोकमंच की नौटंकी है। नौटंकी आप देखना पसंद करेंगे टी.वी. पर। वह टी.वी. एक्सीबीशन के रूप में दिखा दी जाएगी। वो एक आपका हिस्सा है, वह नहीं होगा। ये जो समस्या है, हालाँकि मैं जानता हूँ कि इसमें आपका हिस्सा है, वह नहीं होगा। ये जो समस्या है, इसमें स्थायी कुछ नहीं होता है किन्तु ये कितना नष्ट करके होगा, यह नहीं कहा जा सकता।

प्रश्न :-भाषायी समाचार पत्र प्रकाशित किया जाता है तो अनेक चुनौतियाँ होती हैं, क्या आप मानते हैं कि सत्ता से तालमेल किए बिना आसानी से अखबार नहीं निकाला जा सकता है?

उत्तर : - देखिए सत्ता के साथ एक संबंध तो होता है। जब सत्ता विदेशी हो, जैसा कि स्वतंत्रता से पूर्व था, तब सत्ता से तालमेल न रखना ही अखबार का अनुकूल पक्ष होता है। जब सत्ता भी आप हों और अखबार भी आप हों तो समस्या ज्यादा गंभीर हो जाती है। अंग्रेज वाइसराय के खिलाफ लिखना एक बात थी लेकिन आज के प्रधानमंत्री के खिलाफ लिखना दूसरी बात है और जहाँ तक पाठक का सवाल है, वह भी खेमों में बँटा हुआ है।

प्रश्न :- पिछले कुछ सालों में हिंदी समाचार पत्रों में साहित्यिक सामग्री का अभाव दिखाई दे रहा है। इस संबंध में हिंदी प्रेस की स्थिति को आप किस प्रकार देखते हैं?

उत्तर : - समाचार पत्र निकलते हैं आज की बिक्री के लिए। कल का अखबार कोई नहीं खरीदता-वह साहित्य नहीं है। गोदान 50 साल पहले लिखा गया किन्तु आज भी बिक रहा है, अगर बिक्री या जीवन इतना बिक्रीत हो कि उसे अपने एक दिन के जीवन को ज्यादा से ज्यादा कारगर

बनाना है। इससे समाज को क्या लाभ होता है? क्या हानि होती है। उसको इससे कोई मतलब नहीं है। बाबरी मस्जिद गिरी तो समाचार है। बाबरी मस्जिद में कुछ हुआ तो समाचार है। हमको हमारा अखबार बेचना है। आप सत्ता मंडित होते हैं तो समाचार है, नरसिंहराव प्रधानमंत्री थे तो समाचार है, आज उनकी दुर्गती हो रही है तो समाचार है। अखबार की सहानुभूति आपसे नहीं है, अपने से है इसलिए वह संतुलित दृष्टिकोण नहीं रखता। साहित्य अब उसकी प्राथमिकता नहीं रही।

प्रश्न :–बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ और विदेशी अखबार भारत से समाचार पत्र प्रकाशित करने के लिए आतुर हैं। क्या इन्हें प्रकाशित करने की अनुमति देना उचित है? हिंदी के लिए इसके क्या–क्या खतरे हो सकते हैं?

उत्तर : – पहली बात तो यह कि बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ आज नहीं तो कल निश्चित ही आएँगी। व्यापार और इंडस्ट्री के क्षेत्र में आ रहे हैं। हमारी सरकार तो बहत ही बुरी अवस्था में रहती है। वह शराब का विरोध भी करती है और शराब बेचती भी है। सरकार भी एक तरह की इंडस्ट्री ही है। धीरे–धीरे हुआ क्या है कि आज हम बात करते हैं कि सामंतकाल बहुत बुरा था लेकिन उस काल के बारे में एक दृष्टि का अंतर था। तब राजा केवल शासन करता था, वह धंधा नहीं करता था। आज की शासन व्यवस्था बाकी सब कुछ करती है। आप क्या खायेंगे, क्या पियेंगे, कैसे रहेंगे, कहाँ नौकरी करेंगे, आपका मकान कैसा होगा। इन सब बातों के अलावा व्यापार, वाणिज्य सब वह करती है। भाषायी प्राथमिकता कहीं दिखाई ही नहीं देती। राज्य इतना ज्यादा व्यापक हो गया है। राज्य बनिया भी है, राज्य पुलिस भी है, राज्य चोर भी है। राज्य हवाला कांड भी करता है, पाठक के माध्यम से अपने को ब्राइब देती भी है और लेती भी है, ढोंग भी करती है, यह नाटक हो रहा है। आज हम आर्थिक गुलामी के दौर में आ गए हैं। अंग्रेज काल तक हम राजकीय गुलामी में थे। पूरे संसार में राजकीय गुलामी में थे। पूरे संसार में राजकीय गुलामी कहीं थोड़ी बहुत हो तो बात अलग है परन्तु अब प्रश्न आर्थिक गुलामी का है। साधन है किन्तु उनका लाभ नहीं मिल पा रहा है। हम आर्थिक गुलामी के स्वर्णकाल की ओर बढ़ रहे हैं। ऐसे दौर में हमारी भाषाओं पर आसन्न संकट साफ दिखाई देता है।

प्रश्न :– हिन्दी के जो दैनिक समाचार पत्र प्रकाशित हो रहे हैं, क्या आप उससे संतुष्ट हैं? आपकी राय में इसमें और क्या सुधार होना चाहिए? एक संतुलित और आदर्श दैनिक समाचार पत्र का स्वरूप क्या होना चाहिए?

उत्तर : – अब किसी प्रकार का आदर्श नहीं रहा। समाचार पत्र ही नहीं रहे, अब तो खबर गजट है। पचास मरे, हवाला कांड हुए, इतनी गोलियाँ चली–कोई सा भी अखबार पढ़ लें, और चाहे दशहरा, दीपावली विशेषांक हो, कहीं कोई आपको एक लेख उत्कृष्ट नहीं मिलेगा। लाइफ का पैटर्न ही बदल गया है। आदर्श की क्या कल्पना करें?

प्रश्न :– हिन्दी समाचार पत्रों की विश्वसनीयता पर अक्सर प्रश्न चिन्ह लगाया जाता है और उसमें अंग्रेजी से अनुवादित सामग्री भी बहुत प्रकाशित की जा रही है, इस बारे में आप क्या कहना चाहेंगे?

उत्तर : – ठीक है, अंग्रेजी में प्राप्त राष्ट्रीय और वैश्विक समाचारों और रिपोर्टों का हिंदी में अनुवाद करना भी एक मजबूरी है। देवगौड़ा साहब को लाख आप किसान का बेटा कहते हों, बोलते अंग्रेजी में हैं तो हिन्दी में उसका अनुवाद छपेगा और अनुवादकर्ता की भी अपनी समझ होती है। अंग्रेजी में तो विश्वसनीयता होगी ही। आदमी ने जो कहा है, वह अंग्रेजी में कहा है, हिन्दी अखबार तो उसका अनुवाद दे रहे हैं तो हिन्दी पर आदमी विश्वास कैसे करे, फिर अनुवाद के कारण प्रभाव तो बदलेगा ही।

बी–102, न्यू मिनाल रेसीडेंसी,
जे. के. रोड, भोपाल–462022 (म.प्र.)
मो.–7506378525

श्री नरेश मेहता अर्थात् सनातन संस्कृति का स्मरण

– रमेश दवे

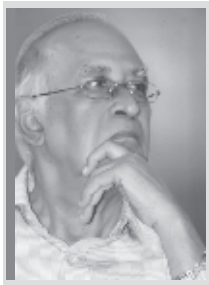

वरिष्ठ साहित्यकार एवं शिक्षाविद।

जन्म – 8 जून 1936।

रचनाएँ – पचास से अधिक पुस्तकें प्रकाशित।

सम्मान – कुसुमांजलि साहित्य सम्मान, सहित अनेक सम्मानों से सम्मानित।

श्री नरेश मेहता का संस्मरण के माध्यम से स्मरण एक प्रकार से भारतीय सनातन संस्कृति के स्मृति पुरुष का स्मरण है। संसर्ग, सम्पर्क, संवाद और साक्षात्कार तो उनके साथ बहुत अधिक नहीं हुआ, लेकिन जितना भी जब-जब भी, जहाँ-जहाँ भी हुआ वह स्मरणीय हो गया। वे मालव-अंचल के ऐसे प्रज्ञा-प्रदीप्त पुरुष थे, जिनकी आलोक आभा उनके वैष्णवी व्यक्तित्व में प्रत्यक्ष होती थी। इसे संयोग या को-इन्सीडेंस ही कहा जाएगा कि नरेश जी एक शताब्दी पूर्व मध्यप्रदेश के मालवा अंचल के जिला शाजापुर में जिस भट्ट-मोहल्ले के जिस मकान मे जन्मे थे, उसी मोहल्ले के उसी मकान में मेरा भी जन्म हुआ था। उनके शाजापुर-प्रवास के दौरान जब मैं उनके साथ शाजापुर के भट्ट मोहल्ले में गया तो उन्होंने इशारे से बताया- रमेश जी, इस मकान में मेरा जन्म हुआ था। मैंने चौंकते हुए कहा नरेश जी, क्या ही अद्‌भुत संयोग है कि मेरे पिता जब शाजापुर में थे। तो इसी मकान में रहते थे और मेरा जन्म भी इसी मकान में हुआ था। मेरे पिता ने स्वयं बताया था। वे साहित्य पढ़ने के शौकीन थे और आप का 'यह पथ बंधु था'। उत्तर कथा, दो एकान्त एवं अन्य पुस्तक उन्होंने बड़े चाव से पढ़ी थी। संभवत: मेरे मन में किशोर अवस्था से ही जो साहित्य अनुराग पैदा हुआ, उसमें आपकी जन्म-स्थली की धूल-विभूति मुझे भी लग गई हो और मैं भी कुछ न कुछ लिखने लगा। वे हँसे और बोले, ऐसा नहीं, रमेश जी, आपके अंदर तो साहित्य का बीज तत्व था ही।

नरेश जी से अनेक बार मिलने का अवसर तब मिला, जब वे उज्जैन में प्रेमचंद पीठ पर सृजनरत थे। उन्होंने अपनी बेटी का विवाह उज्जैन से किया था, जिसमें में भी प्रभाकर श्रोत्रिय के साथ आमंत्रित था। मैंने देखा एक उत्सव-पुरुष कितनी तत्परता और पितृत्व की पवित्र ऊर्जा से भरा-भरा वे समस्त लोकाचार निभा रहा था जो हमारे समाज की सांस्कृतिक आभा हैं। संघर्षों की शृंखला खण्डित करते हुए एक क्रांतिकारी की तरह उन्होंने शब्द का जीवन जिया, अर्थ का आर्थिक अभाव होते हुए भी। मैंने उनसे एक बार पूछा कि 'वन पारखी सुनो' कविता में महिमा जी प्रथम पृष्ठ की समर्पण भूमि हैं, तो उनका उत्तर था महिमा जी को और मैं दे भी क्या सका या दे सकता था। शब्द ही मेरी सम्पत्ति रही है। जीवन का शून्य जिस प्रकार वे भरती हैं, उसी प्रकार उनके कारण मैं कविता को भी कभी शून्य में तिरोहित होने न देने का प्रयास करता रहा हूँ। मेरे सृजन के शब्द-शब्द में उनकी ही ध्वनि है, उनकी ही अनुगूँज है। रमेश जी कविता संग्रह की महिमा ही तो मेरी महिमा है। हाँ, यह काव्यांजलि 'महिमा' नाम से श्रीमती महिमा जी के लिये ही लिखी है। थोड़ा हँसकर कहा-मान लीजिये ऐसा ही है और उन्होंने उस कविता की प्रारंभिक पंक्तियाँ सुना दीं। मुझे याद तो नहीं रहीं, पर मेरे पास 'बन पाखी सुनो' कविता संग्रह होने से मैंने वे पंक्तियाँ ढूँढ़ निकालीं, जो इस प्रकार हैं-

आओ/ उस जल को ढाँके / हम /
कल जो आएगा / रत्नाकर हो वह।

अब मुझे लगा कि नरेश जी संशय के कवि न होकर विश्वास के कवि हैं, उत्सव के कवि हैं, संघर्ष के सौन्दर्य के कवि हैं। वे प्रतिबद्धता के कवि न होकर आस्था-बद्धता के ऐसे कवि हैं, जो कठिनतम समय में अपना साहस नहीं खोते, अपनी जिजीविषा को पराजित होने नहीं देते। जिस प्रकार उनके ही समकालीन महान कवि निराला संघर्षों को ठोकर मारकर, स्वाभिमान की शिला पर बैठकर काव्य-रचना का महासमुद्र रचते रहे, वैसे ही निराला की तरह नरेश जी ने अपने अन्दर स्वाभिमान का रत्नाकर जिया, भले ही दोनों में संघर्ष अलग-अलग प्रकार के थे।

एक हृदय विदारक संस्मरण यह है कि विवाह के मात्र एक डेढ़ माह बाद ही जब बेटे ईशान का एक आकस्मिक दुर्घटना में निधन हो गया तो मैं करीब दो माह बाद हिम्मत जुटाकर, इन्दौर में संगम नगर में उनके घर गया। नरेश जी अपनी बैठक के तखत पर बैठे थे। उस समय वे इन्दौर से प्रकाशित 'चौथा संसार' के संपादक भी थे। महिमा जी अंदर थीं। मैं उनके पास तखत पर ही बैठ गया। वे मेरे कंधे से लग कहने लगे, रमेश जी। मैं मुक्त हो गया। सब चाह मिट गई। आँसू छलछला आये। मैं भी भावुक हो उठा। ईशान की छवि मेरी आँखों में कौंधी तो मेरी आँखें भी नम हो गईं। थोड़ी देर बाद सहज होकर हम लोगों ने मृत्यु प्रकरण छोड़कर दूसरी चर्चा शुरू कर दी तो वे बोले रमेश जी एक ही कर्त्तव्य बचा है, पुत्र वधू वंदना का पुनर्विवाह कर दूँ। आप अपने समाज में या कहीं और कोई योग्य लड़का देखें, तो मैं वंदना बेटी का विवाह कर अपना भी मुक्ति पथ तैयार कर लूँ। हम दोनों उदास हो गये।

नरेश जी का जीवन इसलिये भी अधिक प्रेरणादायी है कि सब कुछ सहकर भी उन्होंने अपनी वैष्णवी आस्था और अपने आत्मबल को कमजोर नहीं होने दिया। एक व्यक्ति अन्दर से पूरी तरह आँसुओं से भीगा हुआ, लेकिन फिर भी जीवन से भागा नहीं। उन्होंने एक पिता, एक पति के साथ, एक कवि, एक लेखक का ऐसा जीवन जिया, जो यह साबित करता है कि नरेश जी जैसा कवि, कथाकार तन से अधिक, मन से जीता है और वह मन उनका सतत् सृजन है। एक शाम प्रभाकर श्रोत्रिय जी के निवास पर नरेश जी आए। मैं भी वहाँ मौजूद था। चाय आदि होने के बाद वे बोले-आज मैं काव्य-पाठ करने आया हूँ। मैं अभी-अभी असीरगढ़ का किला देख कर लौटा हूँ। मैंने कुछ कविताएँ असीरगढ़ को लेकर और कुछ अन्य भी लिखी हैं। लगभग दो कविता-संग्रह बन रहे हैं। उस शाम को उन्होंने दोनों संग्रह की लगभग एक घण्टे कविताएँ पढ़ीं। दत्तचित्त होकर जहाँ उन्होंने काव्य-पाठ किया, वहीं एक इतिहास पुरुष की कई ऐतिहासिक कविताएँ सुनकर श्रोत्रिय परिवार और मैं स्वयं मंत्रमुग्ध हो गया। मैंने काव्य-पाठ सम्पन्न होने पर पूछा असीरगढ़ यात्रा से प्रेरित होने के पूर्व क्या आपका इतिहास के प्रति विशेष आकर्षण पैदा हुआ था?

मेरे प्रश्न का उत्तर देते हुए बोले-रमेश जी, इतिहास तो दोनों काम करता है, प्रेरित भी करता है और मोहभंग भी करता है और उन्होंने 'संशय की एक रात' काव्य-नाटक की जो पंक्तियाँ सुनाईं वे मुझे याद तो नहीं, मगर मैंने उन्हें 'संशय की एक रात' से खोज निकाला। वे पंक्तियाँ थीं-

इतिहास / व्यक्ति को व्यक्ति नहीं / शस्त्र मानता है।

कितना बड़ा विचार या दर्शन है, इन पंक्तियों में। इतिहास दरअसल है ही क्या-न केवल शस्त्र का शास्त्रों से युद्ध के अतिरिक्त, बल्कि नरेश जी के विचार से तो मनुष्य स्वयं भी तो इतिहास में शस्त्र हो जाता है-कई प्रकार का वाणी का शस्त्र, हिंसा, युद्ध और साम्राज्यवादी शक्ति का शस्त्र, क्या नेपोलियन, हिटलर हों या हमारे समस्त पौराणिक युद्ध, उनमें मनुष्य स्वयं शस्त्र नहीं बना? यही तो इतिहास और मनुष्य दोनों का हथियार हो जाना है।

पीड़ाओं के प्रपंच-जाल यदि किसी प्रतिभा का तेज हरण करने का प्रयत्न करते तो नरेश जी अपने नैतिक एवं आंतरिक अध्यात्म बल से उसका प्रतिकार कर, अपने काव्य, अपने उपन्यासों, कहानियों और वैचारिक लेखन में उठ खड़े होते

थे। मुझे कभी-कभी लगता है, महान व्यक्तित्व को समय की क्रूरता के आघात क्यों सहने पड़ते हैं? देखिये न, निराला ने क्या-क्या भोगा, सहा और अंत भी कितना दारुण। विश्व की महान प्रतिभाओं को ही देखें तो पिकासो जैसा महान पेन्टर अपने अंतिमकाल में लगभग पगला गया था।। वॉन गाग ने आत्महत्या की, वाल्टर बेन्जामनि भी इसी प्रकार मरा और माइकल एंजिलो तो पेंटिंग करते-करते आत्म-विस्मृति में चला जाता था। सार्त्र का अन्त भी अस्वाभाविकता में लगभग आत्म-विस्मृति के साथ हुआ। नरेश जी ने भी क्या कम भोगा।

एक बार का किस्सा है वे बोले रमेश जी आज अपनी एक पीड़ा कहने आया हूँ। वे मेरे निवास पर सूट और टाई पहने ऐसे दिख रहे थे जैसे कोई विद्वान प्रोफेसर हों। वे बोले महिमा जी को केन्सर है। मैं, जिन्दगी भर जो भी करता आया हूँ। मेरे शब्द-शब्द के पीछे महिमा जी रही हैं। मैं नहीं चाहता कि वह मुझे छोड़कर जाएँ इसलिये कुछ लोगों की सलाह पर मैं मृत्युंजय जाप करवाना चाहता हूँ। बस आप इतना कर दीजिये कि मैं जवाहर चौक के पास जो शिव मंदिर झरनेश्वर में है, वहाँ कल हम लोगों को अपनी गाड़ी से पहुँचा दीजिए। मैंने कहा यह कौन बड़ी बात है। कल गाड़ी दिन भर आपके पास रहेगी। मैंने अपने ड्राइवर वकील मियाँ से कहा तो उसने कहा कि ठीक है। मैं उन्हें लेकर आ जाऊँगा और मंदिर पर बना रहूँगा। जब वकील मियाँ ने सुना कि नरेश मियाँ की बीबी को केन्सर है वो मायूस होकर बोले ये कौन साहब हैं? मैंने कहा ये देश के बहुत बड़े कवि (शायर) हैं। अरे इतने बड़े इंसान का इस तरह आपके घर तक आना? साहब बहुत बड़ी रूह के इंसान है। दूसरे दिन नरेश जी ने मंदिर में मृत्युंजय जाप करवाया और लगभग पाँच-छः घण्टे तक वकील मियाँ वहाँ बने रहे और उन्हें घर छोड़कर आये तो बोले साहब आज एक बड़े इंसान की खिदमत का मौका मिला।

नरेश मेहता अर्थात् एक ऐसा सर्जक, कृतिकार अथवा उत्तर आधुनिक मत में एक ऐसा लेखक जो 'पाठ' की संज्ञा को अपनी कृति में इस प्रकार सार्थक करता है कि कृति स्वयं एक ऐसी अंतरधारा बनकर प्रवाहित होने लगती है, जो समुद्र में अवगाहन के बावजूद अनेक मील तक प्रवाहमयी बनी रहती है। नरेश जी ने नदी के समुद्र में प्रवाह की यह बात अपने एक विमर्श के दौरान हिन्दी भवन के साहित्यिक कार्यक्रम में अध्यक्षता करते हुए कही थी। डॉ. प्रभाकर श्रोत्रिय ने उनसे कहा था, नरेश जी आपने नदी के समुद्र में गतिशील रहने की बात कही जो उसे सुनकर ऐसा लगता है जैसे साहित्य के महासिन्धु में कृति का प्रवाह हो। मैं, उस कार्यक्रम का संचालन कर रहा था। मैंने कहा नरेश जी काव्य-धारा हो या गद्य प्रवाह, उनकी कल्पना, उनकी तार्किक-त्वरा और उनका शिल्प ऐसा है जो उनके हर 'पाठ' को पाठक के लिए चुनौती बना देता है। पाठ की आंतरिक काया में प्रवेश किये बिना नरेश जी के कृत्ति कलश का जल छलकाया नहीं जा सकता। नरेश जी ने कार्यक्रम के उपरान्त मेरे संचालन की प्रशंसा करते हुए कहा था कि रमेश जी, आपने मार्क्सवाद पर जिस प्रकार के विचार रखे, वे आपके गूढ़ अध्ययन के प्रमाण हैं।

नरेश उस वैष्णवी के रचनाकार थे जो नृसिंह मेहता के गीत 'वैष्णव जन तो तेने कहिए' को चरितार्थ करते थे। डॉ. प्रभाकर श्रोत्रिय ने उन पर साहित्य अकादमी, नई दिल्ली के लिए विनिबंध अर्थात् मोनोग्राफ लिखा और अपने निबंध एवं आलोचना में उन्हें 'मधुकरी' का कपि भी कहा। सच पूछा जाए तो वे मधुकरी की वैष्णवता तो जीते थे। मगर उन्होंने अपने स्वाभिमान की जिद कायम रखी और अपने शब्द की शक्ति को कभी शिथिल या निर्बल नहीं होने दिया। यही तो उनका आत्मबल था, वाङ्मयी प्रज्ञा का प्रातिभ प्रकाश था और यही उनकी ऐसी ठसक थी, जैसी हम निराला, अज्ञेय और नागार्जुन में पाते हैं। उनका वैदिक एवं औपनिषदि साहित्य का गहन अध्ययन था, इसलिये वे बताते थे कि जब वे इलाहाबाद (प्रयागराज) में थे तो वहाँ के साहित्यकार और विशेष रूप से प्रसिद्ध कथाकार स्व. रवीन्द्र कालिया कहते थे, नरेश जी कविता नहीं करते, वे तो वेद लिखते

हैं और हम वेद समझते नहीं। नरेश जी उस विनोद वृत्ति या उपहास पर अपनी प्रतिक्रिया देते हुए कहते थे–चलो अच्छा हुआ आपने वेद ही कहा, कहीं किसी आधुनिक विचारधारा प्रतिबद्ध रचनाकार से तुलना कर देते तो मेरा और कविता का वजन ही गिर जाता। यह किस्सा स्वयं नरेश जी ने श्रोत्रिय जी के भोपाल निवास पर सुनाया था।

एक और अच्छा प्रसंग है। विख्यात कवि लीलाधर मंडलोई जब दूरदर्शन भोपाल में निदेशक थे तो नरेश के साक्षात्कार के लिए डॉ. प्रभाकर श्रोत्रिय और मुझे भी उन्होंने आमंत्रित किया था। लगभग एक घण्टे के साक्षात्कार में अनेक प्रश्न भारतीय संस्कृति, वाङ्मय, विचारधारा, नरेश के काव्य, कथा साहित्य और गद्य शिल्प को लेकर किए गए। मैंने कहा नरेश जी, आपने उत्तर कथा भाग एक में दुर्गा भाभी का जो चरित्र रचा है, जिस ठेठ मालवी संस्कृति के जीवंत पारिवारिक वातावरण के साथ, उसे पढ़कर मुझे लगता है कि कहीं आप रूसी कथाकार गोर्की के उपन्यास 'माँ' से तो प्रभावित नहीं थे। उनका जवाब था बिल्कुल नहीं। दोनों की धाराएँ एकदम अलग हैं, सांस्कृतिक धरातल अलग है, पारिवारिकता अलग है। मैंने गोर्की को पढ़ा है, लेकिन उपन्यास 'माँ' का न प्रभाव है, न अनुकरण, न स्मृति। इस प्रश्न से वे थोड़े रुष्ट भी हुए। मेरा दूसरा प्रश्न था एक रचना अपने समय में बहुत चर्चित होने के बावजूद, एक समय ऐसा आता है, जब वह स्मृति में एक एन्टीक की तरह हो जाती है, एक स्मृति बिम्ब बन कर रह जाती है। तो उन्होंने कहा हाँ एन्टीक हो जाना भी बुरा नहीं है क्योंकि वह एन्टीक होकर हमारी विरासत, धरोहर और स्मृति तो बन ही जाती है लेकिन श्रेष्ठ रचना कभी जड़वस्तु नहीं बन सकती वह सतत् चैतन्य रहती है। साक्षात्कार पूर्ण होने पर स्वयं नरेश जी और लीलाधर मंडलोई जी ने मेरे द्वारा किए गए प्रश्नों की सराहना की।

नरेश जी के दिवंगत होने के बाद में दो–तीन बार महिमा जी से मिलने गया। एक बार श्री कैलाशचन्द्र पन्त के साथ, एक बार सतीश मेहता सुप्रसिद्ध नाट्यकर्मी, निर्देशक अब स्वर्गीय। और एक बार कथाकार मेरे व नरेश जी के अत्यन्त आत्मीय प्रिय डॉ. प्रमोद त्रिवेदी के साथ। महिमा जी ने कहा–रमेश जी! नरेश जी अक्सर भोपाल के साहित्यकारों की चर्चा में आपका संदर्भ अवश्य देते थे और कहते थे भोपाल के थोड़े से पढ़ने–लिखने वाले लोगों में एक रमेश दवे भी हैं। भोपाल में रमेशचन्द्र शाह, अशोक वाजपेयी, प्रभाकर श्रोत्रिय और कुछ और (नाम याद नहीं आ रहे) लोगों में से रमेश दवे ने अपनी बौद्धिक जगह बनाई है, वह भी बिना किसी अहंकार या प्रशंसाग्रस्त व्यक्ति के।

अब एक प्रसंग है–कैलाशचन्द्र पंत की षष्टिपूर्ति पर उनके सार्वजनिक सम्मान का। उस सम्मान समारोह का संचालन मैंने किया था। वह इतना भव्य और आत्मीय था। कि ऐसा लगा हिन्दी भवन और कैलाश पंत एकाकार हो गए हैं। उस दिन मैंने अपनी सम्पूर्ण ऊर्जा के साथ पूरे कार्यक्रम का जो संचालन किया, उसे पुण्य–श्लोक स्व. स्वामी स्वरूपानंद जी ने न केवल सराहा बल्कि पंत जी से कहा कि संचालक ने तो आज एक प्रकार की अध्यात्म सभा का वातावरण रच दिया। कार्यक्रम के उपरांत जब मैं नीचे मंच से उतरा तो नरेश जी ने सर्वप्रथम बधाई दी एवं महिमा जी की तरफइशारा करते हुए बोले, सुनिए रमेश जी महिमा जी क्या कर रही हैं। वे बोली ऐसा संचालन तो मैंने पहली बार देखा। लगता है जैसे सरस्वती आपके कार्यक्रम में उतर आई हों। मैंने भाव–विभोर होकर नरेश जी और महिमा जी के चरण स्पर्श किए। वह क्षण मेरे लिये नरेश महिमा स्नेह की उपलब्धि का क्षण था।

पद्मश्री रमेशचन्द्र बताते हैं कि वे जब विंध्य के अत्यन्त एकान्त वन प्रान्तर क्षेत्र सीधी में कॉलेज के प्राध्यापक बने तो अक्सर अवकाश के दिनों में इलाहाबाद चले जाते थे। वहाँ वे बालकृष्णराव, विजय देव नारायण शाही, और नरेश मेहता से अवश्य मिलने जाते थे। नरेश जी का इतना स्नेह होता था कि वे मुझे बिना भोजन कराये जाने नहीं देते थे। नरेश जी की आत्मीयता और महिमा जी के आग्रह का मुझ पर गहन प्रभाव पड़ा। एक ऐसा परिवार जो स्वयं अभावग्रस्त था वह जिस अपनत्व से मेरे जैसे युवा को अपनत्व देता था यह नरेश के औदार्य का अनुपम उदाहरण था। नरेश जी से जब संवाद होता था तो वे कहते इलाहाबाद यहाँ के साहित्यकारों का काफी हाउस है। नरेश जी से जब संवाद होता था तो वे कहते इलाहाबाद का काफी हाउस उठाने–गिराने का अड्डा था। नरेश के घर प्रसिद्ध शाइर फिराक गोरखपुरी, उपेन्द्रनाथ अश्क

आदि आते रहते थे और घण्टों बैठे रहते थे। नरेश जी कहते थे कि उनकी लम्बी बैठक से मैं और महिमा ऊब जाते थे। मगर बड़ी मुश्किल से उनसे हम मुक्त हो पाते थे। चर्चा भी साहित्य पर कम और इलाहाबाद की साहित्यक पॉलिटिक्स पर ज्यादा होती थी।

नरेश जी के साथ जब-जब भी संवाद या सान्निध्य हुआ, ऐसा लगा, जैसे एक प्रबुद्ध काव्य-मूर्ति से साक्षात्कार हो रहा है। 'राइटर्स एट वर्क' पुस्तक के सम्पादक जार्ज प्लिम्पटन ने अपनी पुस्तक के पुरावाक में लिखा है कि क्या कोई भी साक्षात्कार किसी संक्षिप्त संवाद से ऊपर हो सकता है। यहाँ संवाद की वरीयता को लेकर मुझे लगा कि नरेश जी के साथ संवाद करना था। कथा से संवाद करना था, उनके नाट्य रूपों से संवाद करना था और अंततः ऐसे विचारों से भी संवाद था जो कभी राजनीतिक, कभी दार्शनिक, कभी साहित्यिक तो कभी अध्यात्म एवं वाङ्मयपरक हुआ करते थे। प्लिम्पटन एक बात और भी कहते हैं, जो साक्षात्कार को लेकर महत्त्वपूर्ण है। वे कहते हैं साक्षात्कार एक प्रकार से रचना और रचनाकार का सतत् पीछा करना है। नरेश जी से संवाद हो या साक्षात्कार उनसे चर्चा में तीन-चार साहित्यिक विधाएँ एक साथ प्रत्यक्ष होने लगती थीं। एक उनका जीवन जो विधा में जीवनी हो जाता है, दूसरा संवाद या साक्षात्कार जो रचनाकार से प्रत्यक्ष मुठभेड़ होता है, तीसरा उनका डायरी-लेखन जो उन्हें स्मृति बनाता है और चौथा उनका यात्रावृत्त जो देश-विदेश के अनुभवों से आनंद और रचनात्मकता के लिये ऊर्जा देता है। ये चारों विधाएँ परस्पर गुम्फित या ओवर लेप करती हैं, मगर इनमें एक कृतिकार अपने कृति कलेवर और काया कलेवर के साथ खड़ा हो जाता है। एक सृजनशील व्यक्ति की आभा के साथ।

नरेश जी भले ही प्रयागराज (इलाहाबाद) में जा बसे थे, लेकिन मालवा और विशेष रूप से उनकी मनीषा में मालवा के धार, आगर, नरसिंहगढ़, शाजापुर अक्सर गुंजित होते रहते थे। आगर मालवा के पृष्ठभूमि में उन्होंने यह पथ बंधु था उपन्यास लिखकर आगर के सौन्दर्य एवं वहाँ की अध्यात्म चेतना के स्पन्दन रचे, तो नरसिंहगढ़ में वहाँ की महारानी के समक्ष काव्य-पाठ करते हुए उनका नामांतरण महारानी ने पूर्णशंकर से श्री नरेश कर दिया था, धार में मामा की छत्रछाया में वहाँ की भोज-भूमि और सरस्वती स्मृति को उन्होंने जीवन में उतारा और शाजापुर तो जन्मभूमि था ही, मगर बचपन के कुछ अनुभवों के कारण वे शाजापुर लौटे तो नहीं फिर भी स्व. बाल कृष्ण शर्मा 'नवीन' की प्रारंभिक कर्म भूमि और संस्कार भूमि होने के कारण वे वहाँ आते-जाते रहे। वे बताते थे कि वहाँ कवि एवं वकील श्री कैलाशनारायण माथुर, श्री चन्द्रशेखर भट्ट एवं सिद्धनाथ मुनीम जी के परिवार में उनकी स्मृतियाँ थीं, वे उन स्मृतियों को कभी भूलने तो कभी पुनः जीवित करने जाते थे। इतना सब वे जब बातचीत में डॉ. प्रभाकर श्रोत्रिय, उनकी धर्मपत्नी श्रीमती ज्योतिबालमा जो शाजापुर की ही थीं बताते थे तो लगता था जैसे नरेश जी की वाणी में उनका जीवन बोल रहा है। विराग की भूमि में भी राग पैदाकर लेना उनकी विशेषता थी।

नरेश जी से ही पता चला था कि वे स्वतंत्रता सेनानी रहे और क्रांतिकारी पक्ष के साथ जुड़े भी थे। प्रारंभ में वे समाजवादी और मार्क्सवादी विचारधारा के कार्ड होल्डर सदस्य भी रहे और अनेक नौकरियाँ छोड़कर जब वे स्वतंत्र यानी फ्री लांस लेखक बने तो एक तरफ उनके वाम-पंथ था तो दूसरी ओर वाङ्मय था। वाम और वाङ्मय में से उन्होंने वाङ्मय की धारा में प्रवेश किया, वैष्णवी संवेदना में प्रवेश किया और अंततः वामपंथ का परित्याग कर दिया।

नरेश जी ने चर्चा के दौरान यह भी बताया था कि उनकी अंतिम इच्छा बनारस (वाराणसी) पर एक उपन्यास लिखने की थी क्योंकि बनारस उनकी उच्च शिक्षा और रचना की प्रेरक भूमि के रूप में उनके अन्तर में बनता और बसता रहता था। मालवा के प्रति उनका जो दाय था वह तो 'यह पथ बंधु था' और 'उत्तर कथा' लिखकर उन्होंने मालवा के प्रति कृतज्ञता प्रकट कर ही दी थी। यदि बनारस पर लिखते तो बनारस का रस-प्रपात गंगा-रस, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, जयशंकर प्रसाद, प्रेमचन्द्र धर शर्मा गुलेरी, रायकृष्णदास, रामचन्द्र शुक्ल, श्यामसुन्दर दास आदि अनेक विभूतियों की अस्मिता और आभा का कोई नया पाठ रचा जा सकता था और एक मुक्तिदायिनी काशी के मंत्र-तंत्र एवं अध्यात्म से प्रतिध्वनित हो सकता था। वे अक्सर विश्वनाथ ज्योतिर्लिंग की चर्चा

करते हुए कहते थे कि बनारस, गंगा, बाबा विश्वनाथ और वहाँ की सांस्कृतिक चेतना से ही तो बना है और इसीलिए बनारस जहाँ साहित्य चिंतन की तीर्थ स्थली है। वहीं भाषा, विज्ञान, ज्ञान, विराट सांस्कृतिक एवं अध्यात्म की मंत्र स्थली भी है, तंत्र स्थली भी है। कह नहीं सकता कि वे बनारस पर क्या और कैसा लिखते लेकिन इतना अवश्य है कि उनकी प्रज्ञा में उतरकर बनारस जो रूप ग्रहण करता वह साहित्य की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि होती।

नरेश जी एक प्रकार से आत्मजयी व्यक्ति थे। उनमें उनकी वैष्णवी आस्था और जीवन चर्चा फलवती हुई थी। वे भले ही अपने युवा एवं प्रौढ़काल में मार्क्सवाद से प्रभावित रहे, लेकिन उनकी भागवत प्रज्ञा में तो एक ऐसा वैष्णव था जो 'पीर पराई जाणे रे' के गाँधी भाव से आच्छन्न था। वे बताते थे कि जब वे 'सेवाग्राम' वर्धा गए और गाँधी कुटिया देखी तो एक दम चमत्कृत हो उठे। एक राष्ट्र पुरुष, एक महात्मा, एक महामानव का छप्पर-टप्पर, कच्चा फर्श और ग्राम्य सादगी का वह दुर्लभ वैभव देखकर नरेश जी कहते थे कि तीर्थ तो वह था, जहाँ गाँधी ने एक निर्धन किसान और चरखा-चालक की तरह जीवन जिया और सर्वाधिक पवित्र, धनवान विचारक के रूप में अपना बौद्धिक संतत्व जिया। नरेश जी भाव-विभोर होकर कहते थे एक ऐसा महापुरुष जन्मा इस देश में जिसकी पसलियों में भारतीय मनीषा की ऋचाएँ उत्कीर्ण थीं। गाँधी को नरेश जी भौतिक देह में देखकर भी, ऐसी निराकार देह में देखते थे, जिसके अन्दर आत्मा का अलौकिक प्रकाश विद्यमान था।

नरेश जी से भेंट तो सीमित हुई लेकिन उनके भीतरी रचनाकार और मनुष्य से असीमित सम्पर्क हुआ। अपने भोपाल में स्थायी निवास 'फाल्गुनी' में रहते हुए, वे जब हिन्दी भवन प्रभाकर श्रोत्रिय के घर या कई साहित्यिक कार्यक्रमों में भारत भवन में मिलते तो ऐसा लगता था जैसे हम अपने समय के वास्तविक 'समय देवता' से मिल रहे हैं। 'समय देवता' का जो रूपक उन्होंने रचा था, उसे वे स्वयं के व्यक्तित्व से सिद्ध करते थे। अज्ञेय की समरस परम्परा के दूसरे सप्तक में जब उन्हें पढ़ा तो लगा कि अज्ञेय ने अपनी भूमिका में स्वयं नरेश जी को उद्धृत करते हुए लिखा था-'नरेश अभी हैं और अभी आगे रहने को है।'

एक दिन में उज्जैन में 'समावर्तन' हिन्दी मासिक पत्रिका के संस्थापक डॉ. प्रभात कुमार भट्टाचार्य जी के घर बैठा हुआ था। नरेश जी जब प्रेमचन्द पीठ पर थे तो प्राय: प्रभात जी के घर गया करते थे। वहाँ बैठे-बैठे यह सूचना मिली कि नरेश जी को 'ज्ञानपीठ' सम्मान से अलंकृत किया जाएगा। रेडियो, दूरदर्शन पर भी समाचार प्रसारित हुआ। नरेश जी विश्वास ही नहीं कर पा रहे थे। उन्होंने कहा कि आप इलाहाबाद फोन लगाकर लोक भारती प्रकाशन के नंदा जी से इस समाचार की पुष्टि करवाओ। उन्हें फोन लगाकर पूछा तो पुष्टि हो गई। प्रभात जी ने बताया कि यह समाचार उज्जैन, इन्दौर में जैसे ही फैला उज्जैन और इन्दौर के साहित्यकार गर्वभरी मुद्रा में हार-फूल लेकर दौड़ पड़े और प्रभात जी के घर पर उन्हें मालवा की परम्परा के भावुक जोश के साथ हार-फूल से लाद दिया। नरेश जी भावुक हो गये और प्रभात जी ने जब मिठाई मंगवा कर उन्हें एवं अन्य उपस्थित आत्मीयों को खिलाई तो नरेश जी ने कहा यह नरेश मेहता का सम्मान ही नहीं, बल्कि हिन्दी भाषा, उसकी क्षमता और सामर्थ्य का सम्मान है।

मेरा जितना भी उनके साथ सम्पर्क रहा, उसका स्मरण कर जो मैंने लिखा है, वह भाग संस्मरण ही नहीं, बल्कि एक काव्य-पुरुष, एक वैष्णव व्यक्तित्व, एक गद्य-गाथाकार और भद्र संस्कृति साधक के प्रति मेरी विनम्र आस्था की अभिव्यक्ति है। मैंने जो स्वयं अनुभव किया, जो मित्रों से सुना और जो स्वयं नरेश जी से संवाद किया उसी की यह प्रतिश्रुति है। उन्हें पढ़कर उनके काव्य-नाटक संशय की एक रात में नरेश जी का व्यक्तित्व ऐसा नजर आया जिसके पास-

संकल्पित प्रज्ञा है
वर्चस्वी निष्ठा है
उत्सर्जित इच्छा है ।।

एस. एच. 8/19 सहयाद्रि परिसर,
भदभदा रोड, भोपाल-462003 (म.प्र.)
मो.- 07554244064

श्री नरेश मेहता : मौन मधु हो जाए

– श्यामसुंदर दुबे

जन्म – 12 दिसम्बर, 1944।
रचनाएँ – विभिन्न विधाओं में तीस पुस्तकें प्रकाशित।
सम्मान – म.प्र. साहित्य अकादमी के प्रादेशिक एवं अखिल भारतीय सम्मान सहित अनेक सम्मानों से अलंकृत।

कबिल से मेरी दोस्ती धुर बचपन से ही हो गयी थी। पिता कविता प्रेमी थे। वे तुलसी, सूरदास और कबीर की कविता से मुझे लालते-पालते रहे। जन्मघुट्टी की तरह माँ के लोक गीतों ने मुझे परिपुष्ट किया। कविता की लयकारी मुझे अपने भीतर उन्मथित करने लगी थी। वे कवि मेरी पसंद के दायरे में आने लगे, जो देशज लयबद्धता में अपने को स्पष्ट कर रहे थे। हायर सेकेन्डरी तक रामधारी सिंह दिनकर की कविता लिख दे भैया एक कलम खत मो बालम के लोग। चारों कोने छेम कुशल माँगे हाँ भोर वियोग। जैसी कवितायें मुझे उत्प्रेषित कर रही थीं। मेरे ग्राम स्थान हटा में उस समय लक्ष्मी प्रसाद मिस्त्री 'रमा' द्विवेदी युगीन काव्य परिदृश्य में अपनी महत्त्वपूर्ण उपस्थिति दर्ज करा चुके थे। उनके यहाँ तमाम पत्र-पत्रिकाएँ आती थीं। वे पुस्तक प्रेमी थे और डाक के माध्यम से नयी-से नयी पुस्तकें बुलाते रहते थे। उनके यहाँ मेरी आवाजाही थी। एक पत्रिका में तब मैंने एक कविता पढ़ी 'पीले फूल कनेर के' कवि के रूप में इस कविता के साथ जो नाम छपा था, वह श्री नरेश मेहता था। यह मेरी पसंद की कविता बन गयी। इसके टटके बिम्ब धर्मी प्रयोगों ने मुझे मेरी कच्ची उम्र में प्रभावित कर दिया था। श्री नरेश मेहता के कवि से मेरी यह पहली मुलाकात थी।

बाद में उनकी 'समय देवता' में उनके बदलते तेवर ने मुझे आकृष्ट किया और जब मैंने उनका उपन्यास 'यह पथ बंधु था' पढ़ा तो गद्य का एक नया स्वाद मिला। उपन्यास में निहित भारत के लोक की झलक ने मुझे प्रभावित किया। उनके मन में जो वैष्णव भाव उदित हुआ। उसकी अनुगूँज जब उनको कविता में प्रकट होने लगी थी। तब तक मैं श्री नरेश मेहता की भाषा और उनके भाव-बोध के परिरंभण में आ गया था और मैं उनके व्यक्तित्व के अनदेखे पक्ष को उनकी रचनात्मकता के माध्यम से देखने लगा था। उनको मैंने पहली बार 'आनंद वृदावन' आश्रम में देखा! वे अज्ञेय जी द्वारा आयोजित 'वत्सल निधि शिविर' में आये हुए थे। मैं भी उसमें एक प्रतिभागी था। दो-तीन क्षण तक मैं उनको उनके सृजित साहित्य से उभरी छवि को अपने मानस-पटल पर अनुभव करता रहा फिर उन्हें जैसा साक्षात् कर पा रहा था। उस प्रत्यक्ष को भी अप्रत्यक्षत: उनके व्यक्तित्व-बिम्ब से एकाकार कर रहा था। वे जितने मुखर अपनी रचनात्मक में हैं- उतने ही मौन वे मुझे उस प्रथम दर्शन में दिखे।

इस शिविर के उद्घाटन के बाद युवा कवि-गोष्ठी का आयोजन था। हम लोग कवि रूप में समवेत थे। श्री नरेश मेहता, रमेशचन्द्र शाह जैसे वरिष्ठजन गोष्ठी अध्यक्ष और विशिष्ट थे। युवा कवि-गोष्ठी के समापन पर कविताओं की समीक्षा की जा रही थी। श्री नरेश मेहता को मैं पहली बार सुनकर आह्लादित हो रहा था। उनकी खरखराती आवाज पंडाल में गूँज रही थी। वे कविता के निर्भ्रांत पारखी थे। वे कह रहे थे। भाषा की जड़ों तक पहुँचने का जरिया कविता होती है। मनुष्य की जातीय स्मृतियों का

संसार कविता में खुलता है। वे अपनी उदात्त भाषा शैली में ही अपने उदात्त चिंतन को व्यक्त कर रहे थे। युवा कवियों की कवितायें उन्हें प्रभावित करने वाली थीं। विशेषरूप से वे उन कवियों की प्रशंसा कर रहे थे। जिनमें देशज संस्कारों का पुट था। उन्हें सुन रहे थे। सच्चिदांनद हीरानंद अज्ञेय, शिवमंगल सिंह सुमन, गिरिराज किशोर, गोविंद मिश्र, प्रभृति श्रोता श्री नरेश मेहता को सुन रहे थे। वे हम लोगों का उत्साह वर्धन कर रहे थे। सुनी हुई एक-एक कविता का बारीक विश्लेषण भी कर रहे थे। उनके समीक्षक का जहाँ यह भाव वात्सल्य से परिपूरित था तो वहीं वे कवि के आत्म-सम्मोहन की ओर भी इशारा कर रहे थे। वात्सल्य भी एक हलके-हलके चुभने वाले शल्य में बदल रहा था। वे संतुलन के पक्षधर थे। उनकी कविता इसी संतुलन की तलाश का आरोहण भी है। वे अज्ञेय द्वारा संपादित सप्तक श्रृंखला के कवि थे-किंतु मुझे यह देखने में आ रहा था कि वे अज्ञेय के साथ जरूर रहे हों और अज्ञेय के मन में उनके प्रति प्रीतिकर भाव भी रहा हो। और उस समय वृंदावन में यह सहज भाव अज्ञेय को प्रेरित कर रहा हो किंतु श्री नरेश मेहता उनसे अभिभूत नहीं थे। मैं समझ नहीं पा रहा था कि एक अंदरूनी विपरीत खिंचाव-सा उनके भीतर है या इन दोनों के स्वभाव का ये गुण है। दोनों अपने आभिजात्य में मौन की भाषा को समेटने वाले-दोनों एकांतिक से कुछ समय बाद यह मैं समझ सका कि अज्ञेय ने उस समय तक अपने एकांत को तोड़ने का मुखरित मोह जागृत कर लिया था। वे मुस्कुरा रहे थे। हम नये लोगों से हिल-मिल रहे थे। बरगी नगर (जबलपुर) के वत्सल शिविर की विदाई बेला में तो उनकी आँखों में आँसू छलछला आये थे।

श्री नरेश जी इतने मुखरित अब भी नहीं हो पाये थे। वे कुछ समय के लिये ही बोलते-बतियाते थे। वे अपने भीतर उन्मन से ही अधिक रहते थे। उनकी हँसी भी सीमित थी। वे सधे व्यक्तित्व के उदात्त चिंतक थे। मैंने उन्हें अपने समवयस्कों से अधिक घुलते-मिलते नहीं देखा। उनको श्वास जनित तकलीफ थी, और यह दिसंबर का महिना था इसलिए वे अधिक बोलने से परहेज करते थे। हमने यह परिलक्षित किया था कि वे जब वाक्स्फीत के करीब पहुँचते थे तो हाँफने लगते थे। उनके मौन का एक कारण मुझे यह भी लग रहा था कि उनकी कविता में जे ब्रह्माण्डीय भाव-चिंतन है वह उनको आत्मस्थ किये हुए था। उनकी भीतरी दुनिया में उषा, दिवि, द्यावा आकाश, समुद्र लोक के धरातल पर उतर कर लोक-बिम्बों में परिणत हो रहे थे। अपने प्रारंभिक चिंतन के सीमित सामाजिक दायरे से मुक्त होकर वे विराट प्रकृति के आँगन में विचरण करने की आंतरिक यायावरी में डूबे हुए थे। उनका कवि मन एक अज्ञात बेचैनी से पीड़ित लग रहा था। मुझे नहीं लग रहा था कि वे अपनी कविताएँ सुनाने को समुत्सुक रहते हों। जबकि वे दूसरे की कविताएँ प्रसन्न होकर सुनते थे। एक समय शाम के धुँधलके में शिविर में अनौपचारिक वार्तालाप चल रहा था। तभी निराला की 'राम की शक्ति पूजा' कविता को सुनने की उन्होंने सुमन जी की ओर मुखातिब होते हुए इच्छा प्रकट की! वे जानते थे कि सुमन जी को समूची कविता कंठस्थ है और वे उसका पाठ एकदम निराला की शैली में करते हैं। सुमन जी यह आग्रह टाल नहीं पाये और उन्होंने संपूर्ण कविता को सुनाया। उनके हाव-भाव और उनकी वाणी के उतार-चढ़ाव से श्री नरेश जी जैसे आत्मतुष्ट हो रहे थे। उनका केवल उदात्त व्यक्तित्व ही नहीं था बल्कि वे उदात्त के रस-ग्राही थे।

यहाँ हम नवयुवकों का जमावड़ा था, तो वयप्राप्त महानुभावों की संख्या भी कम नहीं थी। इन वृद्धजनों में तीन चिरयुवा भी थे। इनमें अज्ञेय, शिवमंगल सिंह सुमन और श्री नरेश मेहता को मैं शामिल कर रहा हूँ। तीनों की नफासत प्रियता के हम लोग कायल थे। इनके परिधान एकदम झक्कास रहते थे। श्री नरेश मेहता जो धोती पहनते थे यह शुभ्रता की पर्याय होती थी। चमकदार चौड़ी पाड़ वाली इस धोती को वे लगभग बंगाल की भद्रजनोचित शैली में पहनते थे। उनकी चुन्नट फैली-फैली रहती थी। कुर्ता की बाँहे कलाई पर बटनदार होती थीं। कुर्ता एकदम

कलफ चढ़ा होता था। वे कभी-कभी बंद गले वाला सूट भी पहन लेते थे। वे कोई भी परिधान धारण करें-सौम्य और प्रियदर्शन थे। अज्ञेय और सुमन कुर्ता और पायजामाधारी थे! अज्ञेय के परिधान का वैविध्य उनकी सुरुचि का पर्याय था। यो जो मैं परिधानों की चर्चा कर रहा हूँ, वह इनके व्यक्तित्व और कृतित्व की झलक को पकड़ने की चेष्टा है। अज्ञेय का व्यक्तित्व विश्वनागरिक की अनुहार था। सुमन की सुघड़ता में लोक और मध्यकाल का बोध समाहित था-जबकि श्री नरेश मेहता में सनातन भारतीयता की वैदिक परंपरा झलमला रही थी। अज्ञेय मजमेबाज नहीं थे, फिर भी उनके पास साहित्य के जिज्ञासु पहुँचते रहते और उनकी मधुर मुस्कान का एक टुकड़ा लेकर जल्दी ही लौट आते थे। सुमन का व्यक्तित्व फड़कता-सा रहता था। वे अपने ईषत् मस्तक पर लटके शुभ्र केशों को झटकते रहते थे-उनके साथ मज़मा जमा रहता था। वे उस समय राजस्थानी कवियों के दोहे रस लेकर सुनाते रहते थे। जब वे अभिव्यक्त होते थे, तब उनका संपूर्ण शरीर हलचली हो उठता था। उनका बाहुप्रसार आकाश को समेटने आतुर हो उठता था। श्री नरेश मेहता इस तिकड़ी में मौन-पर्यायी थे। निराला ने लिखा है। 'मौन मधु हो जाये, भाषा मूकता की आड़ में।' वे मधु मिश्रित से अपने आंतरिक कल्पना लोक में खिलते फूलों में ऋचाओं की उजास अनुभव करते किरणों की धेनुओं को हाँकते सूरज चरवाहे की छवि को आँकते अपनी कविता की परीभाषा में डूबते से अपनी मंद स्मिति बिखेरते सनातन ऋषि की मुद्रा में स्थवर जैसे प्रतीत होते थे। अनेक उतार-चढ़ावों वाली जिंदगी जीने वाले भी नरेश जी जैसे अहोरात्रि एकाकी कवि पुरुष लगते थे-'न काहू सों दोस्ती न काहू से बैर।' के वे जागृत व्यक्तित्व थे।

मैंने उन्हें लंबा व्याख्यान देते एक बार सुना था-'डॉ. प्रभाकर श्रोत्रिय उस समय साहित्य परिषद के सचिव थे। ये बीसवीं शताब्दी का अवसान काल था। डॉ. प्रभाकर ने बीती शताब्दी के मूल्यांकन के लिये एक संगोष्ठी मंदसौर में रखी थी। हिंदी साहित्य की समस्त विधाओं के मूल्यांकन के साथ अन्य सामाजिक सांस्कृतिक गतिविधियों पर भी चर्चा की गयी थी। इसके उद्घाटन सत्र पर विधा निरपेक्ष वक्तव्य था-इसी तरह समापन पर भी वक्तव्य निर्धारित था। इन प्रमुख वक्तव्यों के लिये विशिष्ट व्यक्तित्वों को ही आमंत्रित किया गया था। इस सत्र में श्री नरेश मेहता ने एक महत्त्वपूर्ण व्याख्यान दिया था। सभी आमंत्रित प्रतिनिधिगण संस्कृति कर्मी और साहित्यकार श्री नरेश मेहता को सुनने आतुर थे। इस आतुरता का एक कारण यह था कि एकत्रित जनों में बहुत कम लोगों ने नरेश जी को बोलते सुना था। पढ़ा जरूर था। नरेश जी को पढ़ने पर उनको सुनने का मन अपने आप बन जाता है। उनकी भाषा उनकी कल्पना दृष्टि और उनका चिंतन जैसे जिस तरह उनके लेखन में उदित होते रहने वाले तत्व हैं-वे ऐन्द्रजालिक हैं-प्राक् प्रतीकों से लेकर प्रकृति के अद्भुत मानवीकरण का जो सस्वर जिस भाषिक सौंदर्य में जाहिर होता है वह और ही उदग्र करने वाला है। ऐसे कवि और लेखक को साक्षात् वैखरी के माध्यम से सुनने की आकांक्षा स्वाभाविक ही थी। अश्रुतपूर्व सुनने की ललक से लबरेज थे तो श्रुतपूर्व भी इसलिए सुनने के लिये आतुर थे कि विषय एकदम नया था और 'समय देवता' के रचनाकार का यह काल-चिंतन महत्त्वपूर्ण था।

श्री नरेश मेहता अपनी सजधज में ही आये। लोगों से बोलते-बतियाते, उत्सुक लोगों से दुआ-सलाम करते। मेरे पास से गुजरे तो मुस्कुराये और बोले-'अच्छा आप भी!' मैंने कहा 'लंबे समय बाद आपके दर्शन कर पा रहा हूँ।' वे ठिठके बोले गाते-बजाते आप से मिल लेता हूँ। और आपको याद कर लेता हूँ। 'मैंने निवेदन किया।' मुझे याद नहीं पड़ता कि 'वत्सल शिविर' के बाद कभी आपको मंच से सुनने का सौभाग्य मुझे मिला हो! वे जिस उतावली से मंच की ओर जा रहे थे-उसमें विक्षेप हुआ। वे ठहर गये। बोले-'आपको मैं पत्र-पत्रिकाओं में पढ़ लेता हूँ-यह क्या मिलना नहीं है। दरअसल हमारा मेल-मिलाप तो यही है। कोई पुस्तक आई।' मैंने कहा-आई

है। आपको भेज नहीं पाया? 'लौटते ही भेजना' वे मेरा इतना नोटिस ले रहे थे। मेरा अहोभाग्य था।

मैंने इतनी इम्मीद नहीं की थी कि वे मुझे पहचान पायेंगे। बारह-पंद्रह वर्ष बाद मिल रहा था। फिर भी वे अपनी स्मृति में मुझे बसाये थे। मेरे लिये यह गौरव का क्षण था। और मुझे वे कुछ और तरह से अपने व्यक्तित्व का परिचय दे गये। जिन्हें मैं मौन का देवता समझता था। वे अपनी उदात्त मुखरता के साथ मुझ से मुखातिब थे। वे उस पीढ़ी के थे जो संबंधों के परिपाक में विश्वास रखती थी और समय आने पर रसोद्रेकित हो उठती थी। यह उनकी उदारता का विस्तार था।

उन्होंने जो अपना वक्तव्य उस दिन दिया, वह उनके व्यापक चिन्तन और सार संग्रही मन की चिन्ताओं का समाहार था। उन्होंने विज्ञान के अभूतपूर्व योगदान की चर्चा की। वे एड्स जैसी बीमारी पर उस समय बोल रहे थे। युद्ध और शांति पर उन्होंने विचार रखे। वे गाँधी और मार्क्स के अनुदान पर अपने विचारों को प्रकट कर रहे थे। उनके व्याख्यान के क्षितिज व्यापक थे। वे उस समय संवेदित मन वाले पत्रकार की भूमिका में थे। स्पष्ट था कि वे आत्मलीन व्यक्तित्व नहीं हैं, बल्कि दुनिया-जहान की खबर रखने वाले शब्द-प्रहरी भी हैं। जो उन्हें पहली बार सुन रहे थे, वे अपने ज्ञान को समृद्ध कर रहे थे और जो उन्हें पहली बार सुन रहे थे। वे अपने ज्ञान को समृद्ध कर रहे थे और जो उन्हें पूर्व में सुनने के बाद सुन रहे थे-वे जीवन यथार्थ को उनकी रचनात्मकता के झरोखे से पहचान रहे थे।

एक मजेदार घटना का लोभ-संवरण मैं नहीं कर पा रहा हूँ। स्वामी अखंडानंद के वृन्दावन आश्रम में बहुत से साधु-संत थे। 'वत्सल निधि शिविर' के माध्यम से साधु-संतों में यह बात फैल गयी थी कि वहाँ देश के बड़े-बड़े कवि एकत्रित हैं। एक साधु के पैतृक घर पर किसी परिवारी जन की लड़की का विवाह था। उस साधु की बात अपने गाँव के परिजनों से होती रहती थी। उसी के माध्यम से जब उन तक यह सूचना पहुँची कि आश्रम में ऊँचे-ऊँचे कवियों का जमावड़ा है, तब उन्हें सूझा कि बेटी के विवाह का अभिनंदन पत्र इन्हीं कवियों से बनवाया जाये। और उन्होंने वर-वधु के उभय पक्षों की नामावली साधु के पास अभिनंदन रचने के अभिप्राय से भेज दी। साधु से नामावली ली और लोगों से बड़े कवि की जानकारी लेकर वे अज्ञेय के पास पहुँचे और उन्हें अपना मंतव्य बताया। अज्ञेन उस साधु को देखते और नामावली को देखते। कुछ क्षण गुजरे और अज्ञेय ने साधु से मुस्कुराते हुऐ कहा, 'मैं नहीं कर पाऊँगा। मैं इसे समझता भी नहीं हूँ। उन्होंने ही साधु को सुमन जी के पास भेज दिया, और सुमन ने फिर उस साधु को श्री नरेश मेहता के करीब कर दिया। श्री नरेश मेहता ने परिस्थिति की गंभीरता को समझा। वे नहीं चाहते थे। साधु निराश होकर लौटे। उन्होंने उससे नामावली ले ली। सुबह आने की बात भी उनसे कर ली। साधु तो चले गये, किंतु नरेश जी की चिंता बढ़ गई। उन्होंने विद्यानिवास जी से बात की। विद्यानिवास जी ने कहा 'इस काम को श्यामसुंदर के हवाले कर दो।' श्री नरेश जी ने मुझे याद किया और कहा कि कवियों की लज्जा रखना अब आपके हाथ है। मैं कस्बा का कवि ठहरा। यह विद्या मुझे आती थी। मैंने अभिनंदन पत्र तैयार कर दिया। सुबह हुई तो साधु-श्री नरेश मेहता जी के पास पहुँचा। उन्होंने मेरे पास भेज दिया। अभिनंदन पत्र पाकर साधु प्रसन्न थे और कह रहे थे, 'मेरे लिये तो आप ही महाकवि हैं।' इस आपद्धर्म के निर्वाह पर श्री नरेश जी परम प्रसन्न थे। उन्होंने मेरे कंधे पर हाथ रखा और बोले, 'विजयी भव: !' बहुत संभव है-उनकी स्मृति में मेरा होना इसी घटना का परिणाम हो। उनकी मानवीयता को मेरे प्रणाम।

श्री चंडी जी वार्ड
हटा, दमोह-470775 (म.प्र.)
मो. 9977421629

चाँदनी

-नरेश मेहता

महीनों बाद चाँदनी का पत्र आया कलकत्ते से, खूब ही वर्षा है यहाँ और वर्षाश्री भी। पूजा तक रुकेगी। कल पड़ोस में कोई संगीत-गोष्ठी थी, किसी प्रत्यूष गोस्वामी ने बड़ी अच्छी सितार बजाई थी।

बस, यह पत्र है। तब विज्ञप्तियाँ किसे कहा जाएगा? और मजा यह कि यह पत्र भी पूरे दो माह बाद कलकत्ते से नहीं, दार्जिलिंग जाने की सूचना के साथ सिलिगुड़ी से डाला गया था। चाँदनी कहा करती है कि मैं उसके पत्रों के उत्तर नहीं देता, लेकिन इस पत्र का ही उत्तर कहाँ दूँ? अपने रुकने की जगह या फिर होटल का ही पता दिया होता। बिलकुल गर्मियों के धूल-भरे आकाश-सी है।

जन्म - 15 फरवरी 1922।
प्रयाण - 22 नवंबर 2000।

चाँदनी जब यहाँ से गई थी तो उसमें सायास कुछ नहीं था। एक दिन पहले ही तो हम लोग लॉन में बैठे हुए चाय पी रहे थे और मौसम को कोसते रहे थे। दूसरे दिन शाम की डाक से एक पोस्टकार्ड मिला कि वह कलकत्ते जा रही है और दो सप्ताह बाद लौट आएगी। मैंने भी सोचा कि इस बार पहाड़ नहीं जा सकी थी, घबरा उठी होगी। चलो ठीक है, दो-चार दिनों के लिए कहीं हो आना अच्छा होता है। लेकिन मैं इस स्वल्प-सी सूचना में क्या समझता? कहीं मैं आहत अनुभव कर रहा था कि पूछ ही लेती, खैर।

दिन बीते, सप्ताह गुजरे, महीने भी आए-गए हो गए और चाँदनी का कहीं पता नहीं था। मुझे विश्वास था कि वह कलकत्ते में ही होगी और जेटियों पर घूमते हुए विलियम फोर्ट के मैदान में दूब पर लेटे हुए, विक्टोरिया मेमोरियल के पोखर में मछलियों को चारा चुगाते हुए अनुखन प्रतीक्षारत रही होगी कि मैं आऊँगा। लेकिन कैसे? 'तुम तो अपने किसी संबंधी के यहाँ गई हो, भला मैं वहाँ कैसे आ सकता हूँ?' अजीब अधूरे आकाश-सा उसका आचार होता है। लोग एब्सट्रेक्ट चित्र बनाते हैं, वह एब्सट्रेक्ट व्यवहार करती है, जबकि मुझे काँगड़ा-शैली भी समझ में नहीं आती। भला शैलियों के इतने बड़े व्यवधान पर खड़े हम लोगों का क्या होगा? कुछ भी हो, उसे उत्तर तो देना है। एकमात्र उत्तर, जो हो सकता है, यह कि मैं भी दार्जिलिंग आ रहा हूँ। इस उत्तर को वहाँ के पोस्टमास्टर के मार्फत भेज रवाना हो जाऊँगा।

अपनी इस लंबी यात्रा में पत्र-पत्रिकाओं के अलावा चाँदनी की स्मृतियाँ हैं, खिड़की से विहार के सपाट मैदान, दुखती रेखाओं-सी नदियाँ-सब बड़ा अच्छा लग

रहा है। स्मृतियों में कोई दुखद नहीं है। अधिकांश या तो सुखद हैं अथवा एब्सट्रेक्ट।

वह अपनी बात, आचार, व्यवहार सब में संकेत करती है। याद नहीं पड़ता कि कभी कोई वाक्य भी किसी से पूरा कहा होगा। सादी-सी बात होगी-'चलिए, थोड़ा घूम आएँ' इतना भी पूरा नहीं कह सकती। वह तो कहेगी-'चलिए' और सड़क पर जाती किसी टैक्सी को रोक बैठ जाएगी तथा हँसती आँखों से आपकी ओर देखने लगेगी।

'फूलों से मोनोटनी टूटती है न?'

और आप देखेंगे कि यह बात का टुकड़ा फेंसिंग से दिखे किसी केना के फूल को देखकर कहा गया होगा। उसके बाद-देर-देर तक कोई बात नहीं होगी। हाँ, चर्चा हो सकती है कि वर्जीनिया वुल्फ की डायरी में सहजता कितनी है अथवा वह मात्र प्रयोजन लगती है। और आप देखेंगे कि आपके चारों ओर ऐसे या इस जैसे अनेक टुकड़े फैले हुए हैं। ऐसा वह इसलिए करती है कि आपको भ्रम हो जाए कि नहीं, वह कितना तो बात करती है! लेकिन कहीं इन टुकड़ों को सुनते हुए पा सकने के खयाल से उसकी ओर देखना शुरू किया तो वह घिरी मछली की तरह पहले तो इधर-उधर करेगी और हताश भाव से अपने गहरे जल में नीचे उतर जाएगी, जैसे कि सब बेकार है।

प्राय: आपने देखा होगा कि लोग आपके बारे में बातें करते हुए आपको नहीं बोलने देते, लेकिन चाँदनी हँसते हुए आपको सुनती रहेगी-ऐसे जैसे कि आप किसी बिल्लौरी शीशे के सामने खड़े हैं। वह आपको दुहरा रहा है। इसीलिए चाँदनी लोगों के सामने या तो उपस्थित होती है अथवा प्रस्तुत होती है, मिलती नहीं है। जरा-सा उसे घेर लीजिए तो वह अजीब बच्चों की भाँति शैतानी हँसी ओंठों में अछूते दाबे प्रस्तुत हो जाएगी, विवश-सी। लेकिन मौका मिलते ही मछली की भाँति हाथ से फिसलकर छूट जाएगी और फिर तो गर्मियों के सूर्यास्त की तरह ऐसी दूर-दूर हो जाएगी कि समेटे नहीं सिमटाएगी। उसे हठात् पा सकना कठिन है, कारण कि उसने अपने को साधा है। रियाज किए हुए राग की तरह उसकी उपस्थिति अनुभव होती है। तभी तो बिलकुल विमन होने पर भी अपनी सधी अँगुलियों से चाय में चीनी या दूध की मात्रा में कोई अंतर नहीं होगा, उस पहले दिन से, जिस दिन उसने आपको जाना था।

सच ही वह अपने को प्रस्तुत करती है वरना उसके मुख पर विवर्णता, निस्तेज, आक्रोश सभी तो बड़ी जल्दी झलक उठता है। पतझर की झरती पत्तियाँ देखते हुए जाने क्या-क्या होने लगता है और वह खिड़की बंद कर लेती है। टैक्सी, व्यक्ति, होटल की सीट, क्रॉकरी पर बने बेलबूटे सभी के बारे में बड़ी जल्दी प्रतिक्रिया से भर उठती है, लेकिन दो जलों को भी मिलने में देर लगती होगी पर कब वह क्रोध से लाल होकर ओंठों में मुस्कुरा दी है, कोई नहीं जान पाएगा। उसने अपने को इतना सायास साधा है कि अब सब अनायास लगता है।

यही लीजिए कि वह ऐसे पत्रों द्वारा सामने वाले से क्या अपेक्षा करती है? पूछो, तो कह देगी कि नहीं, अपेक्षा करना तो बड़ी व्यक्तिगत बात है। एक दिन मैंने उसे अपने टोस्ट पर मक्खन लगा देने के लिए कहा तो वह जाने कैसी-कैसी हो आई। तत्काल आँखें तक छलछला आईं और वैसे ही बरजती देखती रही। बड़ा संकोच बना रहा उस दिन। जबकि कुछ दिनों बाद एक नर्सरी से लौटते हुए कह गई कि मैंने उसे कभी वेणी तक खरीदकर नहीं दी। उसके इस कह दिए जाने के बाद तो मैं कभी भी वेणी नहीं खरीद पाऊँगा, क्योंकि कह दिए जाने पर तो न व्यक्ति, न फूल, किसी में भी गंध नहीं रह जाती है। इसीलिए चाँदनी न बोलती है, न कहती है बल्कि केवल यहाँ-वहाँ या तो एब्सट्रेक्ट टुकड़े होंगे या फिर बड़ी-बड़ी आँखों वाला

हँसता बरजना होगा। स्कूली लड़कियों की तरह।

सिलिगुड़ी से ट्रेन बदली। तेज पहाड़ी नदियाँ, प्रलंबित चीड़वन, अजीब चित्रात्मक एकांत, प्रतीक्षित घाटियाँ–सब अजीब तरह से मोहते हैं। दोनों ओर चायबागानों के हरे विस्तार, जिनमें फूलहीन पलाश–खूब सारे पलाश, वसंत में कैसे सुलग उठते होंगे! मुझे याद हो आया, दो साल हुए जब हम ताजे चीड़–फूलों की तलाश में सातताल गए थे। मंद दोपहर छनकर बूटीदार यहाँ–वहाँ एकांत बिछली थी। सातताल वाला ताल दर्पण बना हुआ था। चीड़–फूल खोजते हुए पत्तों को चरमराते तथा अपनी ही आहट सुनते चले गए थे। हमारी वह खोज कितनी सफल रही थी। ढेर सारे चीड़–फूल रँगकर लोगों को बाँटे गए। कुछ ड्राइंगरूम में चाँदनी ने भी सजाए थे।

सहसा जाने कहाँ से सहमा–सहमा–सा दार्जिलिंग का स्टेशन सामने आ खड़ा हुआ। क्लॉकरूम में सामान रख चाँदनी की तलाश में निकल पड़ा। किसी अच्छे होटल में ही हो सकती थी। तिब्बती कुलियों से पीछा छुड़ाता सारे होटलों में भटकता रहा और उसका हुलिया बताता पूछता रहा। अनेक बार लोगों ने सशंक होकर देखा कि मैं कौन हूँ? और किस महिला को खोजता फिर रहा हूँ? इस सबके बाद मैं आश्वस्त हो गया कि वह यहाँ आई तो किसी होटल में नहीं रुकी। क्योंकि किसी होटल में यदि वह टिक जाए तो लोग उसे न जानें, ऐसा कभी नहीं हो सकता। पैसों के प्रति वह जितनी निर्मम है, यही तो होटल वाले याद रखते हैं।

रात एक होटल में बिता दूसरे दिन अनेक सार्वजनिक स्थानों पर खोजता रहा, लेकिन व्यर्थ। यहाँ उसका कोई परिचित भी नहीं था जिसके साथ वह हो सकती थी। मैं झल्लाकर लौटने के लिए बाध्य था। एक बार सोचा कि चलूँ, पोस्टऑफिस में तलाश करूँ, संभव है, कुछ पता चल जाए। लेकिन उन लोगों ने भी विवशता प्रकट की। केवल वे यही कह सके कि नोटिस–बोर्ड देख लीजिए कि इस नाम के व्यक्ति का कोई पत्र तो नहीं है?

और मैंने अपना पत्र नोटिस–बोर्ड की जालियों के पीछे, मैले सफेद फीतों में एक जगह बड़े उदास भाव से लटके पाया, जिसमें कि मैंने अपने दार्जिलिंग आने की बात लिखी थी तथा यह भी कि वह मेरी प्रतीक्षा करे।

– नरेश मेहता

हमें जन्म देकर
ओ पिता सूर्य!
ओ माता सविता!
क्या इसलिए तुम मार्तण्ड हो कि
अब तुम प्रकाश के अतिरिक्त
और कुछ भी नहीं जन्म दे सकते?
मैं जानता हूँ तुम वामन हो
पर हिरण्यगर्भ तो हो
और हिरण्यगर्भ होने का तात्पर्य है
युगनद्ध शिव होना
पर लगता है उषा के सोम अभिषेक ने
तुम्हें सदा के लिए शम्भु बना दिया
तुम शक्ति हो चुके हो।
पर शायद सृष्टि को जन्म देने के उपरान्त
उसके पालन के लिए तुम प्रकाशरूप
विष्णु हो।

ओ पिता सूर्य!
हिरण्यगर्भ से वामन
और वामन से श्वेत वामन तारा बनने की
आकांक्षा में

ओ आदि हिरण्यगर्भ!
तुम ही महागणपति,
गणाधिपति कारणभूत महापिण्ड हो
तुम्हारा ही गण-वैभव रूप
तारों की मन्दाकिनियों, आकाशगंगाओं के रूप में
पराब्रह्माण्डों में व्याप्त है
जैसे आकारातीत सूँड़ में सारे तारों के गण
लिपटे पड़े हों
और तुम आनन्दभाव से सिहरित होकर
शाश्वत ओंकार नाद कर रहे हो
जिसे हमारी पृथिवी, आकाश ही नहीं
हम सब अपने स्तत्व में सुनते हैं
तुम्हें प्रणाम है।

प्रत्येक अपने स्व का चक्र
प्रतिक्षण लगा रहा है
और इस गति की परम तेजी को
सामान्य भाव में नहीं देखा जा सकता
पर यह चन्द्रगति है
जिससे हमारे आकाश में प्रकम्पन उत्पन्न होता है
ताकि हमारी पृथिवी अपनी धुरी पर घूम सके
और धुरी-गति को स्वरूप मिल सके
यही धुरी-गति ही हमारी पृथिवी को
ऋतुमति बनाती है।

ऋतुमति धरती की यह ऋतुगति हमारे लिए
कितनी उत्सवरूपा है यह हम सब जानते हैं
पर शायद यह हम नहीं जानते कि
सूर्य हमारी इस पृथिवी को लेकर
और पृथिवी हमें लेकर
आकाशगंगा के केन्द्र की परिक्रमा पर
मन्वन्तर गति की गणनातीतता की ओर
भी धावित है

और क्या उस परायात्रा की हमें कोई प्रतीति है
कि हमारी नभगंगा अन्य मंदाकिनियों के साथ
अनावर्ती नक्षत्र-विस्तार की ब्रह्माण्डातीतता में
अपसर्पण गति ये यात्रा कर रही है?
एक महाशेष नाग-यात्रा है
जिस पर जैविकता का विष्णु शेषाशायी है।

वह
जो सोया हुआ है
जाग भी रहा है अलख वही,
वह
जो पुरुष है
अक्षतयोनि अपनी नारी भी है वही,

वह
जो चिद्बिन्दु है
सारे प्रकाशों की
परम अन्धकार विराटता भी है वही,

वह
जो शून्य है
समाहित हैं सारे संख्यातीत अंक वहीं,

वह
जो अक्षर है
पद और अर्थ की सारी वर्णमाला भी है वही

वह
जो परा अन्धकार है
सारे देश, सारे कालों के प्रकाश
नेत्र मूँदे हुए समाहित हैं वहीं।

यहाँ
जहाँ न प्रकाश है, न अन्धकार है
जबकि प्रकाश भी है और अन्धकार भी है
इसे भाषा कैसे अभिव्यक्त करे, कि
ताली दो हाथों से ही नहीं
एक हाथ से भी बजती है।

कोई ऐसा विश्वास करेगा कि
प्रकाश सुने जा सकते हैं
और ध्वनियाँ देखी जा सकती हैं

यहाँ इस परा अन्धकार में
अँधेरा अँधेरे को खोज रहा है।

इन परा ज्योतियों में प्रकाश अन्धे हो गये हैं
ब्रह्माण्ड के पराचुम्बकीय संकर्षण क्षेत्र
की महाज्योतियों का अत्यन्त नगण्य आलोक है
जो हम तक प्रकाश रूप में आता है।

प्रकाश भी लय है।
ब्रह्माण्डीय किरणों के सप्तवर्णी रंगमण्डल

वह
हाँ वह, जो युगनद्ध है
अर्धनारीश्वर है
जड़, चेतन औ गति की सघनतम युति के साथ
अपनी योगमाया में अवस्थित है।

वह महाशव
चिद्शक्ति के लास्य स्पर्श की प्रतीक्षा में
गणनातीत काल-यात्रा सम्पन्न कर निश्चेष्ट है।

सोने दो
महाशव बने इस चिद्बिन्दु को सोने दो।
ब्रह्माण्डों की पराविस्तृति में
कहीं भी, किसी में भी
न कहीं सूर्यों के भी सूर्य वाले तारे हैं
न कहीं नभगंगाएँ हैं
और न कहीं नक्षत्रमालिकाएँ।

सारे प्रकाशों की मृत्यु हो चुकी है
सारी ध्वनियाँ पथरा चुकी हैं
महाकाल के इस पराकृष्णगर्त में
सारे व्योमकेशी देश और काल
नामहीन, आयुहीन, परिचितिहीन बन कर
न जाने कहाँ
न जाने किस देश और काल में बिला गये हैं।

अब केवल अन्धकार
परा अन्धकार
नहीं, परात्पर अन्धकार की ही सत्ता है

पराविराट परात्पर बिन्दु बना लेटा है

सोने दो
महाछन्द के इस गोलक को सोने दो।

जैसे ही सोने के लिए बत्ती बुझाई
और अँधेरा हुआ तो
सहसा पूरा दिन भी लौट आया
जैसे उसे घर लौटने में थोड़ी देर हो गयी थी
और वह सिर झुकाये अपराध भाव से खड़ा था।

पूरे दिन की घटनाएँ भी
खिलौने थामे बच्चों सी आ खड़ी हुईं।
उन्हें खेल-खेल में ध्यान ही नहीं रहा कि
इतनी रात हो गयी है
और घर भी लौटना है।

मैं उन सबको कुछ कहना चाहता था
पर सब केवल थके ही नहीं लग रहे थे
बल्कि उनकी आँखों में नींद घिरी पड़ रही थी
और मैंने हँसते हुए अपने में समेटा और सो गया।

आकाश के चरखे पर
बादलों की पूनियाँ काती जा रही हैं।
देखते नहीं
यह प्रभु नहीं
प्रभु की परात्परता है।

देखते नहीं
यह मूर्ति नहीं, लिंग है
जिसका पूजन नहीं अभिषेक किया जाता है।
जो स्वयं भी
सत्, रज, तम का बिल्वपत्र है
त्रिकाल ही जिसका त्रिपुण्ड है
सृष्टि की परागतियाँ जिसके कण्ठ में नाग हैं
जो महायोनि में अवस्थित होकर अट्टहास कर रहा है
पर अभी वह केवल पिण्ड है
चिद्बिन्दु है।

देखते नहीं
इस योगमाया निद्रा में
केवल प्रलय का अधिकार
पार्षद बना जाग रहा है।
सारे प्रकाशों पर आरूढ़
यह नामहीन, रूपहीन प्रलय का पार्षद ही
जाग रहा है।

किसी की भी कोई सत्ता नहीं
केवल वह चिद्बिन्दु ही है,
लेकिन कहाँ?
जब कोई देश और काल ही नहीं है
तब यह कहाँ, क्या!

महाशून्य के कृष्ण के चारों ओर
अनन्त नभगंगाओं, तारा-मण्डलों की गोपिकाएँ
ज्योति का महारास कर रही हैं

प्रकाश के सप्त सोपान ही सप्त आकाश हैं।
प्रभु की परात्परता है।
कौन अपनी परासंकर्षण शक्ति से
प्रकाश-अश्वों की महागतियों पर वल्गा लगा देता है?

कौन परासंकर्षण का जाल फेंक कर
प्रकाश और ज्योतियों की मछलियों को समेट रहा है?

कृष्णगर्त सारे प्रकाशों और ज्योतियों को पी डाल रहा है
कृष्णगर्त के इस महाराक्षस के उदर-विवर में समा कर
गणनातीत वर्षों के बाद
ये प्रकाश, ज्योतियाँ, ध्वनियाँ
किस ब्रह्माण्ड में
भूत या भविष्य के किस काल में कब मुक्त होंगी
यह कौन जानता है?

अरण्यानी से वापसी

मेरी अरण्यानी! मुझे यहाँ से वापस अपनी धरती
अपनी शाश्वती के पास लौटना ही होगा!

ताकि मैं
मात्र एक व्यक्ति
केवल एक कवि न रह कर
अपने समय की सबसे बड़ी घटना बन सकूँ—
एक कविता!

कविता—
जब केवल विचार होती है।
तब वह
सत्य का साक्षात्,
तब वह
परम-पुरुष की लीला
तब वह
आत्म-उपनिषद् होती है,
पर, जब वह
भाषा के भोजपत्र पहन लेती है।

तब वह
आनंद के मंत्र
आसक्ति के पद
तन्मयता के कीर्तन
विनय की प्रार्थना
और लालित्य के गान के
अपराजित हिमालय तथा अक्षत उपत्यकाओं से उतरती हुई
जलते मानवीय मैदानों में पहुँच कर
विराट करुणा
पीड़ा मात्र बन जाती है।

मेरी अरण्यानी!
मेरी इस वैष्णवता को भी परीक्षा देनी होगी
मेरी इन प्रार्थनाओं को भी
अपने समय
और कोटि-कोटि लोगों के बीच
एक कविता
एक घटना
एक मनुष्य-सा घटित होना ही पड़ेगा।
युद्ध के अठारह दिनों के रक्ताभिषेक के बाद ही
कृष्ण की वैष्णवता
इतिहास का वासुदेव बन सकी थी।

शतानक हुई इस पृथिवी
और संत्रस्त लोगों के पुनः उत्सव होने से अधिक
न कोई मंत्र है।
और न वैष्णवता।

मनुष्य का कविता हो जाना ही उत्सव है।
इसलिए मेरी अरण्यानी! मुझे यहाँ से वापस अपनी धरती
अपनी शाश्वती के पास लौटना ही होगा!
पांडवों के कीर्ति-स्तंभों जैसे भोजपत्रो!
ऊर्ध्वमनस् के योगियों जैसे देवदारुओ!
गायों की त्वचा जैसे चिकने और संस्पर्शी हिमनदो!
मैं अपने पर से उतार रहा हूँ
हिम के ये मलमली चीवर।

वनस्पतियों के वल्कल
औषधियों के ये अंगराग
ब्रह्मकमल की यह व्यक्तित्व-गंध
नदियों के ये यज्ञोपवीत
हवाओं की ये माधवी रागिनियाँ
और एकांत में धरोहर-सा रखे जा रहा हूँ।

हिमालय का यह इंद्र-मुकुट।
बादलों हवाओं, ग्रहों-नक्षत्रों में
अहोरात्र संपन्न होने वाला।
यह राजसूय-यज्ञ भी छोड़े जा रहा हूँ।

मेरी अरण्यानी! इतना वैराट्य
इतनी पवित्रता लेकर
कोई भी हाट-बाज़ार में नहीं जा सकता।

इतिहास और राजनीति में दग्ध हुए।
मनुष्य मात्र को
अब केवल कविता की प्रतीक्षा है।
कविता का लोगों के बीच लौटना
मनु के लौटने जैसा होगा।
कविता का लोगों के बीच लौटना
एक अविश्वसनीय घटना होगी
इसलिए मेरी अरण्यानी! मुझे यहाँ से अपनी धरती
अपनी शाश्वती के पास लौटना ही होगा!

मैंने सूर्य को अर्ध्य दिया ही इसलिए था, कि
उसकी तेजस्वी सूर्याएँ—
नित्य मेरी गलियों में
इस धरती पर आकर
मनुष्य, पशु, पक्षी, फूल-वनस्पतियाँ बनकर उगें।

नित्य एक शब्द-उत्सव
पेड़ों पर चिड़ियाँ बनकर
घर-आँगन में भाषा बनकर
और एकांत में प्रिया बनकर संपन्न हों।
धरती, सूर्य की सुगंध हो जाए, पर
किसने अपमानित कर दिया है मानवीय देवत्व को?
जीवन की कुल-गोत्रता को?

नहीं—
मनुष्य से लेकर दूर्वा तक के अपमानित मुख पर
मेरी वैष्णवता!
मेरी कविता की लिखनी होगी।
एक गरिमा
एक पवित्रता
एक उत्सव।

मनुष्य या दूर्वा
किसी के भी हँसते हुए मुख से बड़ी
न कोई प्रार्थना है।
न कोई उत्सव है।
और न स्वयं ईश्वर ही।

मेरी अरण्यानी!
युधिष्ठिर की भाँति आग्रह करना ही होगा, कि
मुझे अकेले नहीं।
पूरी मानवता के लिए
सृष्टि मात्र के लिए स्वर्ग का प्रवेश स्वीकार होगा
इससे कम नहीं।
इसलिए मेरी अरण्यानी! मुझे यहाँ से वापस अपनी धरती
अपनी शाश्वती के पास लौटना ही होगा!

चलो मेरी वैष्णवता!
मेरी प्रार्थना! मेरी कविता! चलो—
इस पृथिवी पर वनस्पतियाँ बनकर
सृष्टि की भाषा बनकर चलो,
प्रत्येक चलना अवतार होता है,
धूप, सूर्य का।
और नदियाँ, बादलों का अवतार ही तो हैं।

सृष्टि मात्र को
मनुष्य मात्र को इतिहास और राजनीति नहीं
एक कविता चाहिए।
व्यक्तियों, घरों, दीवारों और भाषाओं—
सबसे कहना पड़ेगा कि
उतार फेंको ये आग्रहों की वर्दियाँ
पोस्टरों के वस्त्र—
ये मनुष्यता के अपमान हैं।

भाषा को दोगला बना देने वाले ये भाषण—
भाषा को गाली बना देने वाले ये नारे—
अपने स्वत्व और देह पर से नोंच फेंको
जो कि गुदनों की तरह
तुम्हारे शरीर पर गोद दिए गए हैं।

मेरी वैष्णवता!
एक कविता,
एक कदंब-सी उपस्थित होओ।
कविता जब प्रार्थना हो जाती है
कविता जब मनुष्य हो जाती है
तब वह
इस पृथिवी की
साधारण जन की रामायण हो जाती है।
मनुष्य मात्र में कविता अवतरित हो।
इसके लिए मेरी अरण्यानी! मुझे यहाँ से वापस अपनी धरती
अपनी शाश्वती के पास लौटना ही होगा!
लौटना ही होगा!

एक अविभाजित विश्व

मूल - अलेक्जेंडर इसेविच सोल्झेनित्सिन
अनु. - विभा खरे

शिक्षा - एम.एच.एस.सी., एम.ए.।
रचनाएँ - पत्र-पत्रिकाओं में लेखन।
विशेष - अनुवाद में विशेष कार्य ।

मुझे यहाँ इस प्राचीन और गौरवपूर्ण विश्वविद्यालय के 327वीं स्थापना दिवस के अवसर पर उपस्थित होने में सचमुच प्रसन्नता हो रही है। आज के सभी स्नातकों को मेरी बधाई और बहुत और बहुत ही शुभकामनाएँ।

हार्वर्ड का आदर्श वाक्य है-'सच्चाई', आप में से अनेक ने इसे पहले ही समझ लिया होगा और अन्य अपनी आने वाले जीवन में जान लेंगे कि अगर हम सत्य की खोज में अपना पूरा ध्यान नहीं लगाते तो वह हमसे दूर हो जाता है। पर दूर हो जाने के बाद भी हममें सत्य को जानने का भ्रम बना रहता है और यही कई गलतफहमियों को जन्म देता है। मेरे आज के भाषण में भी कुछ कड़वाहट है पर यकीन मानिए मैं विरोधी नहीं बल्कि एक दोस्त की तरह भाषण दे रहा हूँ।

तीन साल पहले संयुक्त राज्य अमेरिका में मैंने कुछ बातें कहीं जो उस समय अस्वीकार्य हुईं। आज हालाँकि बहुत से लोग उन बातों से सहमत हैं, जो मैंने तब कहीं थीं। आज एक सरसरी निगाह डालकर भी विश्व के विभाजन को साफतौर पर देखा जा सकता है। हमारा कोई भी समकालीन दो विश्व शक्तियों को पहचान सकता है, ये दोनों विश्व शक्तियाँ एक-दूसरे का पूर्ण विनाश करने में सक्षम हैं। हालाँकि इस विभाजन को जानने वाले ये समझते हैं कि सफल कूटनीतिक बातचीत या सेनाओं के संतुलन द्वारा इस विभाजन के खतरे को समाप्त किया जा सकता है। पर सच यह है कि यह विभाजन कहीं अधिक गंभीर तथा कहीं अधिक अलगाव की भावना उत्पन्न करने वाला है, और विभाजन की ये दरारें एक से अधिक हैं, जिन्हें पहली नजर में नहीं भाँपा जा सकता। ये कई परतों की दरारें हम सभी के लिए कई गुना ज्यादा विनाशकारी हैं, जैसा कि बाइबिल का एक प्राचीन कथन है कि एक बँटा हुआ राज्य-यहाँ हमारी धरा-'जो स्वयं विभाजित हो, किसी जंग को जीत नहीं सकताँ' (एक बँटा हुआ घर टिक नहीं सकता)।

तीसरी दुनिया की भी अवधारणा है, इस तरह हमारे पास तीन दुनिया हैं। वास्तव में ये संख्या और अधिक है पर हम बहुत दूर होने के कारण उन्हें देख नहीं सकते। कोई भी स्वायत्त, पुरातन और जड़ों से जुड़ी संस्कृति जो इस पृथ्वी के एक बड़े भाग में फैली हो पश्चिमी सोच के लिए एक पहेली से कम नहीं। इस श्रेणी में चीन, भारत, मुस्लिम देश और अफ्रीका को शामिल करना चाहिए, वास्तव में बाद के दो एक पृथक संगठित इकाई के रूप में देखे जाने चाहिए।

एक हजार साल तक रूस इसी श्रेणी में सम्मिलित था पर पश्चिमी सोच ने उसके स्वायत्त स्वरूप को न समझते हुए उसे मानने से अस्वीकार कर दिया, ठीक उसी आज पश्चिमी सोच यह नहीं समझ पाती कि रूस कम्यूनिस्ट कैद में है। शायद इसलिए कि पिछले कुछ सालों में जापान पश्चिम का एक सुदूर हिस्सा बन गया। मैं यह तय करने का अधिकार नहीं रखता। पर जैसे उदाहरण के तौर पर इजराइल मेरी समझ से पश्चिमी दुनिया का एक हिस्सा था, जहाँ राजकाज मूलभूत रूप से धर्म आधारित था।

अभी कुछ समय पहले तक अपेक्षाकृत छोटा नया पश्चिमी युग हर जगह उपनिवेशों पर आसानी से कब्जा कर रहे थे। ऐसा

नहीं था कि ये उपनिवेश उनका विरोध कर रहे थे पर लोगों के जीवन मूल्यों के प्रति तिरस्कार की भावना इसके मूल में थी। ये एक तरह से न रोकी जा सकने वाली सफलता थी, जिसकी कोई भौगोलिक सीमा नहीं थी। पश्चिमी समाज इसी तरह मानवीय स्वतंत्रता और शक्ति की विजय मनाता हुआ फैलता गया और अचानक 20वीं सदी में यह सामने आया कि ये विजय बेहद कमजोर और भंगुर है।

आज हम देख सकते हैं कि पश्चिम की ये विजय अल्पकालिक और अनिश्चित सिद्ध हुई–हमें ज्ञात हुआ कि इन विजय के पीछे पश्चिम का दोषपूर्ण दृष्टिकोण था। औपनिवेषिक दुनिया के साथ पश्चिम के संबंध अब विपरीत हो गए हैं और अक्सर पश्चिम अधीनता की चरम सीमा तक चला जाता है। पर अभी ये अनुमान लगाना कठिन है कि अगर औपनिवेशिक देश पश्चिम पर कुछ हर्जाना लगाते हैं तो पश्चिम उस उपनिवेश को वापस देकर ही नहीं बल्कि अपना सब कुछ देकर भी इस हर्जाने को चुका नहीं पाएगा।

इतना होने पर भी श्रेष्ठता की भावना से अंधा पश्चिम यह विश्वास करता है कि हमारे ग्रह के अधिकांश भागों में वर्तमान का पश्चिमी सिस्टम ही विकसित और विस्तारित होगा, जो कि सिद्धान्तत: सर्वोत्तम और व्यवहार में सबसे आकर्षक है। इसी विश्वास के आधार पर अन्य देशों को उनके कुटिल प्रशासकों से या भारी संकटों से, या उनकी अपनी बर्बरता और नासमझी से, अस्थायी रूप से बचाया जा रहा है–पश्चिमी लोकतंत्र को अपना कर तथा जीवन जीने के पश्चिमी तरीके अपनाकर। जो देश इस दिशा में प्रगति कर रहे हैं उन्हें योग्य आँका जाता है।

हालाँकि ये अवधारणा पश्चिम के दूसरी दुनिया के सार तत्व को न समझ पाने से बनी है, जिस कारण वे अन्य देशों को पश्चिमी मापदंड से मापने की गलती करते हैं। इससे भिन्न हमारे इस ग्रह के विकास की असली तस्वीर पश्चिमी देशों के सोवियत संघ के साथ सम्मिलन से बनी है। सभी दुनिया एक सी विकसित नहीं हो रहीं न ही एक दुनिया पूरी तरह दूसरी दुनिया में बगैर हिंसा के परिवर्तित हो सकती है। बल्कि सम्मिलन या अभिसरण का अर्थ है गुण के साथ दोषों को भी अनिवार्य रूप से स्वीकार करना–जो कि शायद वांछनीय नहीं है।

अगर मैं अपने देश में श्रोताओं को संबोधित कर रहा होता, सम्पूर्ण विश्व के विभाजन, मतभेदों, दरारों के समग्र पैटर्न की जाँच कर रहा होता, तो मैं पूर्व की आपदाओं पर केन्द्रित होता पर चूँकि मेरा पिछले 4 सालों से जबरन निर्वसन पश्चिम में है, इसलिये पश्चिम की कुछ धारणाओं पर केन्द्रित होने में मेरी रुचि है, वे धारणाएँ जो हमारे समय में थीं और जैसा मैं उनका आकलन कर पाता हूँ।

हमारे समय में कोई बाहरी व्यक्ति भी यह नोटिस कर सकता है कि पश्चिम की सबसे ज्यादा ध्यान आकर्षित करने वाली विशेषता है–साहस में कमी। पश्चिमी दुनिया ने अपना नैतिक साहस सामूहिक और व्यक्तिगत रूप से खो दिया है–ये सभी देशों, सभी सरकारों, सभी राजनैतिक दलों और यहाँ तक कि संयुक्त राष्ट्र में भी परिलक्षित है। सत्तारूढ़ दल एवं बुद्धिजीवी वर्ग में साहस की यह कमी सम्पूर्ण समाज में साहस की कमी के रूप में देखी जाती है। नि:संदेह कुछ व्यक्ति आज भी साहसी हैं पर उनके साहस का सार्वजनिक जीवन में कोई निर्णयात्मक प्रभाव नहीं दिखता।

राजनैतिक और बौद्धिक नौकरशाहों के कार्यों व वक्तव्यों में अवसाद, निराशा और व्याकुलता दिखाई पड़ती है और खासकर तब जब वे ये सिद्ध करने में असमर्थ होते हैं कि कमजोरी और कायरता पर आधारित शासन की नीतियाँ कितनी असंगत, अमान्य, बौद्धिक और नैतिक रूप से जीर्ण होती हैं। विडंबना है कि यही नौकरशाह, जब किसी कमजोर सरकार या किसी ऐसे देश में हो जिसे अन्य देशों का समर्थन न हो या किसी ऐसी विचारधारा के लिए कार्य कर रहे हों, जिसका कोई विरोध न करे–अकड़ व क्रोध के विस्फोट के रूप में साहस की कमी को उजागर करते हैं–पर जब ये किसी शक्तिशाली सरकार, धमकी देने वाली ताकतों, हमलावरों या अंतर्राष्ट्रीय आतंकवादियों से निपटते हैं तो इन्हें लकवा मार जाता है या इनकी जुबान बंद हो जाती है।

क्या कोई देख सकता है कि प्राचीन समय से ही साहस में कमी 'अंत' की शुरुआत माना जाता है।

जब आधुनिक पश्चिमी राज्य गठित हुए, कहा गया सरकारें

आम जनता की सेवा के लिए हैं और व्यक्ति का जीवन स्वतंत्र एवं आनंद की खोज के लिए है। उदाहरण के लिए अमेरिकी स्वतंत्रता का घोषणा-पत्र देख लीजिए। पिछले कुछ दशकों में आखिरकार तकनीकी और सामाजिक प्रगति ने ऐसे राज्य की कल्पना को पूरा करने की अनुमति दी है।

हर नागरिक को वांछनीय मात्रा एवं वांछनीय गुणवत्ता की स्वतंत्रता और भौतिक सुख सुविधाएँ दी गई हैं ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि उन्हें कहने के लिए सुख की प्राप्ति हो जाए-सुख शब्द भी इन्हीं दशकों में नैतिक रूप से हीन अर्थ में प्रयुक्त हुआ। इस प्रक्रिया में एक मनोवैज्ञानिक तथ्य अनदेखा रह गया-और अधिक भौतिक सुख-सुविधाओं की चाह, और बेहतर जीवन जीने की चाह और इसे प्राप्त करने के संघर्ष ने पश्चिमी चेहरों को चिन्ता और अवसाद से ढक दिया-इन भावनाओं को छुपाना भी एक पश्चिमी रिवाज है। सतत् तनावपूर्ण इस प्रतिस्पर्धा ने सभी मानवीय विचारों को घेर लिया और आध्यात्मिक उन्नति का कोई रास्ता न छोड़ा।

एक व्यक्ति की स्वतंत्रता अनेक राजकीय दबावों के साथ स्वीकार की गई। अधिकांश जनसंख्या ऐसी जीवन शैली जीने लगी जो उनके पूर्वजों ने स्वप्न में भी नहीं देखी थी। बच्चों को शारीरिक सुख-सुविधा, भौतिक वस्तुओं, धन और आराम के सहारे, असीमित आनंद भोगने की स्वतंत्रता के आदर्शों पर पालना संभव हो गया। अब कौन इनका त्याग करे? और सामान्य मूल्यों के बचाव के लिए कोई अपने बहुमूल्य जीवन को दाँव पर लगाएगा खासकर ऐसे अस्पष्ट मुद्दों के लिए जहाँ दूसरे देश में रहते हुए अपने देश की सुरक्षा के विषय में लड़ना है? जीवविज्ञान के अनुसार अभ्यस्त, आरामदायक और अत्यधिक सुरक्षित जीवन किसी भी जीवित प्राणी के लिए लाभदायक नहीं होता। आज पश्चिमी जीवनशैली के घातक मुखौटे उतरने लगे हैं।

पश्चिमी समाज ने स्वयं ऐसा संगठन अपनाया है जो उनके उद्देश्यों की पूर्ति करता है-ये संगठन कानून/नियम पर आधारित हैं। जहाँ मानवाधिकारों की सीमा और मनुष्य का धर्म उसकी न्यायपरायणता कानून और नियमों पर आधारित प्रणाली द्वारा निर्धारित होती है-ये सीमाएँ बहुत विस्तृत हैं। पश्चिमी लोग कानून को समझने और उसे विकृत करने में पर्याप्त कुशलता प्राप्त कर चुके हैं। कोई भी समस्या या विवाद विधि सम्मत तारीके से सुलझाया जाता है और इसे ही अंतिम समाधान माना जाता है। अगर कोई कानून की नजरों में सही है तो कुछ और की आवश्यकता नहीं है। कोई अन्य व्यक्ति आत्म संयम और परोपकार व नि:स्वार्थ भावना से अपने कानूनी अधिकारों को छोड़कर यह कहने का साहस नहीं करेगा कि अभी भी ये पूरी तरह सही नहीं है। ये बेतुका लगता है, स्वेच्छा से कोई त्याग नहीं अपनाता। हर व्यक्ति कानूनी ढाँचों की चरम सीमा तक जाकर कार्य करते हैं।

मैंने अपना पूरा जीवन कम्यूनिस्ट शासन में बिताया और मैं यह कह सकता हूँ कि बिना निष्पक्ष कानूनी पैमानों के समाज वास्तव में अराजक होगा। पर केवल कानूनी पैमानों पर आधारित समाज भी मनुष्य के रहने योग्य नहीं है। ऐसा समाज जो कानून सम्मत तो हो पर कभी उससे ऊपर न उठे मानवीय संभावनाओं के उच्च स्तर पर पहुँचने का लाभ नहीं ले पाता।

कानून सम्मत होना बहुत औपचारिक और कुछ हद तक निर्दय समाज बनाता है। जब भी जिन्दगी के धागे कानूनी रिश्तों से बुने जाते हैं। एक औसत दर्जे का वातावरण निर्मित होता है और मनुष्य को महान बनाने वाले आवेग पंगु हो जाते हैं। और केवल इन कानूनी ढाँचों की मदद से इस युग की परीक्षाओं में सफल हो पाना लगभग असंभव है।

आज के पश्चिमी समाज में अच्छे और बुरे कर्मों के प्रति स्वतंत्रता की असमानता है। एक नीति निर्धारक व्यक्ति जो कुछ विशेष प्राप्त करना चाहता है और अपने देश के प्रति बेहद रचनात्मक है, उसे अपने कदम सावधानी से और अनेक बार डर-डर कर रखने होते हैं। चारों ओर से हजारों गैर जिम्मेदार, उतावले आलोचकों से घिरा होता है, संसद और प्रेस उसकी भर्त्सना करते रहते हैं। जैसे-जैसे वह आगे बढ़ता है उसे साबित करना पड़ता है कि उसका हर कदम सोच-समझकर रखा गया और पूरी तरह दोषरहित है। एक वास्तविक अद्भुत और प्रतिभाशाली व्यक्ति जिसके मन में असामान्य और अप्रत्याशित नयी पहल होती हैं, वह उन्हें शायद ही पूरी तरह व्यक्त कर पाता है। शुरुआत से उसके लिए दर्जनों जाल

बिछाए जाते हैं। इस तरह औसत सोच लोकतंत्र के प्रतिबंधों का बहाना लेकर उत्कृष्ट के ऊपर जीत हासिल कर लेती है।

प्रशासनिक शक्तियों को कमजोर करना हर जगह संभव और आसान है, और पश्चिमी देशों में ये और भी कमजोर है। नागरिक अधिकारों का हवाला देकर कुछ नागरिकों के विरुद्ध समाज वाकई लाचार और असुरक्षित दिखाई पड़ता है। यह समय है जब पश्चिम को मानवाधिकारों को बोझ की तरह नहीं लेना चाहिये।

विनाशकारी और दायित्वहीन स्वतंत्रता ने एक बड़ा रिक्त स्थान दिया। समाज के पास मानव को पतन से बचाने का कोई रास्ता नहीं है। ऐसा प्रतीत हो रहा है। जैसे अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का प्रयोग बच्चों के प्रति नैतिक हिंसा के लिए किया जाने लगा। इसके उदाहरण हैं पोर्नोग्राफी अपराध व डर से भरी फिल्में। इसे स्वतंत्रता का हिस्सा माना गया कि बच्चे चाहें तो इन्हें स्वीकार करें, न स्वीकार करने के लिए वे सैद्धान्तिक रूप से स्वतंत्र हैं। कानून सम्मत जीवन अपने आपको बुराई से बचाने में असमर्थ दिखा।

और हम अपराध वास्तव में किसे कहेंगे? संयुक्त राज्य अमेरिका में खासतौर पर कानूनी ढाँचे इतने लचीले हैं कि वे न केवल व्यक्तिगत स्वतंत्रता को बल्कि कुछ हद तक व्यक्तिगत अपराधों को बढ़ावा देते हैं। एक अपराधी हजारों जन समर्थकों की मदद से सजा से बच सकता है या उसे ऐसी उदारता मिलती है, जिसके वह योग्य नहीं है। जब सरकारें आतंकवाद के विरुद्ध ईमानदार लड़ाई शुरू करती हैं, जनता की राय उन्हें आतंकवादियों के नागरिक अधिकारों का उल्लघन बताती है। ऐसे कई उदाहरण हैं।

बुराई की ओर स्वतंत्रता का ऐसा झुकाव शनैः-शनैः आया पर उसका जन्म उस मानवतावादी, परोपकारी अवधारणा से हुआ जो कहती है कि 'मानव प्रकृति स्वभाव से दुष्ट नहीं होती'। समाज मानवजाति से बना है और इसमें दोष गलत सामाजिक व्यवस्थाओं के कारण हैं, जिन्हें सही किया जाना आवश्यक है। पश्चिम में सामाजिक स्थितियाँ श्रेष्ठतम हैं फिर भी वहाँ अपराधिकता कंगाल और अराजक सोवियत समाज की तुलना में काफी अधिक है।

प्रेस भी निःसंदेह व्यापक स्वतंत्रता का आनंद लेता है। प्रेस के अंतर्गत मैंने सभी मीडिया को शामिल कर लिया है) पर इस स्वतंत्रता का उन्होंने क्या उपयोग किया?

यहाँ फिर मेरा अभिप्राय उनके कानून सम्मत होने से नहीं है। इनकी सामाजिक विषमता और विकृति के प्रति कोई नैतिक जिम्मेदारी नहीं है। अपने पाठकों के प्रति उनकी क्या जिम्मेदारी है? या इतिहास के प्रति उनका क्या दायित्व है? यदि उन्होंने जनता की राय या सरकार को गलत सूचनाओं या गलत निष्कर्षों से दिग्भ्रमित किया तो क्या वे ऐसी गलतियों को जनता के सामने लाते हैं। ऐसा शायद ही कभी होता है क्योंकि इससे उनकी बिक्री पर असर पड़ता है। एक देश ऐसी गलतियों का षिकार हो सकता है पर पत्रकार फिर से नए आत्म आश्वासन के साथ विरोध में लिखना शुरू कर देता है।

चूँकि तात्कालिक और विश्वसनीय जानकारी देनी होती है। खाली स्थानों को अटकलबाजी, अफवाहों और कल्पना से भर दिया जाता है और उनमें से कोई भी सही नहीं की जाती, वे पाठकों को स्मृतियों में रह जाती हैं। कितने त्वरित, अपरिपक्व, सतही और दिग्भ्रमित करने वाले आकलन प्रतिदिन व्यक्त किये जाते हैं और जो पाठकों को भ्रमित करते हैं, ये आकलन बिना किसी सत्यापन के प्रस्तुत किए जाते हैं। प्रेस जनता की राय को उत्प्रेरित कर सकता है या उन्हें गलत शिक्षा दे सकता है। यही कारण है कि आतंकवादियों को हीरो बनाकर प्रस्तुत किया जाता है। देश की सुरक्षा से जुड़े मामले सार्वजनिक कर दिये जाते हैं या हम प्रसिद्ध व्यक्तियों के व्यक्तिगत जीवन को जान सकते हैं, ये कहकर कि 'सबको सब कुछ जानने का हक है।' पर यह झूठी दुनिया का झूठा नारा है। लोगों को न जानने का भी अधिकार है और ये अधिक मूल्यवान है। उन्हें पवित्र आत्मा को झूठ, गप्प, बकवास बातों से न भरने का भी अधिकार है। एक व्यक्ति जो कर्म करता है और एक सार्थक जीवन जीता है, उसे सूचनाओं के बोझिल प्रवाह की आवश्यकता नहीं।

जल्दबाजी और सतहीपन 20वीं सदी का मानसिक रोग है

और इस बीमारी का सबसे अधिक असर प्रेस पर हुआ। पश्चिमी देशों में प्रेस विधायी, कार्यपालिका और न्यायपालिका की शक्ति बन गया है और सब पूछना चाहते हैं कि ये किस नियम कानून के तहत चुना गया या ये किस के प्रति जवाबदेह है? कम्यूनिस्ट पूर्व में पत्रकार एक राज्य अधिकारी के रूप में नियुक्त होता है। पर पश्चिमी पत्रकार को किसने इतनी शक्ति दी? कितने समय के लिए उन्हें ये शक्ति किन विशेषधिकारों के साथ दी गयी?

पूर्व से आने वालों के लिए पश्चिम में एक और आश्चर्य है- यहाँ प्रेस में जबरदस्त एकता है। धीरे-धीरे ये भी पता चलता है कि पश्चिमी प्रेस की प्राथमिकताएँ या पसंद एक सी हैं। इसे एक फैशन कह सकते हैं? ये आकलन के सर्वमान्य पैमाने हैं, ये कॉरपोरेट हित (व्यावसायिक हित) हो सकते हैं- इनका प्रभाव प्रेस के बीच प्रतिस्पर्धा नहीं बल्कि एकीकरण है। इस तरह प्रेस के लिए बहुत आजादी है पर पाठकों के लिए नहीं क्योंकि समाचार पत्र अधिकतर उन्हीं विचारों पर ध्यान देते हैं जो उनके स्वयं के या एक प्रचलित फैशन का खंडन नहीं करते।

इस तरह विचार और तौर-तरीके बिना किसी सेंसरशिप के पश्चिमी फैशनेबल विचारों से पृथक कर दिए जाते हैं, कुछ छिपाया नहीं गया पर जो फैशनेबल नहीं है, उसे पत्रिकाओं या पुस्तकों में शायद ही स्थान मिलेगा, या कॉलेजों में सुना जायेगा। कानूनन आपके शोधकर्ता स्वतंत्र हैं पर वे भी उस समय के प्रचलित ट्रेंड/फैशन से अनुकूलित हैं। यहाँ पूर्व की तरह प्रत्यक्ष हिंसा नहीं है फिर भी फैशन के अनुसार चलन व सर्वमान्य मानकों से मेल खाने की अनिवार्यता अक्सर स्वतंत्र विचारधारा वाले व्यक्तियों को समाज में उनका योगदान देने से रोकती है। झुंड बनाने की यह घातक प्रवृत्ति सफल विकास को रोक देती है। मुझे अमेरिका में अनेक बुद्धिजीवियों, जो शायद किसी दूरस्थ अंचल के कॉलेज में अध्यापक हैं-के पत्र आते हैं जो कि देश के नवीनीकरण एवं उद्धार के लिए बहुत कुछ कर सकते हैं पर उनका देश उन्हें नहीं सुन सकता क्योंकि मीडिया की उनमें दिलचस्पी नहीं है।

इससे प्रबल सामूहिक पूर्वाग्रहों का जन्म होता है, अंधेपन का जन्म होता है, वैश्विक परिस्थितियों को समझने की आत्म विमुग्ध प्रवृत्ति पैदा होती है। ये लोगों के दिमाग के चारों ओर एक कवच के रूप में कार्य करता है। पूर्वी यूरोप और पूर्वी एशिया के सत्रह देशों की मानवीय पुकार इस कवच को भेद नहीं सकती। ये कवच केवल दुर्घटनाओं के निर्मम लौहदंड से तोड़ा जा सकता है।

मैंने पश्चिमी जीवन को कुछ विशेषताएँ बताईं जो यहाँ आने वाले नए लोगों को आश्चर्य या आघात दे सकती हैं। इन विशेषताओं का पश्चिमी देशों की प्रारंभिक शिक्षा, कला और मानविकी की उच्च शिक्षा पर क्या प्रभाव पड़ता है इसकी समीक्षा करना मेरे भाषण का उद्देश्य या क्षेत्र नहीं है।

यह एक सार्वभौमिक सत्य के रूप में स्वीकार कर लिया गया है कि पश्चिम ने दुनिया को सफल आर्थिक विकास का रास्ता दिखाया है, भले ही पिछले कुछ सालों में अराजक मंदी ने इसे अवरुद्ध कर दिया है। पश्चिम में रहने वाले अनेक व्यक्ति अपने ही समाज से असंतुष्ट है। नेसवता की वे समाज को मानवता के उच्चतम स्तर तक परिपक्व होता नहीं पाते इसीलिए वे उसकी भर्त्सना व तिरस्कार करते हैं। ऐसे कई आलोचक समाजवाद की ओर मुड़ गए, जो स्वयं एक नकली और घातक विचारधारा है।

मुझे आशा है कि कोई भी पश्चिमी प्रणाली की मेरी व्यक्तिगत आलोचना को समाजवाद को विकल्प के रूप में प्रस्तुत करने की कोशिश के तौर पर नहीं देखेगा। किसी देश में जहाँ समाजवाद को विकल्प के रूप में स्वीकारा गया-लागू किया गया-उस अनुभव के बारे में मैं नहीं बोलूँगा। प्रसिद्ध सोवियत गणितज्ञ शफारेविच ने जो सोवियत एकेडमी ऑफ साइंस के सदस्य भी हैं-एक पुस्तक जिसका शीर्षक समाजवाद है, लिखी है; इसमें अनेक प्रकार के, किसी भी रंग के समाजवाद का गहन विश्लेषण कर यह निष्कर्ष, निकाला गया कि समाजवाद मानव की आत्मा और मानवता को मृत्यु के स्तर तक नुकसान पहुँचाने वाला है। शफारेविच की पुस्तक फ्रांस में प्रकाशित हुई-लगभग दो वर्ष पूर्व और अब तक उसका खंडन किसी ने नहीं किया। ये पुस्तक जल ही संयुक्त राज्य अमेरिका से प्रकाशित की जाएगी।

मुझसे पूछा जाना चाहिए कि क्या मैं आज के पश्चिम को आदर्श की तरह अपने देश के समझ प्रस्तुत करूँगा? स्पष्टत: मैं अपना उत्तर नकारात्मक दूँगा। मैं आपके समाज को उसके वर्तमान स्वरूप में अपने समाज को रूपांतरित करने के लिए अनुशंसित नहीं करूँगा। अब हमारे देश ने अपनी तीव्र पीड़ा को सहकर आध्यात्मिक उन्नति के उस स्तर को प्राप्त कर लिया है कि अपने वर्तमान आध्यात्मिक पतन की स्थिति में पश्चिमी समाज आकर्षक नहीं लगता। यहाँ तक कि पश्चिमी जीवन की वे विशेषताएँ जिनका मैंने उल्लेख किया अत्यन्त दु:खदायी हैं।

यह एक निर्विवाद तथ्य है कि पश्चिम में इंसान कमजोर और पूर्व में दृढ़ व शक्तिशाली होता जा रहा है-हमारे लोग 60 वर्ष और पूर्वी यूरोप 30 वर्ष की अवधि में हम पश्चिमी अनुभव से बहुत ऊँचे स्तर के आध्यात्मिक पशिक्षण से गुज़रे हैं। जीवन की जटिलताओं और नैतिक दायित्व ने हमें मजबूत, गहन और अधिक आनंददायक गुणों से परिपूरित कर दिया है।

इसलिए अगर हमारे समाज को आपके समाज में रूपांतरित होता होगा तो इसका अर्थ कुछ क्षेत्रों में उन्नति पर कुछ महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों में अवनति को अपनाना होगा। ये सच है कि हमारे देश की तरह कोई भी समाज नियमविहीनता की अराजकता में नहीं रह सकता पर आपकी तरह यांत्रिक कानूनी सुगमता का चुनाव भी हमारे लिए अपमानजनक होगा। अनेक वर्षों की हिंसा और उत्पीड़न को झेलने के बाद मानव आत्मा उच्चतर, गहन और अधिक आत्मीय, पवित्र गुणों की माँग करती है न कि प्रचार के भूखे, टी.वी. प्रोग्राम और कानफोडू संगीत के द्वारा दिए गए गुणों की।

इतिहास एक संकटग्रस्त या पतन की ओर अग्रसर समाज को कुछ अर्थपूर्ण चेतावनियाँ देता है। जैसे जे पतन की कि, कला का पतन होना, या महान राजनेताओं की कमी होना। कुछ अधिक स्पष्ट और खुली चेतावनियाँ भी होती हैं। आपका लोकतंत्र और संस्कृति का केन्द्र केवल कुछ समय के लिये ही विद्युतीय शक्ति के बिना छूटता है कि अमेरिकी नागरिकों की भीड़ अचानक ही लूटपाट और तबाही मचाना प्रारम्भ कर देती है। एक अस्थिर और अस्वस्थ्य सामाजिक व्यवस्था की तुलना में कोमल सतही आवरण बहुत झीना होना आवश्यक है।

किन्तु हमारे ग्रह के लौकिक अनुपात हेतु भौतिक और आध्यात्मिक लड़ाई, भविष्य की निराधार बात नहीं है, यह अब प्रारम्भ-हो चुकी है। शैतानी शक्तियों ने अपना आक्रमण शुरू कर दिया है, आप उनका दबाव महसूस कर सकते हैं। और अभी भी आपके चित्रपट और प्रकाशन आपके लिये निर्धारित की गई मुस्कानों और उठे हुये जामों से भरपूर हैं। किस बारे में है यह प्रसन्नता?

आपके समाज के कई प्रसिद्ध प्रतिनिधी, जैसे बार्ज केनन, कहते हैं- हम राजनीति में नैतिक मानदंड लागू नहीं कर सकते। इस प्रकार हम अच्छाई में बुराई, सही में गलत का मिश्रण करते चलते हैं और दुनिया में परम बुराई की मुकम्मल विजय के लिये स्थान बनाते जाते हैं। इसके ठीक विपरीत, साम्यवाद की सुनियोजित वैश्विक रणनीति के खिलाफ केवल नैतिक मानदंड ही पश्चिम के लिये मददगार हो सकते हैं। इसके अतिरिक्त और कोई मापदण्ड नहीं है। किसी भी तरह के व्यावहारिक या तात्कालिक विचार, रणनीति से निश्चित तौर पर दूर हो जायेंगे। समस्या जब एक निश्चित स्तर तक पहुँच जाती है तब कानूनी सोच एक पक्षाघात को प्रेरित करती है जो लोगों को घटनाओं के अर्थ तथा आकार को देखने से रोकता है।

जानकारी की प्रचुरता के बावजूद, या शायद इसी की वजह से, पश्चिम को वास्तविकता को, उसके सही स्वरूप में समझने में कठिनाई हो रही है। कुछ अमेरिकी विशेषज्ञ, बचकानी भविष्यवाणी कर रहे हैं कि वे विश्वस्त हैं कि अंगोला, सोवियत यूनीयन का वियतनाम 1 बन जायेगा अथवा अफ्रीका में क्यूबा के अभियानों को अमेरिका द्वारा क्यूबा के प्रति विशेष शिष्टाचार द्वारा रोकना ही सर्वश्रेष्ठ तरीका होगा। एकतरफा निरस्त्रीकरण आरम्भ करने की, केनन की अपने देश को दी गई सलाह इसी श्रेणी में आती है। काश कि आप जानते कि क्रेमलिन के सबसे युवा अधिकारी आपके राजनीतिक सिद्धहस्तों पर कैसे हँसते हैं। जैसे फिडेल कास्त्रो जो अपने सैन्य दलों

को अपने देश से हर रोमांचक अभियान हेतु आपके एकदम नज़दीक भेजकर, स्पष्ट रूप से संयुक्त राज्य अमेरिका का तिरस्कार करता है।

हालाँकि विएतनाम युद्ध को समझने की विफलता के रूप में एक बहुत क्रूर गलती हुई है। कुछ व्यक्ति चाहते थे कि ईमानदारी से सभी युद्ध जल्दी से जल्दी समाप्त कर हो जायें। कुछ का मानना था कि वियतनाम या कम्बोडिया में राष्ट्रीय या साम्यवादी आत्म-निर्धारण के लिये स्थान होना चाहिये, जिसे आज हम विशेष स्पष्टता के साथ देख पाते हैं। परन्तु संयुक्त राज्य अमेरिका के युद्ध विरोधी अभियान के सदस्य, उन सुदूर पूर्वी देशों के साथ विश्वासघात करने, एक नरसंहार और वहाँ के लगभग 30 करोड़ लोगों पर कष्ट थोपने में सम्मिलित हो गये। क्या उन आश्वस्त शांतिवादियों को वहाँ से आने वाली दर्दनाक कराहें सुनाई देती हैं? क्या वे आज इसकी जिम्मेदारी लेते हैं? और अथवा वो इन्हें सुनना पसंद नहीं करते?

अमेरिकी बुद्धिजीवी वर्ग ने अपनी दिलेरी खो दी है और इसके परिणाम स्वरूप खतरा संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के और निकट आ गया है किन्तु इसके प्रति कोई दृष्टि नहीं है। आपके अदूरदर्शी राजनीतिज्ञों ने, जिन्होंने जल्दबाजी में वियतनाम के आत्मसमर्पण पर हस्ताक्षर किये, ऐसा लगता है उन्होंने अमेरिका को एक राहत भरी साँस लेने का अवसर दिया है, हालाँकि, अब सौ गुणित वियतनाम आपके ऊपर झुक रहे हैं। वो छोटा सा वियतनाम आपके लिये राष्ट्र के साहस को गतिशील करने का एक अवसर तथा एक चेतावनी था। परन्तु अगर एक सम्पूर्ण विकसित अमेरिका, एक आधे साम्यवादी छोटे से देश से वास्तविक रूप से हार गया तब भविष्य में पाश्चात्य देश कैसे दृढ़ता से टिके रहने की आशा कर सकते हैं?

मुझे पहले ही यह कहने का अवसर मिल चुका है कि 20 वीं शताब्दी के पाश्चात्य लोकतंत्र ने, एक शक्तिशाली महाद्वीपीय गठबंधन, की सहायता व सुरक्षा के के बिना, जिसके दर्शन और विचारधारा पर उसने कोई प्रश्न नहीं किये, की सहायता व सुरक्षा के बिना कोई बड़ा युद्ध नहीं जीता है। द्वितीय विश्वयुद्ध में हिटलर के विरुद्ध, उस लड़ाई को अपनी सेनाओं के द्वारा जीतने की बजाय, जो कि, इसके लिए निरापद रूप से पर्याप्त थी, पाश्चात्य लोकतंत्र ने एक और शत्रु को पैदा कर लिया, जो कि और बदतर साबित हुआ। क्योंकि हिटलर के पास कभी इतने लोग और संसाधन नहीं थे, न ही उसने कोई आकर्षक योजना प्रस्तावित की अथवा उसके सोवियत गणराज्य की तरह पश्चिम में बड़ी संख्या में समर्थक भी नहीं थे। वर्तमान में, कुछ पाश्चात्य ध्वनियाँ पहले ही अगले विश्व संघर्ष में, होने की स्थिति में एक तीसरी शक्ति की आक्रामकता से, सुरक्षा की बात कर रही हैं। इस स्थिति में चीन ढाल बनेगा। पर मैं संसार में किसी भी देश के लिये ऐसे परिणाम की कामना नहीं करूँगा। पहली बात तो यह है कि यह फिर से आसुरी शक्तियों के साथ एक खराब गठबंधन होगा, इसके अतिरिक्त यह संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के लिये राहत की बात हो सकती है परन्तु जब बाद में चीन अपने अरबों लोगों के साथ अमेरिकी हथियारों से लैस होकर वापसी करेगा तब स्वयं अमेरिका, हमारे समय के कम्बोडिया के समान, नरसंहार का शिकार बनेगा और फिर भी कोई भी हथियार, चाहे वह कितना भी शक्तिशाली क्यों न हो, पश्चिमी देशों की तब तक सहायता नहीं कर सकता जब तक वे अपनी खोई हुई इच्छाशक्ति फिर से प्राप्त नहीं कर सकते। मनौवैज्ञानिक कमजोरी की स्थिति में, हथियार, आत्मसमर्पण करने वाले पक्ष के लिये अनावश्यक बोझ बन जाते हैं। स्व रक्षा हेतु मृत्यु के लिये भी तैयार रहना चाहिये; किन्तु (वस्तु-परक सकुशलता) के पंथ के रूप में विकसित समाज में ऐसी तत्परता बहुत कम ही होती है। तब सिर्फ रियायतों, कुछ समय हासिल करने के प्रयासों तथा विश्वासघातों के अतिरिक्त और कुछ नहीं बचा। इस प्रकार शर्मनाक बेलग्रेड सम्मेलन में, आज़ाद पश्चिमी राजनयिकों में, अपनी कमजोरी में, उस सीमा पर समर्पण कर दिया जहाँ हेलसिंकी वॉचग्रुप के गुलाम सदस्य अपनी जीवन न्यौछावर कर रहे थे।

पाश्चात्य सोच रूढ़िवादी हो गयी है। दुनिया हर हाल में दुनिया की स्थिति में यथास्थिति बनी रहनी चाहिये, कोई बदलाव नहीं होना चाहिये। यथास्थिति बनाये रखने वाला यह कमजोर करने वाला दु:स्वप्न, अपने विकास के अंत (चरम) पर पहुँच चुके समाज का, लक्षण है। परन्तु कोई अंधा ही यह नहीं देख सकेगा कि अब महासागर पश्चिम के नहीं रहे और इसके प्रभुत्ववाली भूमि भी सिकुड़ती जा रही है। दो तथाकथित

विश्वयुद्ध (वे कभी भी विश्व स्तर पर नहीं थे, अभी तक नहीं) का अर्थ सही अर्थों में लघु प्रगतिशील पश्चिमी देशों का आंतरिक आत्मविनाश थे जिसने इस प्रकार अपना स्वयं का अंत तय कर लिया। अगला युद्ध (जो कि एक परमाणु युद्ध नहीं होना चाहिये, और मुझे भरोसा है। यह नहीं होगा) शायद पाश्चात्य सभ्यता को सदा के लिये दफ्न कर देगा।

इतने बड़े खतरे के सामने होते हुये, इतने शानदार ऐतिहासिक मूल्यों के स्वतंत्रता प्राप्ति एवं उसके प्रति समर्पण के इतने उच्च स्तर पर, पहुँचकर अपनी स्वयं की सुरक्षा की इच्छा को इस हद तक खो देना आखिर कैसे सम्भव है?

शक्तियों का यह प्रतिकूल संबंध कैसे पैदा हुआ? पश्चिम अपनी विजय यात्रा से गिरकर वर्तमान बीमारी की ओर कैसे आये? क्या इसकी प्रगति की राह में घातक मोड़ तथा दिशाहीनता थे? ऐसा तो नहीं लगता। पश्चिम सामाजिक स्तर पर अपनी स्वनिर्धारित मंशा और उत्कृष्ट तकनीकी विकास की मदद से प्रगति करता रहा और अचानक ही वह इस वर्तमान कमजोरी की स्थिति में आ गया।

इसका अर्थ यह है कि त्रुटि मूल में होनी चाहिये, विगत शताब्दियों के मानवीय सोच के आधार में। मैं दुनिया के प्रचलित पाश्चात्य दृष्टिकोण का उल्लेख कर रहा हूँ, जो पहली बार पुनर्जागरण के दौरान पैदा हुआ था और फिर इसके ज्ञान प्राप्त करने की अवधि में इसने राजनीतिक अभिव्यक्ति प्राप्त की थी। यह सरकार और सामाजिक विज्ञान का आधार बना तथा इसे तर्कसंगत मानवतावाद अथवा मानवतावादी स्वायत्तता के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। व्यक्ति के ऊपर किसी भी उच्च शक्ति से घोषित तथा लागू स्वायत्तता इसे मानव केंद्रितता भी कहा जा सकता है जिसमें मनुष्य को हर उपलब्ध वस्तुओं के केंद्र में देखा जाता है।

पुनर्जागरण द्वारा प्रस्तुत किया गया मोड़ ऐतिहासिक व आवश्यक रूप से अपरिहार्य था। मध्य युग का थककर स्वाभाविक रूप से अंत हो गया था और वह आध्यात्मिकता के पक्ष में मनुष्य की भौतिक प्रकृति का एक असहनीय निरंकुश दमन बन गया था। तब, हालाँकि, हमने आत्मा की ओर से पीठ फेर ली और अत्यधिक व अनुचित उत्साह के साथ भौतिकता को गले लगा लिया। इस नये दृष्टिकोण ने, जिसने हम पर अपना मार्गदर्शन थोप दिया था। मनुष्य के भीतर निहित बुराई के अस्तित्व को स्वीकार नहीं किया और न ही इसे पृथ्वी पर सुख प्राप्त करने के बढ़कर कोई कार्य दिखा। इसने आधुनिक पाश्चात्य सभ्यता को उस खतरनाक प्रकृति पर आधारित कर दिया जो मनुष्य और उसकी भौतिक आवश्यकताओं को पूज्य मानती है। भौतिक रूप से अच्छे रहने तथा भौतिक वस्तुओं का संचय करने के अतिरिक्त सब कुछ, सभी अन्य मानवीय आवश्यकतायें तथा एक सूक्ष्म और उच्चतर प्रकृति की विशेषतायें, राज्यों तथा समाजों के ध्यान के क्षेत्र से बाहर हो गयीं, जैसे कि मानव जीवन का कोई और इससे श्रेष्ठ अर्थ नहीं हो। इसने हमें बुराई की पहुँच तक ला दिया तथा जिसका अब एक स्वतंत्र और निरंतर प्रवाह है। केवल स्वतंत्रता मनुष्य के जीवन की सभी समस्याओं का हल नहीं है, बल्कि यह तो कभी-कभी कई नई समस्यायें जोड़ती है।

हालाँकि, प्रारंभिक लोकतंत्रों में, जैसा कि इसके जन्म के समय अमेरिकी लोकतंत्र में भी था, सभी व्यक्तिगत मानवाधिकार दिये गये क्योंकि मनुष्य ईश्वर की रचना है। अर्थात् व्यक्तियों को सशर्त स्वतंत्रता यह मानते हुये प्रदान की गई कि यह उसका स्थाई धार्मिक दायित्व है। ऐसी थी पूर्ववर्ती हजारों वर्षों की विरासत। दो सौ और यहाँ तक कि केवल 50 वर्षों पूर्व तक, अमेरिका में, यह लगभग असंभव सा लगता था कि एक व्यक्ति को केवल उसकी प्रवृत्ति या सनक की संतुष्टि हेतु असीम स्वतंत्रता दी जा सकती है। तदनंतर, हालाँकि यह सारे प्रतिबंध सम्पूर्ण पश्चिम से उठा लिये गये, दया और बलिदान के विशाल भंडार से परिपूर्ण सदियों की नैतिक ईसाई विरासत से पूर्ण स्वतंत्रता मिली। राज्य प्रणालियाँ तेजी से तथा सम्पूर्ण रूप से भौतिकतावादी होती जा रही थीं। पश्चिम अंततः वास्तविक रूप से मानवाधिकार लागू करता गया, कभी-कभी अत्यधिक रूप से भी, किंतु व्यक्ति की ईश्वर तथा समाज के प्रति जिम्मेदारी की भावना शनैः-शनैः मद्धम से मद्धमतर होती चली गयी। पिछले दशकों में, पश्चिमी दृष्टिकोण और सोच का विधि सम्मत स्वार्थी पहलू अपने अंतिम आयाम तक पहुँच गया है। तथा दुनिया एक कठोर आध्यात्मिक संकट

तथा एक राजनैतिक गतिरोध में पिस रही है। अंतरिक्ष पर विजय समेत तमाम गौरवपूर्ण तकनीकी उपलब्धियाँ, 20 वीं शताब्दि की नैतिक विपन्नता की भरपाई नहीं कर सकतीं जिसकी परिकल्पना कोई नहीं कर सकता था, यहाँ तक कि उन्नीसवीं शताब्दी के अंत-अंत तक भी।

मानवतावाद जैसे-जैसे अपने विकास में अधिकाधिक भौतिकवादी होता गया, इसने अपने आपको समाजवाद एवं तदुपरांत साम्यवाद के लिये तमाम अनुमानों और छल कपट हेतु तेजी से सुलभ कर लिया इतना कि कार्ल मार्क्स ये कहने में समर्थ हुये कि 'साम्यवाद में मानवतावाद सम्मिलित है।'

यह कथन पूरी तरह से बेतुका नहीं कहा जा सकता। कोई भी एक निराशाजनक मानवतावाद तथा किसी भी तरह के समाजवाद की नींव में एक ही तरह के पत्थरों को देख सकता है। अंतहीन भौतिकतावाद, धर्म तथा धार्मिक उत्तरदायित्वों से मुक्ति, जो कि साम्यवादी शासन में धर्म विरोधी तानाशाही के चरम तक पहुँच जाती है, सामाजिक संरचना पर एकाग्रता, एक वैज्ञानिक प्रतीत होने वाली पद्धति के साथ। यह सब 18 वीं शताब्दी की ज्ञान प्राप्ति तथा मार्क्सवाद की विशिष्टता है। यह मात्र संयोग नहीं है कि साम्यवाद की सभी अर्थहीन प्रतिज्ञायें और शपथें आदमी और उसकी सांसारिक खुशियों के बारे में है, अंग्रेजी में उसके हिज्जे के प्रथम अक्षर बड़े एस के साथ। प्रथम दृश्यतया यह एक कुरूप समानांतर प्रतीत होता है: आज के पूर्व तथा आज के पश्चिम की सोच और जीवन शैली में सर्वनिष्ठ लक्षण? परंतु भौतिकतावादी विकास के पीछे का तर्क ऐसा ही है।

परस्पर संबंध भी ऐसा है कि भौतिकवाद के प्रवाह की परिणीति, जो कि ज्यादातर बायीं ओर है, हमेशा मजबूत अधिक आकर्षक और विजयी होकर होती है क्योंकि यह अधिक सुसंगत होती है। मानवतावाद, इसकी ईसाई विरासत के बिना इस प्रतिस्पर्धा में नहीं टिक सकता। हम विश्व स्तर पर इस प्रक्रिया को पिछली शताब्दियों तथा विशेष रूप से पिछले दशक में देखें तो स्थिति शीघ्रता से नाटकीय हो रही है। उदारतावाद के कट्टरपंथ ने अनिवार्य रूप से विस्थापित कर दिया, कट्टरवाद को समाजवाद के आगे आत्मसमर्पण करना पड़ा तथा समाजवाद कभी साम्यवाद का विरोध नहीं कर सका। पूर्व में साम्यवादी साम्राज्य बड़ी संख्या में पश्चिमी बुद्धिजीवियों के उत्साहपूर्वक समर्थन के कारण खड़ा और विकसित हो सका जिन्होंने इससे एक लगाव महसूस किया और साम्यवाद के अपराधों को अनदेखा किया। और जब वे अधिक देर तक ऐसा न कर सके तो उन्होंने इसे न्यायोचित ठहराने का प्रयास किया। हमारे पूर्व देशों में, साम्यवाद को एक सम्पूर्ण वैचारिक हार का सामना करना पड़ा, यह यहाँ शून्य और शून्य से भी कम शेष है। किंतु पश्चिमी बुद्धिजीवी अभी तक इसे रुचि और सहानुभूति से देखते हैं। और यही चीज पश्चिम को पूर्व का सामना करने के लिये अत्यधिक कठिन बना देती है।

मैं यहाँ विश्व युद्ध की बर्बादी या कि इसके कारण समाज में आये परिवर्तनों के प्रकरणों की समीक्षा नहीं कर रहा हूँ। जब तक कि हम हर प्रात: एक शांतिपूर्ण रोशनी में जागते हैं, तब तक हमें अपना जीवन जीना है। हालाँकि एक आपदा है जो कि काफी समय से चल रही है। मैं एक निराशावादी तथा अधार्मिक, मानवतावादी चेतना की आपदा के बारे में बात कर रहा हूँ।

ऐसी चेतना के लिये, पृथ्वी पर सब को आँकने के लिये मनुष्य ही कसौटी है-अपूर्ण मनुष्य, जो कभी भी अभिमान, स्वार्थ, ईर्ष्या, घमंड और दर्जनों अन्य दोषों से मुक्त नहीं है। हम अब उन गलतियों के परिणाम देख रहे हैं जिन पर हमने इस यात्रा के प्रारंभ से ध्यान नहीं दिया। पुनर्जागरण से लेकर अपने दिनों तक के सफर में हमने अपने अनुभवों को तो समृद्ध किया किंतु हमने सर्वोच्चय संपूर्ण ईकाई की अवधारणा को खो दिया जो कि हमारे जुनून और हमारी गैर जिम्मेदारी को नियंत्रित करती थी। हमने राजनैतिक और सामाजिक सुधारों से अत्यधिक आशा लगा रखी थी, केवल यह जानने के लिये कि हम अपनी सबसे कीमती सम्पत्ति अपने आध्यात्मिक जीवन से वंचित किये जा रहे हैं। पूर्व में इसे सत्ताधारी दलों के व्यवहार और चालबाजियों ने नष्ट किया है तो पश्चिम में, व्यावसायिक हितों के द्वारा इसका दम घोंटा गया है। यही वास्तविक संकट है। दुनिया में पड़ी हुई दरारें, इसके मुख्य वर्गों को ग्रसित रोग की समानताओं से कहीं कम भयावह हैं।

यदि मानवतावाद यह घोषित करने के लिये सही था कि व्यक्ति का जन्म केवल सुखी होने के लिये होता है तो वह मर जाने के लिये जन्म नहीं लेता। चूँकि उसका शरीर मृत्यु के लिये अभिशप्त है, पृथ्वी पर आने का उसका उद्देश्य स्पष्ट रूप से अधिक आध्यात्मिक प्रकृति का होना चाहिये। यह रोजमर्रा की जिन्दगी का अनर्गल प्रमोद नहीं हो सकता। यह भौतिक वस्तुओं को प्राप्त करने के सर्वोत्तम तरीकों की खोज और फिर खुशी-खुशी उनमें से अधिकतर को प्राप्त कर लेना नहीं हो सकता। यह एक स्थायी, गंभीर कर्तव्य का निर्वाह होना चाहिये ताकि व्यक्ति की जीवन यात्रा नैतिक विकास का अनुभव बन सके, ताकि व्यक्ति जीवन के अंत में उस इंसान से बेहतर इंसान बन सके जिस रूप में उसने जीवन यात्रा आरंभ की थी। व्यापक मानवीय मूल्यों की तालिका की समीक्षा करना अत्यंत आवश्यक है। इसकी वर्तमान त्रुटिपूर्णता आश्चर्यजनक है। यह संभव नहीं कि राष्ट्रपति की कार्य निष्पादन का मूल्यांकन इस प्रश्न तक सीमित कर दिया जाए कि देश में कोई कितना पैसा कमाता है या फिर देश में गैसोलीन की उपलब्धता। केवल स्वैच्छिक, स्वप्रेरित आत्म संयम ही मनुष्य को भौतिकतावाद की विश्वधारा से ऊपर उठा सकता है।

आज अपने आपको आत्मज्ञान के कठोर परम्परागत तरीके के सूत्र से जोड़ना पुरानी स्थिति में वापस लौटने की तरह होगा। सामाजिक हठधर्मिता हमें हमारे समय की परीक्षाओं के सामने पूरी तरह से असहाय बना देगी। उस स्थिति में भी कि जबकि हम युद्ध के विनाश से बच जायें, हमें अपने जीवन को परिवर्तित करना होगा ताकि हम जीवन को स्वविनाश से बचा सकें। हम मानव जीवन और समाज की आधारभूत परिभाषाओं को दोहराने से बच नहीं सकते। क्या यह सही है कि व्यक्ति ही सबसे ऊपर है? क्या उसके ऊपर कोई और श्रेष्ठ आत्मा नहीं है? क्या यह सही है कि मनुष्य के जीवन और समाज की गतिविधियों को सर्वप्रथम भौतिक विस्तार के द्वारा ही निर्धारित करना चाहिये? क्या इस तरह के विस्तार को हमारी आध्यात्मिक अखंडता को हानि पहुँचाने की अनुमति है?

यदि दुनिया अपने अंत तक नहीं पहुँची है, तो यह इतिहास के एक महत्त्वपूर्ण मोड़ पर पहुँच गयी है जो कि मध्य युग से पुनर्जागरण की ओर मुड़ने वाले मोड़ के समान ही महत्त्वपूर्ण है। यह हमसे एक आध्यात्मिक उत्थान की माँग करेगी। हमें दृष्टि की एक नवीन ऊँचाई, जीवन के एक नये स्तर तक उठना होगा जहाँ हमारी भौतिक प्रकृति मध्य युग की तरह शापित नहीं होगी परंतु इससे भी महत्त्वपूर्ण यह है कि हमारा आध्यात्मिक अस्तित्व आधुनिक युग की तरह कुचला नहीं जा सकेगा।

यह उद्गम मानव शास्त्र के अगले चरण पर चढ़ने के समान होगा। पृथ्वी पर किसी के पास अब ऊपर की ओर जाने के अतिरिक्त और कोई मार्ग शेष नहीं है।

एच.आई.जी., 72,
हाउसिंग बोर्ड कॉलोनी, बागमुगलिया,
एक्सटेंशन, भोपाल-462043 (म.प्र.)
मो.- 9425079134

रचनाकारों से अनुरोध

- *मौलिक तथा अप्रकाशित-अप्रसारित रचनाएँ ही भेजें।*
- *रचना फुल स्केप कागज पर साफ लिखी हुई अथवा शुद्ध टंकित मूल प्रति में भेजें।*
- *रचनाकार/लेखक अपना पूरा परिचय, पता, पिनकोड, फोन नंबर एवं फोटो साथ भेजें।*
- *डाक टिकट लगा लिफाफा साथ होने पर ही अस्वीकृत रचना वापस भेजी जा सकती है। अतः लेखकों से निवेदन है कि लेख की एक प्रति अपने पास अवश्य रखें।*
- *'अक्षरा' में प्रकाशन हेतु रचना भेजने के बाद उसे अन्यत्र प्रकाशन हेतु न भेजें। यदि अन्यत्र प्रकाशित हो रही हो तो कार्यालय को अवश्य सूचित करें।*

लोक परंपरा में फागुन

– रामशंकर भारती

जन्म – 13 जनवरी 1960।
जन्मस्थान – जालौन (उ.प्र.)
शिक्षा – एम.ए., पीएच.डी.।
रचनाएँ – छः पुस्तकें प्रकाशित कतिपय सम्पादित।

हमारे यहाँ ऋतु पर्व जीवन की व्यापकता निर्मित करने के उद्देश्य से संचित हैं। इन्हीं ऋतु पर्वों के माध्यम से मनुष्य की संवेदनाओं को व्यापकता मिलती है, उसका सौंदर्यबोध परिष्कृत होता है एवं नैतिक वृत्ति पवित्र होती है। प्रकारांतर से यह आनंदगंधी ऋतु पर्व हमारी सांस्कृतिक चेतना को अनुप्राणित, विकसित-मार्जित करने के सर्वोत्तम माध्यम हैं। भारतीय संस्कृति के मूल में यहाँ के लोकपर्वों, लोकोत्सवों की एक विराट परंपरा समाहित है। संस्कृति को जानने के लिए मनुष्य ने चिरकाल से प्रकृति से अपने संबंध स्थापित किये हैं। क्योंकि प्रकृति अंतश्चेतना की अनुभूति होती है जिससे आत्मा में आनंद और तन्मयता उत्पन्न होती है।

जब प्रकृति हँसती है तो समूचा संसार हँसता है। इसी हँसने और हँसाने का नाम है वसंत। यह वसंत दुंदुभी बजाकर भी आता है और दबे पाँव, चुपके से भी। वसंत के आने की आहट प्रकृति रूपसी का शृंगार कर लेना भर नहीं है बल्कि शृंगार को जीना है, उसे आत्मसात करना है। आम्र मंजरी की मादक गंध, मधमाती-इतराती सुरभित हवाएँ, ठहरती-बहती नदी की चंचल धाराएँ, बहुरंगी-बहुवर्णी पुष्प-गुल्म, प्रेमातुर विटप-लताएँ, नव कोपल-नव पात-पल्लव-हरीतिमा, मधुकर का गुंजार, कोयल की कूक, पक्षियों के कलरव, वन-प्रांतर में विहँसते पलाश, मुस्कुाते किशंकु के फूल, खुशबुओं के उड़ते बादल, घूँघट से झाँकता चाँद, हथेली की मेहँदी, पाँवों का महावर, लहलहाते सरसों-अलसी के खेत, गेहूँ की गदरायी बालियाँ, अरहर की झुक-झुक जाती डालियाँ और फगुनाहट से बौराया मन जब हँसता है तब वसंत साकार होता है।

वसंत का यों साकार होना, सप्राण-सवाक् होना ही जीवन की जीवंतता है। वस्तुतः जीवन की यही जीवंतता ही वसंत है। वरना 'बस-अंत' है। जीवन के जितने भी पक्ष हैं, संदर्भ हैं उन सभी को नवीन ऊर्जा से ओतप्रोत करता है वसंत। चतुर्दिक पूर्णता ही दृष्टिगोचर होती है। कहीं भी कोई अपूर्ण नहीं, कोई रिक्त नहीं, कोई अतृप्त नहीं। सभी संतुष्ट, सभी तृप्त यानी व्यष्टि से लेकर समष्टि में संपूर्णता भर देता है वसंत। वसंत का अर्थ-रिक्तता नहीं, पूर्णता है। जड़ता नहीं, सजीवता है। द्वेष नहीं, राग है वसंत। क्षण भंगुरता नहीं, शाश्वतता है वसंत। वासना नहीं, प्रेम है वसंत। सच में सृष्टि और सर्जन के मध्य सेतु का कार्य यही वसंत करता है। यही अभीष्ट भी है वसंत और फागुन का।

सौंदर्य प्रकृति का प्राण तत्व है। हम उसे फूलों की तरह खिलने दें, अपने मन को उसकी सोंधी सुगंध से भरने दें, अपने कानों में वह स्वर पहुँचने दें जो अपने भीतर-भीतर प्यार की उष्मा लेकर आना चाहता है। हम अपनी आँखों में उसका आकाश छा जाने दें, जहाँ जिंदगी अपने पंख खोल कर उड़ रही होती है। हम रोम-रोम उस स्पर्श से भर जाने दें, जो हमें पारस बनाए रखने को आकुल है। बस इसी अकुलाहट का नाम है फागुन। जो रीतने नहीं देता है, छूटने नहीं देता है, टूटने भी नहीं देता है। परिपूर्ण बनाए रखना फागुन की अपनी विवशता है और विशेषता भी। फागुन को उत्पाती कहा गया है। किंतु फागुन का जो उत्पात है वह पीड़ा से मुक्ति देने वाला है, ठूँठ में भी नई आकांक्षाओं के किसलय उगाना, फागुन का ही सृजन धर्म है। आग लगाने का जो मीठा आक्रोश है, उसमें प्रेमसिंधु हहरहा रहा है।

वसंत आगमन की अनूठी कथा :- भारतीय पंचाग ने वर्ष के अहोरात्र को बारह मासों में विभक्त किया है। चैत्र मास वर्ष का प्रथम मास है और फाल्गुन अंतिम। चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक, आगहन, पौष, माघ और फाल्गुन इन बारह मासों में छः ऋतुओं का समावेश है। इन छः ऋतुओं का द्विमासिक विभाजन भी इस प्रकार है- वसंत (चैत्र-वैशाख) ग्रीष्म (ज्येष्ठ-आषाढ़) वर्षा (श्रावण-भाद्रपद) शरद (आश्विन-कार्तिक) हेमंत (आगहण-पौष) शिशिर (माघ-फाल्गुन)।

ऋतुचक्र के अनुसार वसंत ऋतु का आगमन तो मधु-माधव (चैत्र-वैशाख) मास से होता है। किंतु वसंत ऋतुराज जो ठहरा, राजा है, सो वह बेरोकटोक माघ में ही आ धमकता है। आम्र की मादक मंजरियों, अशोक के रक्त किसलयों और पुष्पों के साथ सर्जनलोक की महादेवि माँ सरस्वती के महाअवतरण पर्व 'श्रीपंचमी' के स्वागत-सत्कार में अपने संपूर्ण वैभव को न्योछावर करने आ जाता है। माँ सरस्वती कृपा से से ही उसका अवतरण होता है। इसलिए श्रीपंचमी को 'वसंत पंचमी' के नाम से जग-प्रसिद्धि मिली है। ऐसी कविमान्यता है या कविसिद्धि है कि अशोक वृक्ष वसंत पंचमी के दिन सुंदर तरुणियों के आलता रचे (आलक्तक)-रंजित महावर-रँगे झुनझुनाते नूपरों वाले चरणों के प्रहार से पुष्पित हो उठता है। किंतु एक सत्य यह भी है कि-'कुमारसंभवम्' के अनुसार भगवान शिव का तप भंग करने के लिए कामदेव द्वारा असमय में उपस्थित किए गए वसंतकाल में तो अशोक अपने कोमल किसलयों के साथ विभिन्न ऋतु गंध लेकर उपस्थित हो गया था और नवयौवनाओं के चरणतादन के बिना ही फूलने लगा था। महाकवि कालिदास जी के सौंदर्यबोधी शब्दों में देखें -

असूतसद्यः कुसुमान्यशोकः स्कन्धात् प्रभृत्येव सपल्लवानि।
पादेन् नपैक्षत सुंदरीणां सम्पर्कमासिञ्जत-नूपुरेण।।

पौराणिक काल में वसंत का पर्व मदनोत्सव और कामोत्सव के नाम से सोल्लास मनाए जाने की परंपराएँ रहीं हैं। यह दिन काम के अशरीरी देवता कामदेव के पूजन का भी दिन है। अशरीरी होने के कारण कामदेव को अनंग भी कहा गया है। पौराणिक कथाओं में कामदेव के धनुष के विषय में कहा गया है कि ...

'कामदेव का धनुष गन्ने का बना है जिस पर मधुमक्खियों के शहद की डोरी लगी है। वह निःशब्द मारक प्रहार करता है। जिन पंचसर अर्थात् पाँच बाणों से कामदेव ने शिवजी की समाधि भंग की थी उनके नाम इस प्रकार हैं-अशोक पुष्प, आम्रमंरी, अरविंद (श्वेत कमल), नवमालिका (चमेली के पुष्प) और नीलोत्पल। इन बाणों के दूसरे प्रतीकात्मक नाम भी विचित्र हैं-

मारण, स्तंभन, जृम्भन, शोषण, मन्मथन (उन्मादन)। कामदेव-वसंत-प्रेम त्रिगुणात्मक है और त्रिगुणातीत भी।

प्रपंची पलाश :- यह पलाश भी बड़ा प्रपंची है। इसे ही टेसू, ढाक और किंशुक कहते हैं। 'ढाक के तीन पात' वाली कहावत की भी अद्भुत लीला है। इसकी तीन पत्तियों का समूह सदैव इकट्ठा रहता है, एक साथ रहता है और हर स्थिति में समान रहता है, एकसंग रहता है, एकरस रहता है। इसीलिए इसे 'ढाक के तीन पात' कहा जाता है। यहाँ थोड़ी-सी चर्चा 'किंशुक' नामकरण की भी करना लाजिमी है। टेसू के फूलों को किंशुक कहा जाता है। आप इसके फूलों के ऊपरी भाग को गौर से निहारिए-अवलोकन कीजिए... तो आपको शुक (तोता) की लाल चोंच-सी दिखाई देती है। इसीलिए टेसू के फूल का एक नाम 'किंशुक' पड़ा।

पतझड़ में मृतप्रायः से सूखी लगने वाली इस की शाखाओं में लाल-गुलाबी रंगों के पुष्प-गुच्छों में जैसे नवजीवन फूट पड़ता है। यह आपाद-मस्तक मनभावन सुमनों से लद जाता है। जिसके प्रेम में, अनुराग में रंगे पलाश का रोम-रोम हँस उठता है।

ब्रजभाषा में 'केसु' और खड़ीबोली में 'टेसू' इसी के तद्भव रूप में प्रयोग होते हैं। प्रकृति प्रेमी कवियों को किंशुक बड़े ही आकर्षक और कामोद्दीपक प्रतीत होते हैं। कालिदास ने उन्हें आग की लपटों में उपमित किया है तो गीतगोविन्द के रचयिता महाकवि जयदेव ने किंशुक के फूलों को कामदेव के पैने नाखूनों से उपमा दी है जो युवाओं के हृदयों को विदीर्ण करते हैं -

'युवजन हृदय -विदारण-मनसिज नखरुचि किंशुक-जाले :- पद्मावत के रचनाकार सूफी महाकवि मलिक मुहम्मद जायसी का मानना है कि कुसुमधन्वा कामदेव के तीखे तीरों से विद्ध विरही जनों के क्षत-विक्षत अंगों से जो रक्त की धारा निकली है उसी में डूबकर वनस्पतियों के पल्लव और पलाश के पुष्प लाल हो उठे हैं -

पंचम विरह पंच सर गारै। रकत रोइ सगरो वन ढारै।।
बूढ़ि उठे सब तरुवर पाता। भींजि मजीठ टेसू वन राता।।

सेनापति जी की बात भी सुन लीजिए : वे कह रहे हैं - किंशुकों के वृन्तों से जुड़ी घुण्डियाँ श्यामवर्ण की होती हैं- जिन पर लाल-लाल पंखुड़ियाँ ऐसे शोभायमान लगती हैं जैसे किंशुकों को काले रंग में रँग कर लाल स्याही में डुबो दिया गया हो -

लाल-लाल केसू फूलि रहे हैं बिसाल संग
स्याम रंग भेंटि मानो मसि में मिलाए हैं।

नीचे से काले और ऊपर से लाल किंशुकों को देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानो विरहीजनों को जलाने के लिए कामदेव ने ढेर सारे कोयले प्रज्ज्वलित कर लिए हैं, जो आधे तो सुलगकर दहकने लगे हैं और आधे अभी सुलग नहीं पाए हैं -

आधे अनसुलगि सुलगि रहे आधे मानो
विरहीदहन काम क्वैला परचाये हैं।।

नीचे के घुंडीवाले काले हिस्से की बिना सुलगे कोयले से और ऊपर के लाल दलों की दहकते अंगारों से उत्प्रेक्षा कितनी अनूठी बन पड़ी है! कहीं ये कोयले पूरी तरह प्रज्ज्वलित हो उठे, तो बेचारे विरहणियों का क्या होगा? ब्रजांगनाएँ अपने प्रियतम कृष्ण को मथुरा नगर से ब्रज की जन्मभूमि में लौट आने के लिए इन्हीं मादक रक्त पुष्पों के पुष्पित हो जाने के समाचार को अंतिम और अचूक संदेश के रूप में उद्धव के द्वारा प्रेषित करती हैं -

ऊधौ! यह सूधौ सो सँदेसो कहि दीजे भलो,
हमारे ह्याँ नाहिं फूले बन कुंज हैं।
किंसुक, गुलाब, कचनार और अनारन की,
डारन पै डोलत अंगारन के पुंज हैं।

धन्य हैं बुंदेलखण्डवासी सुकवि पद्माकर जी की लेखनी को।

बेचारा महुआ! :- वसंत के संदर्भ में कवियों ने अपनी मादक गंध से कोकिल को मद विह्वल कर सुरीली तान छेड़ने के लिए विवश कर देने वाली आम-मंजरियों की महिमा गाई है, लाल पुष्पों से लदे पलाश, अशोक और करणिकार ने उनकी दृष्टि को लुभाया है, मुग्ध किया है किंतु एक वृक्ष है बेचारा महुआ उसकी और लोगों को कम ध्यान गया है। चलिए इस वृक्ष की थोड़ी-सी चर्चा करता हूँ। यह जंगली वृक्ष मधूक के नाम से जाना जाता है। आदिवासियों-वनवासियों और गिरिवासियों की यह संपत्ति है। मधूक का वृक्ष ही महुआ कहलाता है। मधूक के फूल को ही महुआ कहते हैं। यह मधुर रस से लबालब भरे होते हैं। इनसे मदिरा बनाई जाती है जो वनवासियों की भोजन की भी आपूर्ति करती है। महुए की मदिर गंध समूचे वन प्रदेश को मादकता से भर देती है। चैत्र मास के दिनों में भिनसारे-सवेरे-सवेरे महुए के फूल प्रचुर मात्रा में झर कर पेड़ों के नीचे की भूमि को ढक देते हैं और जैसे सूर्य उदय होता है वनवासी महिलाएँ और बच्चे इन हल्के पीले फूलों को बीन कर टोकरियों में भरकर घर ले जाते हैं। महुओं के फूलते ही सतपुड़ा के प्रकृतिजीवी वनवासियों का सहज उल्लास समूह-नृत्य सामूहिक गायन और प्रकृति पर्व मनाने का उनका उत्साह-उमंग फूट-फूट पड़ता है। हमारे भवानी भाई अर्थात् कवि भवानी प्रसाद मिश्र प्रकृति संरक्षक रहे-प्रकृति प्रेमी रहे उन्होंने महुए को लेकर बहुत सुंदर चित्र खींचा है। उनकी कविता को हम यहाँ देखते हैं-

इन वनों के खूब भीतर चार मुर्गे चार तीतर
पालकर निश्चिंत बैठे विजिन वन के मध्य पैठे
झोपड़ी पर फूस डाले गोंड तगड़े और काले
जबकि होली पास आती सरसराती घास गाती
और वैसे लपकती मत्त करती वास आती
गूँज उठते ढोल इनके, गीत इनके बोल इनके
सतपुड़ा के घने जंगल! ऊँघते अनमने जंगल।

भवानी भाई ने सतपुड़ा के जंगलों के चित्र और वहाँ के आदिवासियों के जीवन का जीवंत चित्रण दोनों ही बड़े अनूठे ढंग से प्रस्तुत किया है।

हमारे भारतीय साहित्य में ऋतु पर्वों की अत्यंत विस्तार से चर्चा की गयी है। फिर वसंत तो ऋतुराज ठहरा उस पर

संस्कृत के साहित्याचार्यों से लेकर विभिन्न भारतीय भाषाओं और बोलियों में हमारे कवियों-लेखकों ने अपनी-अपनी आँख से वसंत को देखा है। आइए उन महाकवियों की आँखों से देखे हुए वसंत को हम अपनी वासंतिक आँखों से देखते हैं-

महाकवि रसिक विहारी की दृष्टि में वसंत तो वसुंधरा के कण-कण को दीप्ति की सिद्धि देना वाला अनुष्ठान है

बेलन बसंत ज्यों नबेलिन बसंत
वन बागन रंगरागन वसंत है।
कुंजन वसंत दिगपुंजन वसंत
अलिगुंजन वसंत चहुँ ओरन वसंत है।।
छैलन वसंत अरु फैलन वसंत
संग सैलन वसंत बहु गैलन वसंत है।।
रसिक बिहारी नैन सैनन में बैनन में
जितै अबलोकत तितै बरसै वसंत है।।

हम सभी उत्सव धर्मी संस्कृति के संवाहक हैं। उत्सव भारतीय लोकजीवन की आधारशिलाएँ हैं। लोकजीवन को मंगल प्रदान करते हैं। शस्य श्यामला भारत माता-धरती माता अन्नभंडार हमें देती है। ग्राम देवता जो कृषक हैं तथा उसके परिवार के अन्य सदस्य फसल पकने व कूटने के समय झूम-झूम कर कैसे आनंदित होकर गाते हैं। भोजपुरी में एक चित्र देखिए -

गेंहुआँ कटै चारउ ओर कै झूम-झूम नाचै किसनवाँ
मनवाँ उठैला हिलोर कै झूम-झूम नाचै किसनवाँ
नदिया किनारे कोयलिया पुकारे
पापी पिरतिया सुरतिया निहारे
भाग चलै अँगनवा की ओर कै झूम-झूम नाचै किसनवाँ
अमवाँ के पेड़ झमाझम झमकै
गोरी की बिंदिया चमाचम चमकै
खुल खुल जायै कंगनवाँ कै झूम-झूम नाचै किसनवाँ
ऐसे कदंबवा पै लल चौराए
दूजै सरसों के फूल बौराए
बेला महके अँगनवाँ कै झूम-झूम नाचै किसनवाँ

यह जो लोक रस है, लोक चेतना है, लोक अनुभूति है यही आनंद का आंतरिक अतिरेक है। जब तक अंत:करण अनुभूति के झरोखों के कपाट बंद रहेंगे तब तक वसंत उदास ही रहेगा। वसंत की अकूत संपदा का भोग वही कर सकता है जिसमें प्रकृति से जुड़ने की असीम अकुलाहट है। केवल घरों में गुलदान सजाने से वसंत को साकार नहीं किया जा सकता। वसंत को यदि सच में साकार करना है तो हमें सर्जन से जुड़ना होगा, प्रकृति से जुड़ना होगा। तभी वसंत सृजन का पर्व बनेगा। संसार में विशाल प्रकृति, पेड़-पौधे, वनस्पतियाँ, ऊँचे पर्वत, गहरा सागर, अनंत आकाश, लहरातीं नदियाँ, मनमोहक झरने, रंग-बिरंगे फूल और-न जाने कितने प्रकृति के विचित्र चित्र हैं, चरित्र हैं, रूप हैं, अनूप हैं वे सभी एक स्वर में, एक लय में एक ही संदेश देते हैं कि अपने मन को पवित्र करो और ऐसा लोक कार्य करो जो शिव की स्थापना के लिए समर्पित हो। लोकमंगलकारी हो। वसंत यही संदेश लेकर आता है हमारे द्वारे पर-फागुन की देहरी पर।

शिशिर के पतझार से अपर्णा हुई वनस्पतियों का तप पूर्ण हुआ। रक्त किसलयों में उनका यौवन और प्रस्फुटित पुष्पों में उनके हृदय का सहज उल्लास फूट पड़ा है। सुरभित सुमनों के हार लेकर वे सज-धजकर स्वागत के लिए प्रस्तुत हैं। कोकिल पंचम स्वर में प्रशस्ति गीत गा रहा है। गुंजारते मधुकर मंत्रोचार कर रहे हैं, शीतल मंद सुगंध पवन पंखा झलते हुए चल रहा है। चहचहाते पक्षियों की जयध्वनि से आकाश मुखर हो रहा है क्योंकि ऋतुराज वसंत अपने सहचर कुसुमायुध कामदेव के साथ पदार्पण कर रहा है। सूर्य के उत्तरायण होते ही रश्मियों में -किरणों में सुखद उष्णता गई है, प्रकृति के कण-कण से और वृक्ष-वल्लरियों के पोर-पोर से अल्हड़ यौवन की आह्लादिक मादकता छलक पड़ रही है, जिसके प्रभाव से सभी चेतन प्राणी मधुविह्वल हो उठे हैं, धवल चंद्र के भार से बोझिल पवन धीरे-धीरे चल रही है -

चाँदनी के भारन दिखात उनयो-सो चंद
गंध ही भारन बहत मंद-मंद पौन।

वसंत के अग्रदूत और हिंदी साहित्य के शिखर पुरुष माँ भारती के लाड़ले महाप्राण निराला कहते हैं -

लता-मुकुल-हार गंध-भार भर
वही पवन मंद-मंदतर
जागी नयनों में वन-यौवन की माया
सखि! वसंत आया।
महाकवि निराला की कितनी उदात्त कल्पना है!

वसंत में रात और दिन का परिणाम बराबर हो जाता है। शरीर के शीत का प्रकोप शांत हो जाता है और गर्मी का प्रारंभ न हो

पाने से वसंत ऋतु सर्वाधिक सुखद होती है। वसंत ऋतुराज हो जाता है। यह यौवन का, सौंदर्य का, आकर्षण का, आह्लादिकता का प्रेयस पर्याय है।

महाकवि कालिदास ऋतुसंहार में कहते हैं, जब वसंत आता है तो वृक्ष पुष्पित होकर वातावरण में अपनी हँसी और सुगंध बिखेरने लगते हैं। सरोवरों में कमल खिल जाते हैं। नवयुवतियों का यौवन उफान लेने लगता है। वायु सुवासित हो जाती है। शीत का प्रभाव कम पड़ने से सन्ध्याकाल सुखकर हो जाते हैं और दिन सुखद लगने लगते हैं। इस प्रकार वसंत में सब कुछ चारु से चारुतर हो जाता है सुंदरतम् हो जाता है। संस्कृत के महाकवि कालिदास अपने ऋतुसंहार में वसंत ऋतु का वर्णन बड़े विचित्र शब्दों में करते हैं –

द्रुमाः सपुष्पाः सलिलं सपद्मं / स्त्रियः सकामाः पवनः सुगन्धिः
सुखा प्रदोषा दिवसाश्च रम्याः / सर्वे प्रिये चारुतरं वसंते।

रीतिकालीन कवि पद्माकर के अनुसार भौरों की गुंजन में पहले की अपेक्षा कुछ अधिक मादक विशिष्टता आ जाती है। तरुणों का अल्हड़ यौवन उमड़ने-उड़ने लगता है और पक्षियों के कलरव में भी विशेष मादक मिठास भर जाती है। चलिए हम पद्माकर जी के बसंत को यहाँ ज्यों का त्यों उतारने की कोशिश करते हैं –

औरे भौतिक कुंजन में गुंजरित भौंर-भीर
औरे डौर झौरन में बौरन के ह्वै गए।
कहें पदमाकर सु औरे भाँति गलियान,
छलिया छबीले छैल औरे छबि छवै गए।।
औरे भाँति बिहँग समाज में अवाज होति,
अबै ऋतुराज के न आज दिन दवै गए।
औरे रस, औरे रीति, औरे राग, औरे रंग,
औरे तन औरे मन और वन ह्वै गए।

शृंगारी कवि हमारे बिहारीदास जी ने वसंत को लेकर बड़ी अनूठी बात कहदी है। मदिर गंधभार से अलसाए कुंज समीर को मतवाले हाथी के रूप में ने प्रस्तुत किया है। गुंजार करती भ्रमर पंक्ति जिसके गले में टुनुन-टुनुन करतीं घण्टियाँ हैं और जिसके कपोलों से पुष्पों का रस मधुरूपी जल बनकर चू रहा है। ऐसी विलक्षण कल्पना महाकवि बिहारी ही कर सकते हैं-

रनित भृंग घंटावली झरतत दान मधुनीर।
मंद-मंद आवत चल्यो कुंजर कुंज समीर।

इसी प्रकार कविवर देव ने वसंत की महाराज कामदेव के शिशु के रूप में बड़ी ही अनूठी और कमनीय कल्पना की है। उस शिशु राजकुमार वसंत को वृक्ष के पालने पर किसलयों की कोमल शैय्या पर सुलाया जाता है। रंग-बिरंगे फूलों का झबला उसके शरीर की शोभा में चार चाँद लगा देता है। पवन उसके पालने को झूलाता है। मयूर अपने मनोहर नृत्य द्वारा और शुक मधुर संभाषण करके उसका मनोरंजन करते हैं। कोयल सुरीले स्वर में उसे लोरी सुनाती है। कंजकली रूपी नायिका अर्थात् नागरी महिला लता रूपी साड़ी का पल्ला अपने सिर पर डालकर उस बच्चे की राई-नोन से नजर उतारती है। गुलाब के फूल सबेरा होते ही प्रस्फुटित पुष्पों की चटाक की ध्वनि करके चुटकी बजाकर उसे जगाता है। कितनी अद्भुत कल्पना है।

कवि देव की ही शब्दावली में वसंत के मानवीकरण का आनंद लें –

डार द्रुम पालनौ बिछौना नव पल्लव के
सुमन झंगूला सोहै तन छबि भारी दै।
पवन छुलावै केकी कीर बतरावै देव
कोकिल हलावै हुलसावै करतारी दै।।
पूरित पराग सों उतारौ करै राई नौन
कंज-कली नायिका लतानि सिर सारी दै।।

इसी तरह रसिक गोविंद भी नजर उतारने का उल्लेख करते हैं-

मुखरित पल्लव फूल सुगंध परागहिं झारत
जुग मुख निरखि बिपिन मनु राई-लोन उतारत।

बेनी कवि ने वसंत को लेकर एकदम अलग प्रकार की कल्पना की है। उनके अनुसार वसंत तो कामदेव रूपी अंग्रेज सम्राट का विप्लवकारी सेनापति है जो बंदूकों-तोपों आदि मारक अस्त्रशस्त्र से सुसज्जित सेना लेकर विरहिणी अबलाओं पर टूट पड़ा है –

धायनि कुसुम केसू किसलय कुमेदान
कोकिला कलापकारी कारतूस जंगी है।

तोपें विकरारे जे बेपात भयीं डारैं
दारूधूरि धारैं और गुलाब गोला जंगी है
बेनी जू प्रबीन कहैं मंजरी संगीन पौन
बाजत तंदूर भौंर तूर तासु संगी है।
बैरी बलवान विरही अबलान पर
आयो है बसंत कम्पू मदन फिरंगी है।

प्रकृति के सुकुमार छायावादी कवि सुमित्रानंदन पंत की मानें तो–पुष्पिश पलाश समस्त कामनाओं का प्रदाता है। उसके सौंदर्य से प्रकृति सुसज्जित है। सर्वत्र हरीतिमा का वातावरण है। वे कहते हैं–

वर्ण-वर्ण की हरीतिमा का वन में भरा विकास।
शत-शत पुष्पों के रत्नों की रत्नच्छटा पलाश।
प्रकट नहीं कर सकती यह वैभव पुष्कल उल्लास
वर्ण स्वरों से मुखर तुम्हारे मौन पुष्प अंगार।
यौवन के नवरत्न तेज का जिनमें मदिर उभार।
हृदय रक्त ही अर्पित कर मधु को अर्पण श्री शाल।
तुमने जग में आज जलादी दिशि-दिशि जीवन-ज्वाल।

कवयित्री सुभद्रा कुमारी चौहान के वसंत में धरती सरसों की पीली साड़ी पहनकर इठला रही है –

फूली सरसों ने दिया रंग / मधु लेकर आ पहुँचा अनंग
वधू-वसुधा पुलकित अंग-अंग।

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त जी अपने महाकाव्य 'साकेत' में गाते उठते हैं –

फूटा यौवन फाड़ प्रकृति की पीली-पीली चोली।

महादेवी वर्मा भी मादक वसंत रजनी को आमंत्रण देने लगती हैं–जो तारों को अपनी वेणी में गूँथकर, चंद्रमा को सिर का शीशफूल बनाकर और धवल चंद्रिका का घूँघट डाले अपनी बाँकी चितवन से ओस बिंदुओं के मोती बरसाती हुई क्षितिज से धीरे–धीरे धरा पर उतर रही है। बिंबात्मक भाषा का यह चित्र भी देखते ही बनता है –

धीरे-धीरे उतर क्षितिज से आ वसंत रजनी!
तारकमय नववेणी बंधन शीशफूल शशिका कर नूतन,
रश्मिवलय सित घन अवगुण्ठन,
मुक्ताहल अभिराम बिछा दे चितवन से अपनी।
पुलकती आ वसंत रजनी!

बुंदेलखण्ड के लोकवि 'रजऊ' के चितेरे बुंदेली के पितामह ईसुरी की चर्चा बगैर किए यह वासंतिक आलेख अधूरा ही रहेगा –

अब रितु आइ बसंत बहारन, लगे फूल फल डारन
बागन बनन बंगलन बेलन, बीथी नगर बजारन
हारन हद्द पहारन पारन, धवल धाम जल धारन
तपसी कुटी कन्दरान माही, गई बैराग बगारन
ईसुर कंत अंत घर जिनके, तिने दैत दुख दारुन।
कमबख्त वसंत!

कमबख्त जैसे अशिष्ट शब्द को पढ़कर चौंकिए मत। अब तो पानी सिर से गुजर गया है। आज के यांत्रिक युग की घोर भौतिकतावादी मानसिकता ने सब कुछ निगल लिया है। जल–जंगल–जमीन और जन तक तबाह हो चुके हैं। प्रकृति के दोहन के कारण ऋतुओं का वैभवशाली साम्राज्य धरा का धरा रह गया है। ऋतु–पर्वों तथा लोकोत्सवों की आनंदगंधी परंपराएँ विलुप्ति के कगार पर हैं। भाषाओं–बोलियों के ललित लावण्या संसार रूखे हो चुके हैं। ऐसे में वसंत की चर्चा करना भले कुछ लोगों को निरापागलपन लगे, लेकिन इन ऋतु पर्वों की चर्चा करना उतनी ही आवश्यक है जितनी हम अपने प्राणों की करते हैं। प्रकृति प्राण संस्कृति है, रस संस्कृति है।

आइए, इस रस संस्कृति बचाने के लिए हर संभव प्रयास करें और विश्वप्रसिद्ध समालोचक डॉ. रामविलास शर्मा की इन पंक्तियों पर भी ध्यान देते रहें–

वीरान हो चुके हैं सब बाग-बगीचे
और जिबह कर डाले गए हैं सारे के सारे दरख्त!
विकास के नाम पर उग आया है शहर में
सीमेंट का बियाबान जंगल
अमलतास, आम और पलाश की तो बात ही क्या
दिखाई नहीं देती दूर-दूर तक सरसों की झूमतीं कतारें तक भला
बताओ, अब कैसे सोचे-समझें बेचारे लोग
कि कब आकर गुजर गया चुपचाप इस शहर से
कमबख्त वसंत!

सुरीलों का गाँव क्योलारी
कैलाश नगर-285123
जनपद जालौन (उ. प्र.)
मो. - 9696520940

कचनार का महाशिवरात्रि मेला

– अखिलेश सिंह श्रीवास्तव 'दादूभाई'

जन्म – 4 अगस्त 1972।
शिक्षा – बी. कॉम, एल. एल. बी।
रचनाएँ – एक साझा संग्रह प्रकाशित।
सम्मान – बरघाट नगर पालिका से सम्मानित।

'ऐ सँभाल कर अरे वह कुंदा पकड़ लच्छू!' बबलू चीखा।

'देख, सँभाल, तिरपाल सरक न जाए।' 'हओ उतारो लो खैंचो बेटे को।'

'काए गुड्डू! का कर रै बे ताकत तो लगाओ यार।'

'जो का है, अबहीं गुटका मसकना है का! उतई हींच!'

'धीरे . . . जै बात।'

खट कड़-कड़ घड़-घड़ धम्म! झूले के स्टैंड में कसा जहाज, झूलता-झूमता कचनार सिटी के नेक्स्ट लेवल जिम के सामने के खाली प्लॉट में फिक्स हो गया। झूला कंपनी के आदमियों के प्रयासों से अब घूमने वाला झूला, मोटर-कार झूला, सीसा झूला, फिसलपट्टी, कूदने वाली जाली सभी कुछ इस उजाड़ प्लॉट के अकेलेपन को दूर कर रही हैं; तीन-चार दिनों के साथी हैं यह।

यह झूले अभी शांत, मौन खड़े हैं। वहाँ सामने जो हरे कपड़े से बँधा लोह-छड़ का जंगला है न, वह टिकिट काउंटर है। दो दिनों बाद इस काउंटर का रिक्त मुख निगले का रुपया और उगलेगा टिकटें, तब सामने खड़े यह मौन झूले हो जाएँगे गतिशील और गूँजेगी चीख-पुकार, हँसी, ठहाके बच्चों के, स्त्री-पुरुषों के क्योंकि अवसर है, 'महाशिवरात्री पर्व' का जो आने वाला है दो दिनों पश्चात अर्थात् माघ माह के कृष्णपक्ष की चतुर्दशी। 2023 में यह तिथि 18 फरवरी को पड़ रही है।

कोरोना विभीषिका की द्विवर्षी मृत्यु भय की अवस्था के बाद ऐसे सक्रिय धार्मिक आयोजनों में धन व्यय करते समय कहाँ कोई सोचता है उचित-अनुचित खर्च के विषय में। भले तंगी चीख-चीख कर कुछ और ही क्यों न कहे! मेला लगता है यहाँ जबलपुर के विजय नगर, कचनार सिटी के शिव मंदिर में। ऐसा मेला कि नगर के अलावा आन गाँव से भी लोग येन-केन-प्रकारेण पहुँचते हैं, भोले बाबा को प्रसाद चढ़ाने।

कचनार शिव मंदिर से लेकर अहिंसा चौक तक मेला अपना एकक्षत्र राज्य स्थापित करेगा। चाहे फिर आस-पास के उप मार्ग बंद क्यों न हो जाएँ। आकस्मिक स्थिति में कालोनी में फँसे लोग क्या करेंगे इस नागरिकीय समस्या के अनुत्तरित प्रश्न की चिंता संभवत: संबंधित अधिकारियों को हो, पर उनकी उपायविहीन बेचारगी जनता द्वारा क्षमा कर दी जाती है, हर वर्ष, भारी मन से, छिपी आस के साथ।

विजय नगर मुख्य मार्ग के उभय पक्ष (फुट पाथ) मानो पहले आओ, पहले पाओ के प्रतिनिधि हैं। अभी दो दिवस पूर्व से ही फुटकर दुकानदार चूने से अपनी-अपनी सीमाएँ सुनिश्चित कर, अपना नाम लिख रहे हैं। कैलाश ने अपनी दुकान के लिए चूने से एक चौकोर बना, बीच में अपना नाम लिख दिया है। मेले के लिए यह उसका स्वनिर्मित, सर्वमान्य आरक्षण है। यह सर्व स्वीकार्य विधि है। उसके बाद राजू, दिनेश, मुन्ना, फूलचंद, बड़ी मौसी, टोपी वाले चाचा, बड्डन फूल-माला इत्यादि सभी ने अपनी-अपनी आरक्षित भूमि में नाम लिख दिया है।

यह तो यात्रा काल में जनरल कंपार्टमेंट में रूमाल बिछा कर अधिकार प्रक्षेपण की व्यवस्था जैसा है। एक अबोली सत्ता का लोकनिर्मित माध्यम या यों कहें, कानून व्यवस्था को अपनी सुविधाओं के बाद मानने की प्रवृत्ति। हाँ, इस विधी में अद्भुत एकता अवश्य दिखती है। एक बात कहूँ, एकता का पाठ यहाँ से भी सीखा जा सकता है, यदि सीखना हो तो अन्यथा औपचारिकताओं के नगाड़े तो बज ही रहे हैं।

कुछ लोग तो अभी से दुकानों के डंडे गड़ा रहे हैं। फंचटों से रैक बना रहे हैं कि इसी में लटकेंगे लोक-लुभावन सामान और घेर लेंगीं इन्हें चहकती बालाएँ, कूदते बाल-गोपाल, खनकती चूड़ियाँ पहनी महिलाएँ मानो यही सृष्टि का सर्वाधिक सुंदर बाजार हो। ऐसे में नगर पालिक निगम जबलपुर भी कहाँ पीछे रहेगा। महिला-पुरुषों की एक टोली ने पूरे मेला क्षेत्र को साफ-सुथरा कर दिया। क्षेत्र के कितने ही स्थानों में टैंट खिंच गए हैं; जहाँ भंडारा चलेगा। खिचड़ी, आलूबोंडा, शरबत और हाँ चाय की भी व्यवस्था रहेगी।

क्षेत्र के रहवासियों का कौतुक देखने योग्य है। बच्चे तो अपनी सायकिल पर इस मार्ग को बार-बार नाप रहे हैं। सड़क किनारे रखीं बड़ी-छोटी पोटलियाँ साक्ष्य हैं इस बात का कि ग्वारीघाट, भेड़ाघाट, तिलवाराघाट के फुटकर व्यापारी अपनी चलित दुकानें यहाँ लगाएँगे। उधर डी, भोलू, कलुआ, झबरू और साथी कचनार क्लब की दीवार के पास डेरा डाले हैं क्योंकि यहाँ भी भंडारा चलेगा। यह कौन हैं, आप यही सोच रहे हैं न! साहब जी, यह कचनार सिटी, बाँके बिहारी पार्क क्षेत्र का श्वान समूह है। भौं-भौं करता सारमेय झुंड। इनका नामकरण यहाँ के बाल-गोपालों ने किया है।

अब तनिक शिव मंदिर में भी देखें। अद्भुत है कचनार का शिव मंदिर। मंदिर का प्रवेश द्वार बहुरंगी चित्रकारी और मूर्तिकारी से सज्जित है। मुख्य द्वार के तोरण मध्य शिव-पार्वती और गणेश की प्रतिमा बनी है, पर कार्तिकेय नहीं दिखे। यह बिंदु विचारणीय है कि शिव मंदिर में कार्तिकेय की अनुपस्थिति! क्यों? जबकी शिव के सिद्धांतों का प्रसार, प्रचार जितना कार्तिकेय ने किया, किसी ने न किया होगा; जैसे-कलरीपायट्टु, व्याकरण, शस्त्र-शास्त्र इत्यादि।

नीले गगन के तले विराजे शशिशेखर, कपर्दी, विषमाक्ष, शर्व, भस्मोद्धूलितविग्रह, अहिर्बुध्न्य अर्थात् शिव-शंकर की विशाल भव्य प्रतिमा, सुंदर रंग सज्जा से अद्भुत दिख रही है। मंदिर प्रांगण में जोर-शोर से स्वच्छता अभियान चल रहा है। वाटिका स्वच्छता टोली की महिला श्रमिकों की बातों से स्पष्ट हो रहा है कि वह आज घास उखाड़ने एवं झरी पत्तियाँ बुहारने का कार्य पूर्ण कर लेंगीं क्योंकि वह भी त्योहार की तैयारी अपने-अपने घर में करेंगीं फिर मेला भी तो आना है। जबकि लाइटिंग, बेरिकेट, आवागमन, पूजा आदि की व्यवस्था सुनिश्चित करने वाले पुरुष, मेले की भीड़ नियंत्रण के प्रति चिंतित हैं। सत्य भी है, कोरोना के बाद अब खुल कर भर रहा है यह प्रतीक्षित मेला।

धीरे-धीरे वह दिवस भी आ गया। कल महाशिवरात्री है। कचनार-विजय नगर मार्ग सुंदर लाइटिंग, दुकानों आदि से सज गया है। मेले की पूर्व संध्या से जगमगाती रौशनी की सुंदरता देखते बनती है। मंदिर का प्रवेश द्वार लाल, पीली, जामुनी, हरी झालरों से सजा है। परिसर में प्रवेश के साथ मंदिर पथ पर सुंदर-सुंदर मूर्तियाँ हैं जो अलग-अलग प्रकाश व्यवस्था के चलते सजीव-सी लग रहीं हैं। इनमें गण, ऋषि, वैदिक-विद्वानों, नृत्यरता नायिकाओं इत्यादि की मूर्तियाँ प्रमुख हैं।

मंदिर उद्यान का एक-एक वृक्ष एकरूप छाँटा गया है और सुंदर पुष्पों के पौधों में घनी लाइटों की लड़ें लिपटीं हैं जो कभी लाल-तो-कभी हरी हो रही हैं। टाइल्स निर्मित प्रवेश मार्ग चमचमा रहा है। इसी से होकर सामने चबूतरे पर पहुँचा जाता है, जहाँ शिव की ओर मुख करे विशाल नंदी की मूर्ति स्थापित है। लोग इसके कान में मन्नत माँगते हैं। मान्यता है कि नंदी-कर्ण में करी प्रार्थना नंदी स्वयं शिव तक पहुँचाते हैं। लोक मान्यताओं का रूप पूरे विश्व में अलग-अलग देखने को मिलता है; यही लोक मान्यताएँ तो आस्था की नींव हैं।

अतल, वितल, सतल, रसातल, तलातल, महातल, पाताल-सातों तलों के स्वामी सर्वलंकारभूषिता शिव की छवि अवर्णनातीत है। मृगचर्म में विराजे, त्रिनेत्रधारी शिव, इनके ध्यानमग्न नेत्र उनकी गगन छूती विशाल मूर्ति को सौम्य रूप

प्रदान कर रहे हैं। शिव-प्रतिमा उसका शरीर-सौष्ठव, भंगिमा, भाव सभी आश्चर्य चकित करने वाले हैं। धन्य हैं वे मूर्तिकार जिसने इसे बनाया। देव-दर्शन से भक्तगण अकुतोभय हो, सर्व बाधाओं से मुक्त अनुभासित करते हैं। निशा-प्रभात के संधिकाल में कुछ मेघ, वारिद मालाएँ बन शिव परिक्रमा कर गए हैं। अत: मौसम में शीतलता सी है। शिव दर्शन ज्ञान चक्षु से करें तो निरादृत भी समादृत हो जाता है। महादेव की कृपा तृण-तरुशून्य भूमि को उपवन बना देती है। पूर्व संध्या से धूप, अगरबत्तियों की मन आह्लादित सुगंध, वायु क्रीड़ा करती कचनार के हर गृह मंदिर को सुगंधित कर रही है।

महाशिवरात्री की भोर प्रतिदिन जैसी नहीं है। आज तो विहान-लालिमा श्रद्धालुओं की पदचाप के साथ आई है। प्रभात से दर्शन के लिए पंक्ति बनी है। इसीलिए मंदिर प्रशासन ने मुख्य प्रतिमा के पहले बैरिकेटिंग कर भीड़ नियंत्रण को सुनिश्चित किया है। 'थामें हैं लोग हाथों में जलपात्र, लगाए हैं माथे में त्रिपुंड, सँजोय हैं मन में विश्वास कि शुभघड़ी आई है शिव-अर्चन की।' देखते-ही-देखते प्रात: की लालिमा दिनकर प्रकाश के विस्तारण से ओझल हो गई। भक्तों के मुख पर तैरते सीकर बता रहे हैं कि ग्रीष्म की तपन पूर्व वर्षों की तुलना में इस वर्ष अधिक है। चिलचिलाता यह निदाध! पर इस बात की किसे चिंता है बस एक उद्देश्य शिव दर्शन। काश! हम मानवता के प्रति भी ऐसे ही लक्षित हो जाएँ तो शिव कितने प्रसन्न होंगे!

इधर देव-दर्शन के लिए पंक्तिबद्ध लोग 'नम: शिवाय' का जाप कर रहे हैं और उधर भीड़ का सैलाब जैसे बाँध तोड़ कर उमड़ रहा है। मार्ग पर आने-जाने वालों की तीन पंक्तियाँ बन रही हैं। इतनी भीड़ है कि एक कदम बढ़ाने पर दूसरे से टकरा जाएँ। तिस पर मुख्य मार्ग पर लगी दुकानें और भंडारा-पंडाल भीड़ बढ़ाने का कार्य कर रहे हैं। फ्लोटिंग मॉब अर्थात् चलती भीड़ उतनी कष्टदाई नहीं रहती जितनी रुकी होती है। धक्के के साथ भीड़ में बहता मैं सहसा एक स्थान पर रुक गया, देखा सामने आलूबोंडे बँट रहे हैं। उड़ती सुगंध से बँधा मैं भी भीड़ वृद्धि का हिस्सा बन गया और तब तक पंक्तिबद्ध रहा जब तक उसे प्राप्त न कर लिया। इस दौरान जन संवाद से अनुमान लगाया कि कितने लोग तो केवल भंडारा आनंद के लिए आए हैं। मेरे पीछे खड़ा बरगी से आया एक परिवार तो भंडारा संग्रहण के लिए छोटी थैलियाँ भी रखा है। छोटा फुहारा क्षेत्र से आई युवा मित्र मंडली हर भंडारे में रुक रही है। जहाँ स्वाद मनचाहा मिला वहाँ दो या तीन बार भी लाइन में लग लिए। यह बात उन्हीं से तब पता चली जब वे आलूबोंडा वितरण पंक्ति में मेरे आगे खड़े थे। उनके अनुसार, यह उनका तीसरा राउंड है। ऐसे दृश्य खिचड़ी और चाय के स्टॉल में भी दिखना सामान्य है। है न मनोरंजक बात!

मैं, प्रसाद पाकर सामने मनहारी की दुकान ओर बड़ा ही था कि एक युवा स्त्री की करुण पुकार हृदय को हिला गई। उसका बच्चा इस सैलाब में कहीं खो गया। मन काँप गया सुनकर। ऐसे मेलों में अपराधी भी सक्रिय रहते हैं। लोगों ने भंडारों से घोषणा करवाई और उस महिला को वहीं बिठा लिया। मैंने आस-पास पूछताछ करी, पर कुछ पता नहीं चला। इसी बीच वह बिलखती माँ कहाँ चली गई किसी ने नहीं देखा। सभी की जान सांसत में थी! रिपोर्टिंग करती मेरी आँखें कहीं-न-कहीं उस स्त्री को ढूँढ़ रहीं थीं, पर वह न दिखी। भोलेनाथ से यही प्रार्थना की कि माँ-बच्चा मिल जाएँ।

उधर एक रोती माँ अपने बच्चे के लिए सब भूल गई, इधर एक चहकती माँ अपनी बच्ची के खिलौने के लिए सब भूल गई। समीप गाँव का लगता है यह परिवार। युवा माता-पिता और प्रथम संतान। पिता की भूरे रंग की सफारी पर हल्दी के निशान कह रहे हैं कि यह विवाह पाश्चात अब निकली है, अवसर विशेष पर जबकि उसकी बहुरिया की गुलाबी शाटिका की चम-चमाहट उसके नए होने का सजीव साक्ष्य है। दोनों अपनी नन्हीं गुड़िया के लिए प्लास्टिक के गुड्डा-गुड़िया ऐसे पसंद कर रहे हैं जैसे उसके ब्याह के लिए लड़का। वैसे ध्यान से देखें तो भाव तो वही है, बिटिया के लिए जो भी पसंद करो अच्छा करो।

मार्ग के उभय पक्ष मानो मनहरण केंद्र हैं। न जाने कितनी आशाएँ-निराशाएँ नयन द्वारों से आवागमन कर रही हैं। सामने चूड़ियों का रंगीन संसार सजा है जिन पर पढ़ कर सूर्य प्रकाश भी सतरंगी हो रहा है। आगे की दुकानें भाँती-भाँति की मालाओं, बिंदिया, जूड़े की जाली, नेलपॉलिश, लिपस्टिक, फुंदरी, इत्र, परफ्यूम इत्यादिक अंगरागों के कारण श्रृंगार संवर्धन केंद्र-सी हैं। उधर प्लास्टिक के सामान की दुकान तो मानो मुख्याकर्षण

है। लगभग हर आदमी हर माल 10 रुपये के आमंत्रण मूल्य से प्रभावित है। देखिए, श्वेत वस्त्रों से सज्जित, प्रथम द्रष्टा उच्च-परिवार भी प्लास्टिक की जाली वाली टोकनी, बर्तन माँजने का गूँजा और अगरबत्ती स्टैंड क्रय के मोह से न बच सका।

लोग सामान लें-न-लें, पर हर दुकान में रुकते अवश्य हैं। कौड़ियों, सीपियों, सोफ्ट स्टोन की मूर्तियों की दुकानों से भले सामान कम बिके पर भीड़ बराबर है। हाँ, 30-40 रुपये में पत्थर पर नाम लिखने वाले की दुकान पर अनेक उम्मीदवार प्रतीक्षारत हैं। हो सकता है उन्हें डॉ. विष्णु सक्सेना की पंक्तियाँ पता हैं कि 'रेत पर नाम लिखने से क्या फायदा पत्थरों पर लिखोगे मिटेगा नहीं।' मैंने देखा, एक प्रेमी युगल बाजू से अपने नाम की चिट्ठी दे गया है। उनकी छिपी मुस्कुराहट बहुत कुछ अभिव्यक्त कर गई।

अचानक मेरा ध्यान गया, शिशु रोग विशेषज्ञ, डॉ. विजय प्रताप सिंह के साइन बोर्ड पर एक झोली टँगी है और उसमें से दो नन्हें पाँव सृष्टि को 'ता' कर रहे हैं। मैं, झट वहाँ पहुँचा और झाँका। एक चन्द्रमुख मुस्कान ने मेरा स्वागत किया। कितना प्यारा दृश्य है। ध्यान आया, उस बरसात की रात में भी टोकनी से ऐसे ही पाँव झाँक रहे होंगे जिसको छूने के लिए यमुना जी उड़ रहीं थीं और शेष नाग छत्र का दायित्व निभा रहे थे। कुछ ऐसा ही तो आज भी है; मानव दल उड़ान के मध्य यह नन्हें पाँव और यह बोर्ड। तभी उसकी माँ ने पुचकार कर झोली उठा ली। यह एक श्रमिक परिवार है जो मेला घूमने आया है। विचार आया, बच्चों के डॉक्टर के बोर्ड ने भी बच्चे की सहायता करी। कितना सुखद संजोग है न यह!

मित्रो! इस गूढ़ रहस्य को तो सुलझाइए, इतने भंडारे चलने के बाद भी चाट-फुल्की, चाय-नाश्ता, मोमोस और भी अन्य खान-पान की दुकानें लोगों से खचाखच भरी हैं। आश्चर्य! चाट, गोलगप्पे, पानी-पुरी के प्रति लोगों का मोह लोभ! क्या धूप; क्या गर्मी; क्या कोरोना; क्या इन्फेक्शन 'बस फुल्की ही चाहिए, फुल्की की मस्ती चाहिए, दस की बस फुल्की चाहिए!' बच्चा, बूढ़ा और जवान गप्प गपा गप्प गप्प! साथ में झूले, फिसलपट्टी, फुग्गे, कैंडी (बचपन में मैं इसे बुड्ढी के बाल कहता था) तो मेला आनंद के केंद्रीय भाव हैं।

कितने मुख, कितने लोग, कितने जीवन, सबकी अलग सोच, अलग आचार, बड़े-छोटे, धनी-निर्धन का अंतर। कुछ विशिष्ठ लोगों का आम जन को तुच्छ मनाने का दृष्टिकोण, कोई अंगपूर्ण तो कोई अपूर्ण। किसी की समस्या धनाधिक्य तो कोई तंग हाथ, एक अबोला संग्राम। कैसा बिखराव भरा जीवन है यह!

इतनी अनेकता के बाद भी लगभग सभी का जीवन एक-सा है; जैसे- परिवार, नातेदार, पड़ोसी, मित्र, दायित्व और सबसे बड़ी बात सभी की प्रार्थनाओं की सुनवाई यथा समय होना। उस परमपिता के सम्मुख तो सभी एक हैं। सुदूर बैठा एकांतवासी और सभा मध्य बैठा लोकनायक सभी तो समान हैं, उस देवाधिदेव महादेव के लिए। वह तो संपुंजित कर्मों की प्रत्यंचा से सुख-दुख शर संधान करता है। अधर्मी का सहस्त्र दीप प्रज्ज्वलन भी व्यर्थ है जबकि सत्कर्मी, बिन दीप प्रज्ज्वलन ईश-प्रिय होता है। यही तो है उसकी व्याप्य, व्यापकता, विराटता और न्यायप्रियता। आज इस मेले में त्रिनेत्र के समक्ष सब स्पष्ट है। सर्वदा श्रीप्रभु से निज स्वार्थ पूर्ति की कामना उसके आशीष से दूर ही ले जाती है। ऐसा मेरा मानना है। उसने स्वास्थ, शिक्षा, समुचित सामर्थ्य दिया है तो लोभ पूरित याचना क्यों!

लीजिए, समय रथ और रवि किरण कदमताल करती दिन-दोपहरी-तिपहरी पार कर चौपहरी व्यतीत की प्रतीक्षा में है। सिंधु-सी मानव लहर विरली हो चली है। पंछी-सा मानुस लौट रहा है अपने घरौंदों को; दिनभर की तपन का शीतल रूप गृह मंदिर ही है। मार्ग में शनैः-शनैः पदचापों और हो-हल्ले के स्थान पर दुकान बढ़ाने (बंद करने) की ध्वनि अधिक सुनाई पड़ रही है। बम भोले के भजन बंद हो गए हैं क्योंकि स्मृतियाँ छोड़ता दिन सोने जा रहा है। मेरा घर भी कचनार सिटी में है सो टहलता-डोलता अपनी रपट को रिपोर्ताज बनाने के विचारों के साथ मैं भी लौट चला, पर मेले के चक्षुदर्शन का अंत कल प्रातः के दृश्य-दर्शन के साथ होगा।

अगली निशोत्सर्ग भी बीती भोर-सी है। वही सौम्यता; वही खगदल कलरव; वही कोमल शीत-सा वातावरण। गगन पर अंशुमान अपने मान वर्धन के लिए रथारूढ़ हो रहे हैं। इसी प्राकृतिक सौंदर्य के मध्य मैं कचनार शिव मंदिर के समक्ष खड़ा हूँ;

परंतु स्तब्ध, आश्चर्यचकित, दु:ख-क्रोध के मिश्रित भाव लिए।

मन का प्रश्न-'कल महाशिवरात्री थी न!'

मन का उत्तर-'हाँ।'

'कितनी स्वच्छता थी कल सुबह और आज बिल्कुल उल्टा।' मन ने तड़प कर पूछा।

'कल त्यौहार था, पालिका ने अपना दायित्व निभाते हुए सर्वस्व स्वच्छता सुनिश्चित करी थी।' उत्तर स्पष्ट था।

'और आज!'

'त्यौहार समाप्त। वह अपना दायित्व पुन: निभाएगी। देखो, वह सफाई वाले आ रहे हैं।' मन-चक्षु साथ-साथ उस ओर ताकने लगे।

'पर श्रद्धालुओं का दायित्व!' पुन: याचित प्रश्न।
'यही तो दुर्भाग्य है। हम केवल सरकार से सुविधा चाहते हैं, स्वयं अपने दायित्व से उन्मुक्त हो कर। तभी तो यहाँ बद-से-बदतर हाल है, उसी स्थल का जहाँ कल मालाएँ सजी थीं।' मन मौन हो गया, लेखनी सक्रिय।

कचनार मंदिर के सामने इतनी गंदगी है कि खड़े होना दूभर है। कल जहाँ सुगंध थी आज दुर्गंध फैली है। जगह-जगह पन्नियाँ पड़ी हैं। गुटके के खाली पाउच का अंबार है। लोग देव दर्शन को आए थे या गुटका खाने पता नहीं। भंडारे का प्रसाद असत्तियों जैसा अपने पेट और पन्नियों में भरने वाले भक्त गण आधा खा कर, आधा सड़क पर फेंक गए। मुफ्त खोरी हर जगह है। मेरा मानना है, प्रसाद भी सशुल्क मिलना चाहिए। भंडारा पंडालों के सामने कितने अध खाए दौने पड़े हैं। शिव मंदिर से लगी दीवार पर गुटके की पिचकारी मारने वाले श्रद्धालुओं के यह कैसे संस्कार?

कल जहाँ झूले डोल रहे थे वहाँ भी बेहाली है। सहस्त्रों पोलिथिलीन बिखरे हैं और देखिए गाय भी वहाँ चर रही है। मैंने उसे यहाँ से हँकाल कर अलग किया। भय था कि कहीं झूठन के साथ पन्नी न खा ले। फिसल पट्टी के पास कुछ चाट के ठेले थे जो कीचड़ मचा गए हैं यहाँ। सुअरों का झुंड घूम रहा है। इतना दु:खद; इतनी गंदगी। पालिका की टीम सफाई में भिड़ी है। धूल का बवंडर उठ रहा है, तीखी दुर्गंध के साथ।

आस्था का यह कैसा रूप, समझ से परे है! इससे तो अच्छा है मेला लगे ही न। जब लोगों में नागरिकीय कर्तव्य बोध संज्ञा शून्य हो जाएँ तो उनसे सुविधा का अधिकार छीनना कुछ अनुचित नहीं। कचरे के डिब्बे पर पान की पीक थूकने वाले महानुभावों को यह भान भी न होगा कि उनकी मूर्खता कितना बड़ा प्रश्न खड़ा कर रही है। यह किसी के प्रति गर्हा भाव नहीं, कोई निंदा-बुराई नहीं यह तो वेदना है, हम सभी की यदि सत्य हृदय से सोचें तो।

मैं थोड़ी देर इन स्वच्छता के योद्धाओं को सम्मान के साथ देखता रहा जो इतनी गंदगी, धूल के मध्य सफाई कर रहे हैं। उनके चेहरों पर कोई तनाव नहीं। एक से पूछा तो उत्तर मिला, 'अरे बाबूजी यह तो हमेशा का हाल है। कोई सुधार होने वाला नहीं।' इस पंक्ति ने मुझे हिला दिया। मैंने कलम बंद कर दी। अब और क्या लिखूँ? क्या यह उचित है?

शिव का दिन उसकी रात्रि तो सदैव है। धर्म की रक्षा के लिए भरने वाले मेलों की मर्यादा समझना होगी। ईश आराधना का प्रथम भाव स्वच्छता और प्रार्थना है। मैं खड़ा हूँ नभ छूती विशाल शिव-प्रतिमा के समक्ष उन्हें निर्निमेष देखता और सोच रहा हूँ कि क्या सोच रहे होंगे भोले बाबा हमारे आचार-विचार पर। आह! वह सुंदर शकुंत भी मुझे देख रहा है; समझ रहा है मेरे मन की पीड़ा। समय परिवर्तन कांक्षी है। दर्शनीय मेले का अदर्शनीय स्वरूप अवश्य सुधरेगा। सुगंधित प्रात: पुन: आएगी यह आस ही विश्वास है। इस भाव के संग मैं श्रीनंदी के कान की ओर झुक गया।
वंदे!

गृह-साहित्यम् एन-21,
शिव मंदिर, कचनार क्लब के समीप,
विजय नगर, कचनार सिटी,
जबलपुर-482002 (म.प्र.)
मो. 7049595861

लोक विज्ञान की वेदिका

- श्रीराम परिहार

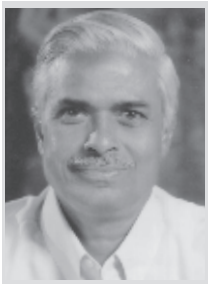

जन्म - 16 जनवरी 1952।
शिक्षा - एम.ए., पीएच.डी., डी.लिट्।
रचनाएँ - ग्यारह निबंध संग्रह सहित बीस पुस्तकें प्रकाशित।
सम्मान - अखिल भारतीय अम्बिका प्रसाद दिव्य सम्मान सहित अनेक राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय संस्थाओं द्वारा सम्मानित।

मानव के जन्म के साथ ही लोक का जन्म हुआ है। अन्य लोक पहले से ही रहे हैं। भूलोक में मानव निर्मित लोक ने अपनी पाँखें उन्हीं उजले क्षणों में खोली और फैलाई हैं। जितना आदिम मनुष्य जीवन है, उतना ही पुरा लोक-जीवन है। मनुष्य अपने संग-साथ प्रकृति प्रदत्त मानस, चित्त, बुद्धि, प्रतिभा लेकर जन्मा है। लोक की धारणाओं और प्रकृति (स्वभाव) की रचना में इन सबकी महती भूमिका रही है। सबसे प्रमुख है-मानव के मानस का लोक-विस्तारित रूप। मानस के कारण ही मानव शेष सृष्टि के साथ जुड़ा। उसका सहचर बना। उसके प्रकृति से आत्मीय सम्बन्ध बने। उसके व्यक्ति का विस्तार स्वयं के साथ-साथ अन्य तक तथा अन्य क्षेत्रों तक हुआ। सम्बन्धों के इस विस्तार में मन के साथ-साथ बुद्धि की सहायक भूमिका रही। पहले यह भूमिका सहायक रही। बाद में मन, बुद्धि, चित्त की बराबर-बराबर की समझ विकसित हुई। उसके कारण मानव का व्यवहार शेष सृष्टि के साथ आकर्षण किन्तु तार्कित धरातल पर स्वयं को पाता हुआ अनुभव करने लगा। व्यवहार में कार्य-कारण सम्बन्ध कभी-कभी, फिर सदैव झाँकने लगे। कब, क्यों, कैसे के प्रश्न अपने उत्तर पाना चाहने लगे। इनके संतोषजनक और बुद्धिसम्मत उत्तरों ने लोक विज्ञान को जन्म दिया। प्रत्येक क्रिया क्यों और कैसे के आधार पर व्यावहारिक रूप में होने लगी। जो है वह सब कारण सहित है। अकारण कुछ भी नहीं है। पूरी सृष्टि-प्रकृति सबके प्रयोजन हैं। हेतु भी हैं। सब ऋत् के अधीन हैं। उसी के द्वारा संचालित हैं।

सृष्टि की छाया में भाव जन्मे। उससे जुड़ाव के क्षणों में विचार जन्मे। विचार का जन्म होना मानव-जीवन की नई-नई दिशाओं की यात्राओं की प्रेरणा बनी। लोक विचार ने मानव व्यवहार को विस्तारित भी किया। नियंत्रित भी किया। बुद्धि की सक्रियता बढ़ी। विचारों के सूत्र मानव व्यवहार के आधार हुए। व्यवहार के निर्णायक क्षणों में तर्क या विवेक की उपस्थिति ने शुभ-अशुभ का भान कराया। शुभ-अशुभ, सत-असत्, कल्याण-अकल्याण के सन्दर्भ व्यक्ति-व्यवहार और समाज-संगठन के सूत्र बने। इन सबके केन्द्र में विचार ही रहा है। लोक विचार ने बुद्धि का सहारा लिया। पर बुद्धि विवेक की परिधि में अपने आलोक में व्यक्ति और समाज दोनों में उजास भरती रही। लोक विचार ही लोक व्यवहार की राह प्रशस्त करते रहे। ज्ञान की प्रारंभिक अवस्था में उसे नीतिबद्ध और शुभंकर करते रहे। ऐसा नहीं है कि भाव दबे रहे या पीछे धकेले जाते रहे; बल्कि दोनों की यात्रा सहोदर की तरह पारम्परिक समझा के साथ अग्रसर होती रही। आज भी यह नहीं कहते कि जीवन में भाव प्रमुख है; या विचार। दोनों महत् हैं। दोनों आवश्यक हैं। दोनों जीवन के हल में जुते हुए बैल हैं। भाव का स्थल हृदय है। विचार का मस्तिष्क। दोनों शरीर में हैं। दोनों जीवन में हैं। दोनों प्रांजल हैं। दोनों तेजोमय हैं। उदात्त स्थिति में दोनों उज्ज्वल हैं। दोनों शुभ्र हैं।

कल्पना प्रतिभा की बेटी है। प्रतिभावान में कल्पनाशीलता भी अधिक होती है। लोक जैसे-जैसे अपनी स्मृतियों और दृश्य जगत के सम्पर्क और सन्दर्भों से भरता जाता है। स्वयं पूरित होता जाता है। कल्पना का क्षेत्र उतना ही फैलता जाता है। बारीक राह भी सुगम होने लगती है। अँधेरा-घुप्प कक्ष-कक्ष कल्पना से प्रकाशित होने लगता है। सतरंगी किरणें मस्तिष्क में उदित होने लगती हैं। कुछ रहस्यों को जानने और सुलझाने में कल्पना सहायक होती है। मनुष्य के व्यवहार में, उसे उदात्त और शुभ बनाने में कल्पना प्रेरक होती है। ऐसा क्या है? सृष्टि

में ऐसा क्यों है? संसार में सब कुछ जो दिखाई दे रहा है। दिखाई देने के साथ ही तन्मात्राओं के माध्यम से अनुभव में आ रहा है। वह कब से है? उसका अस्तित्व क्यों है? मनुष्य क्या करे कि इन सबके उत्तर उसे मिल जाएँ। बस यहीं कल्पना की अँगुली पकड़कर प्रातिभ व्यक्ति, प्रज्ञा, पुरुष अपनी कल्याणी यात्रा पर बढ़ चलता है। कल्पना मनुष्य की दृष्टि में धार भी चढ़ाती है। पैनी भी करती है। लोक विज्ञान की वेदिका तैयार होती है। लोक विज्ञान के ललितों में कल्पना रूपकों, बिम्बों, प्रतीकों के चौक पूरती है।

प्रकृति और परिवेश के सम्पर्क से मानव के क्रियाव्यापार प्रभावित होते हैं। सक्रिय होते हैं। बार-बार के सम्पर्क और बार-बार की सक्रियता से संस्कार बनते हैं। पुष्ट होते हैं। पुष्ट होते हैं लोक विज्ञान से। जीवन में संस्कार जीवन-निर्माण की आधारशिला और जीवन-विधि की संरचना करते हैं। एक क्रिया या कार्य को करते-करते वह स्वभाव बन जाता है। मनुष्य की प्रकृति का अंग हो जाता है। मनुष्य अपनी प्रकृतिवश या स्वाभाववश सहज रूप से परिवार, परिवेश समाज से सम्पृक्त होता है। उसे अपनी प्रकृति विभिन्न क्षेत्रों से जोड़ती है। क्रिया-प्रतिक्रिया होती है। तब विवेक उसे विज्ञान से जोड़ता है। परिणाम उसे निरंतर सीख देते हैं। परिणाम अनुभव भी देते हैं। परिणाम निर्णायक बिन्दु पर भी पहुँचाते हैं। यह निर्णय उसके संस्कारों के अध्याय लिखने में प्रेरक होते हैं। निर्णय विज्ञान-प्रेरित और विज्ञान-प्रकाशित होते हैं। लोक विज्ञान संस्कार उद्भूत भी है? संस्कार-प्रेरक भी है। संस्कार-पोषित भी है।

मनुष्य का जीवन सहज प्राकृतिक रूप में बढ़ता जाता है। विकसित होता जाता है। विकास की इस सहज प्रक्रिया में उसके अपने संस्कार संग-साथ रहते हैं। उसका अपना व्यक्ति-जीवन समाज-जीवन के सम्पर्क में भी आता है। दोनों ही स्तरों पर उसके अपने संस्कारों की भूमिका सूत्रधार की होती है। जीवन से संस्कारों की सम्पृक्ति में वह अनेक बार प्रतिकूलताओं से भी मुठभेड़ करता है। विपरीतताओं से टकराहटों के क्षणों में संस्कार ही उसके आयुध होते हैं। ये आयुध-वस्तुगत न होकर जीवन ऊर्जा रचित होते हैं। जीवन से संस्कारों की सम्पृक्ति में मन-बुद्धि दोनों का आधार होता है। भावात्मकता और तार्किकता दायें-बायें रहती हैं। ये दोनों जीवन को लोक के साथ आगे भी बढ़ाती हैं। सँभालती भी हैं। संस्कारों की जीवन से सम्पृक्ति की गहरी तह में लोक विज्ञान आसन जमाये रहता है। व्यक्ति विकास और समाज-विकास में लोक विज्ञान की आसन्दी अनादि-आरम्भ से उपस्थित है। सजी हुई है। जब समूह जीवन के संस्कार समाज-जीवन और राष्ट्र जीवन से सम्पृक्त होकर घर, परिवार, समाज, राष्ट्र के निर्माण की प्रक्रिया में सहज-अनजाने-स्वाभाविक रूप से सक्रिय होते हैं; तो संग-साथ लोक विज्ञान के अक्षर-अक्षर जुड़कर शब्द बनने लगते हैं। शून्य से इकाई-दहाई का निर्मित होना आरम्भ हो जाता है। जीवन और संस्कारों की आपसदारी की डोर लोक विज्ञान के रेशमी धागों से बुनी हुई है।

लोक विज्ञान की अवधारणाओं के निर्माण और विकास में अगला महत्त्वपूर्ण चरण दृष्टि-रचना की प्रक्रिया इतनी गुपचुप और शान्त-मौन होती है कि वह व्यक्ति के व्यक्तित्व की कब रीढ़ बन जाती है, पता ही नहीं चलता। लोक मानस, लोक भाव, लोक विचार, जीवन संस्कार, जीवनानुभव, क्रियामाणता द्वारा प्राप्त निष्कर्ष प्रकृति परिवेश, देशकाल की धरती-आकाष सबसे सहयोग और सहारा लेकर दृष्टि की रचना होती है। स्वयं प्रतिभा तो मूलाधार है ही। जीवन के और साधना-विकास के सारे चक्र उससे प्रभावित और आप्लावित होते हैं। व्यक्ति-दृष्टि और समाज-दृष्टि में अन्तर होना स्वाभाविक है। उन्नत व्यक्ति और उन्नत समाज की दृष्टियाँ एक बिन्दु पर जाकर मिलती अवश्य हैं। उन्नत व्यक्ति और उन्नत समाज से आशय हितकारी, सर्वसमावेशी, सर्वभूत हित कार्य में संलग्न, समभाव धारक से ही है। दृष्टि की संस्कारजन्य परिपक्वता जीवन में सर्जनात्मकता का आधार होती है। इसलिए दृष्टि का संस्कार-सम्पन्न होना अति आवश्यक है। संस्कार-सम्पन्न दृष्टि के पार्श्व में लोक विज्ञान की जगमग जोत जगमगाती रहती है। शुभ-अशुभ लोक विज्ञान की झकास में ही अपने वास्तविक रूप-स्वरूप में दृष्टिगत होते हैं। संस्कार जीवन की सृजनात्मक सारणियों के मूलाधार हैं। दृष्टि संस्कारों की सहोदर है।

व्यक्ति और समाज दोनों की रचनात्मकता और सृजनात्मकता दृष्टि-प्रभावित होती है। जैसे व्यक्ति की दृष्टि संस्कार-जनित होती है, वैसे ही समाज के सामूहिक संस्कारों से सृजित भी दृष्टि होती है। यह दृष्टि क्रियाशीलता या व्यावहारिक धरातल पर किये जा रहे कार्यों में माला के धागे का काम करती है। दृष्टि ही सृजन का अदृश्य स्रोत है। उसकी प्रेरक है। उसका आकाशदीप है। दृष्टि-प्रेरित कार्यों से कौशल जन्म लेता है। प्रत्येक कौशल में दृष्टि काम करती है। कौशल में दृष्टि-प्रेरक

और निर्देशक के रूप में लोकविज्ञान, चुप्पे-चुप्पे काम करता रहता है। लोक के सारे कार्यों, कार्यों द्वारा निर्मित और रचित वस्तुओं तथा रचनाओं में लोक विज्ञान बैठा हुआ है। छोटी-से-छोटी वस्तु से लेकर बड़ी-से-बड़ी वस्तु तथा रचना के कौशल में दृष्टि और विज्ञान दोनों महत् कार्य करते हैं। प्रत्येक व्यक्ति और समाज का कौशल अभिनन्दनीय और सर्वस्वीकार्य होता है, क्योंकि यह लोक विज्ञान आधारित होने के साथ-साथ निरंतर विकास के नये मार्गों का निर्माण और खोज करता है। यह कौशल एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी, पिछली पीढ़ी से अगली पीढ़ी को हस्तान्तरित होता रहता है। होता आया है। हो रहा है। लोक विज्ञान आधारित कौशल द्वारा निर्मित-सृजित निर्माण और सृजन की पूरी परम्परा वाचिक ही रही है। यह स्मृति और दृष्टि सम्पन्न रही है। इसलिए अमर रही है।

लोक की दृष्टि से प्रेरित और आधारित सर्जन से जीवन के विविध क्षेत्रों में विभिन्न आयाम खुलते गये। यह आयाम समाज और राष्ट्र को आत्मनिर्भर बनाने में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण चरण था और है। विशेष बात यह है कि भारतीय लोक का सारा सर्जन प्राकृतिक वस्तुओं से मिलकर-जोड़कर ही हुआ है। लोक को जहाँ, जिस भू-भाग, प्रकृति-परिवेश में जो सहज संसाधन मिले, उन्हीं से लोक ने अपनी आवश्यकताओं को पूरित करते हुए समाज और राष्ट्र को आत्मनिर्भरता दी है। यह बड़ी बात है। अच्छी बात है। विशेष बात है। लोक ने ईश्वर प्रदत्त वाक् के द्वारा विकास कर ध्वनि संकेतों, लिपियों, बोलियों, भाषाओं की सर्जना की है। यह लोक-विज्ञान का चमत्कारिक किन्तु सहज-स्वाभाविक कर्म-फल और बौद्धिक सुकर्म है। लोक से कौशल उद्भूत सृजन द्वारा विविध लोक-विज्ञान सम्पृक्त आयाम बनते गये। रूपायित होते रहे। लोक ने जीवन के बहुरंगी भावों के अनुरूप अपने कलात्मक कौशल में लोक-विज्ञान सम्मत अनेक आयाम सिरजे हैं। लोक कला, शिल्प कला, वास्तुकला, चित्र कला, ललित कलाएँ (संगीत-नृत्य-गायन-वादन) लोक व्यवसाय, लोक व्यवहार सब लोक विज्ञान प्रवृत्त लोक कौशल आधारित सृजन के आयाम हैं। इन सब में लोक का अद्भुत और दृष्टि-सम्पन्न कौशल काम करता रहा है। कर रहा है। जो लोक विज्ञान का भौतिक और व्यक्ति, समाज और राष्ट्र उपयोगी तत्त्व है। आत्मनिर्भरता और स्वावलंबन का विज्ञान भी इसमें काम करता रहता है।

लोक व्यवहार में विज्ञान क्या और कहाँ हो सकता है। भारतीय लोक का सारा ताना-बना जो सम्बन्धों की चादर बुनता है, वह लोक व्यवहार का ही विज्ञान है। सम्बन्धों का बनना, उनका विस्तार, उनका निभाह, उनके कारण एक संवेदनशील व्यक्तित्व की रचना और समाज की संवेदनात्मक सुदृढ़ता लोक विज्ञान सम्पन्न दृष्टि-कौशल और व्यवहार के कारण ही संभव है। भारतीय लोक के पारस्परिक-घर-परिवार-कुटुम्ब-समाज से सम्बन्धित सम्बन्ध छुई-मुई नहीं होते। उनका संवेदनात्मक मानवीय, मूल्य आधारित और लोक-परलोक से जुड़ा संसार होता है। इसी संवेदनशील और मूल्य आधारित सम्बन्धों के लोक विज्ञान संसार में शुभ-अशुभ, पाप-पुण्य, स्वहित-परहित, स्वर्ग-नरक की धारणाएँ जन्म लेती हैं। ईश्वर, मनुष्य और प्रकृति के अन्तर्सम्बन्ध प्रकट होते हैं। धरती-आकाश के बीच की नीलिमा चिन्तन के नये आयामों की चमक से दिपदिपाने लगती है।

लोक विज्ञान सम्पृक्त व्यवहार की अंतिम परिणति लोक मंगल से होती है। भावों की उदात्तता, कार्यों की शुभता, चिन्तन की भद्रता परहित में ही विश्राम पाती है। लोक के विज्ञान-सम्मत प्रत्येक संवेदनात्मकता-पूरित कार्य की इति 'सबका भला हो।' 'सबके अच्छे दिन बहुरें।' 'सब सुखी हो' से होती है। इसी उपक्रम में अनुष्ठानिक प्रतीक-कलश, नारिकेल, पुंगीफल, आम्रफल, वन्दनवार, कदली-खम्भ, चौक, राँगोली, भित्ति-चित्र, भूमि-चित्र, गोबर से बनाए जाने वाले लोक देवता (पुतले-पुतलियाँ), माँडने, उनमें बनाएँ जाने वाले सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, तुलसी-चौरा, गाय-बछड़ा, तोता-मैना, मयूर, कमल, शंख, स्वस्तिक, श्री सब लोक-विज्ञान से निपजे मंगल-विधान हैं। लोक की भूमि बहुत आर्द्र और कोमल है। वह अद्वैत को क्षण-क्षण, कण-कण में धारण किये हुए है। न केवल मनुष्य का बल्कि सब जीवों का और प्रकृति का रक्षण हो। कल्याण हो। मंगल हो। यह परम कल्याणी भाव मन, वचन और कर्म में मुखर होता है। नदी यशस्वी बह रही है। उसके निर्मल जल में अरुणोदय की वेला में कुंकुम घुल रहा है। कोई पंछी अपने पंखों पर आकाष नापने निकल पड़ा है। मंदिर से गूँजती हुई शंख-ध्वनि धरती पर मंगल रच रही है। इति शुभम्।

आजाद नगर,
खण्डवा-450001 (म.प्र.)
मो.-9425342748

अगास से आस

– गिरिजा किशोर पाठक

जन्म – 3 जून 1959।

जन्मस्थान – दशौली।

रचनाएँ – एक पुस्तक प्रकाशित।

सबका सहारा ही अगास है। जेठ, आषाढ़ हो या असोज (आश्विन) कार्तिक, रबी और खरीफ की फसलों के लिए पूरे गाँव का भरोसा है अगास। ऊसर जमीन वाले इस गाँव में पेट की आग को पानी देने, खेती–पाती और गाय बैलों के चारे के लिए अगास पर निर्भर रहने के सिवा कोई दूसरा चारा भी नहीं। परतिमा और शेरुवे के पास 5 नाली ऊसर की जमीन है। जिसमें रबी की फसल में गेहूँ, अलसी, सरसों, जौ असोज कातिक में बो लेते हैं। ये खेत चैत–बैसाख तक खाली हो जाते हैं। एक महिने खाली खेतों की खरपतवार पशुओं के लिए स्वर्ग के सामान हो जाती है। शेरुवा बैसाख–जेठ के महिने ही लोहार के यहाँ से बांहुल, बणकाट, बौस, नस्यूण और कुटवों की धार तीखी करा कर लाता है। हल, हथिने, माव, जू, जुतौड़, सब अपडेट कर देता है। दन्याव के लकड़ी के दाने स्यूड़ जैसे तीखे करता है। बैसाख के महिने में खेत की पहली जुताई फिर दूसरी जुताई, फिर मय और पाटा चलाना, डेल फोड़ना, कंकड़ बीनना ये सारा काम पूरा परिवार मिलकर करता है। इसके बाद शेरुवा मिट्टी की बारीकी और नमी की जाँच करता है। तब जाकर परतिमा और शेरुवा का पूरा परिवार इन ऊसर खेतों में पानी की नमी के मान से धान के बीज छिड़क देते हैं। मिट्टी की नमी और अगास और बदलों ने साथ दिया तो 10–15 दिन में सारे खेत झक्क हरे हो जाते हैं। इस हरियाली से दोनों के चेहरे पर एक नयी ताजगी और मुस्कुराहट देखते ही बनती है। एक माह बाद दन्याव लगाने का समय आ जाता है ताकि खरपतवार को छाँटा जा सके। ढलान वाले खेतों में खरपतवार जला कर कूँड़ी, मडुवा, झुअर, मास, भट, गहत भी बो दिया जाता है। जिसके बीज हरेले की तरह खूब उग आते हैं। एक बाड़े में थोड़े भाँग के दाने भी छिड़के हैं। आखिर ह्यून में गडेरी और लाई का साग बिना भाँग के दानों के रस के स्वाद भी कहाँ देता है। बैसाख में इस बार बारिस खूब हो गयी, इस कारण खेत में बोई हर फसल खूब अच्छी अंकुरित हो गई है। सब खेत हरे–भरे दिखने लग गए हैं। दोनों खुश हैं इन लहलहाते खेतों में उनके पसीने और माटी की खुशबू साथ–साथ घुली रहती है। धान के पौधे एक फुट लंबे होने को हैं। बैसाख के पानी के भरोसे धान, मडुवा, झुअर, कौणी सब लहलहा रही हैं। ककड़ी, लौकी, तुरयी, मीठे करेले, गेठी और फरासबीन के झाल अब फलों से लदने लगेंगे। गडेरी, पिनालू भी अंकुरित होकर पात फैलाने लगेंगे। आगे की सारी खेती की उम्मीद और आस बादलों के भरोसे है।

अजब प्रेम कहानी है परतिमा और मुनौली गाँव के शेरुवा की। एक बार शेरुवा बेलसा गाँव में सूबेदार हरक सिंग के मकान में मिस्त्री का काम करने गया था। शायद चार माह मकान का काम चला। परतिमा दानपुर के उसी गाँव की थी। मकान में परतिमा भी मेहनत मजदूरी करती थी। काम करते करते एक दूसरे से कनखी निगाह से नजरें मिलीं। मिलती गयीं पर बात कभी नहीं हुई। पता नहीं दोनों ने आँखों ही आँखों में एक–दूसरे से कितनी बात की होगी इसका हिसाब लगाना मुश्किल है। कुछ दिनों बाद परतिमा और शेरुवा एक–दूसरे के बारे में सोचने लगे। दिल ने दिमाग पर हमला शुरू कर दिया। एक दोपहर भोजन के समय सभी मजदूर टूनी के पेड़ की छाँव में भोजन कर रहे थे। शेरुवा ने परतिमा से पूछ लिया कि रोटी खाओगी।

परतिमा बोली न। हैं तो मेरे पास भी। पर उसका मन तो कह रहा था, हाँ कहे। दो दिन तक परतिमा यही सोचती रही कि न क्यों कहा। लेकिन काम करते-करते दोनों एक-दूसरे से रोज कुछ न कुछ कहते रहते थे। अनकहे प्रेम करना सबसे पवित्र और कोमल काम है, ये दोनों समझ रहे थे। परतिमा का ब्याह 15 बरस की उम्र में हो गया था तब उसका पति 35 का था। थोड़ी बहुत खेती थी बाकी जीवन चलाने के लिए दोनों मेहनत मजदूरी करते थे। यह बेमेल विवाह था। शायद प्रेम रहा ही न हो। चैत की सुबह थी शेरुवा पानी के झरने पर नहा रहा था परतिमा पानी भरने गयी थी। शेरुवा ने कहा मेरी बाल्टी भर कर किनारे रख दे मैं नहा रहा हूँ। शेरुवा के भीतर आग जल रही थी रोक नहीं पाया। बोला मैं तुमसे प्रेम करता हूँ। परतिमा शरमा गयी, मुँह लाल हो गया। बिन बोले घड़ा पकड़कर भाग गयी। मन ही मन में लड्डू फूट रहे थे। फिर याद आया अरे वह तो शादीशुदा है। बाप रे! पाप है यह तो! सोचने लगी।

पति को पता लगेगा तो क्या सोचेगा?

लेकिन भीतर से वह शेरुवा को प्यार करने लगी थी। उसके चेहरे की बेचैनी और अंतर्द्वंद्व कोई भी पढ़ सकता था। शायद उसके पति ने पढ़ने का प्रयास ही नहीं किया होगा। शादी को पाँच बरस हो गये थे। अभी बच्चे नहीं थे। लेकिन हर औरत की तरह उसकी भी प्रबल चाहत थी औलाद की। अचानक एक दिन शेरुवा ने कहा मैं तुम्हारे प्रेम को समझता हूँ।

परतिमा बोली फालतू की बकवास क्यों करते हो! जानते हो मैं तो शादीशुदा हूँ तो क्या हुआ? शेरुवा ने कहा। परन्तु ब्याह! परतिमा चुप हो गयी चलो दोनों भाग जाते हैं। बस तुम मेरी पत्नी बन जाना। शेरुवा 22 बरस का हट्ठा-कट्ठा हँसमुख नौजवान था। उसे लगा यह देह का नहीं आत्मा का चिपचिपा प्रेम है। परतिमा ने सिर झुका दिया। यह एक तरह की मौन स्वीकृति ही थी। शेरुवा समझ गया प्रेम जैसे जटिल मामलों में औरत मुँह कहाँ खोलती है। हाँ प्रेम में डूबी स्त्री और हिमालय से बहती नदी का प्रवाह किसी भी बाँध को तोड़ सकता है- यह बात शेरुवा समझ रहा था। परतिमा रात भर अंतर्द्वंद में सो नहीं पाई। करे तो क्या करे। बैसाख की 25 गते रही होगी। अंत में पौ फटने से पहले परतिमा अपने दो-चार जोड़ी कपड़े ले निकल पड़ी घर से और दोनों भाग लिए अनजान रास्तों की ओर।

सारे गाँव में दोनों की खोज परख चली। हो हल्ला होता रहा। ग्राम प्रधान के वहाँ रिपोर्ट भी हो गयी। पर दोनों को कौन कहाँ खोजे यह बड़ी समस्या थी। ये दोनों तो कोषों दूर जा चुके थे। न अग्नि के साक्षीभाव के सात फेरे, न पंडित, न मंत्र तंत्र। न जयमाल, न बरात, न काल चर्यो (मंगल सूत्र), न एक जोड़ी पिछौड़ परन्तु शेरुवा ने इसे औपचारिक ब्याह मान लिया था। मन ही मन ये एक दूसरे के होने के भाव से तो परतिमा भी घर छोड़ कर आयी थी लेकिन परतिमा को ऐसा ब्याह जम नहीं रहा था। उसने शेरुवा से कहा कुछ तो करो ऐसे कैसे ब्याह मान लेंगे। कल तेरा मन कहीं और आ गया तो मुझे भी छोड़ देगा? आदमी जात का क्या भरोसा। शेरुवा को बात चुभ गयी। दोनों चलते-चलते एक पहाड़ी की चोटी पर पहुँचे थे। गाँव से छः मील दूर। अब वे डैंजर जोन से बाहर थे। शेरुवा ने बैठने का इशारा किया दोनों एक-दूसरे का मुँह ताक रहे थे। सामने नंदा हिमालय की चोटी चमक रही थी। शेरुवा ने कहा देखो सामने माँ नंदादेवी की खाट और नंदा हिमालय दिख रहा है। मैं नंदादेवी का भगत हूँ। परतिमा भी बचपन से सातों-आठों के दिन अपनी माँ के साथ गवारा (पार्वती) को सजा-धजा कर शिव-पार्वती का ब्याह रचाने वाले लोकपर्व में बढ़-चढ़ कर भाग लेती थी। हर हिमालय वासी शिव-पार्वती का उपासक होता ही है। परतिमा के मन में शेरुवा ने शिव-पार्वती के प्रेम को जागृत कर दिया। सामने बुराँस और प्योली के फूल खिले थे। शेरुवा लपक कर खूब सारे फूल तोड़ अपने कुर्ते का आँचल सा बना कर ले आया। पत्तों में फूल रखे।

शेरुवा बोला इस हिमालय की मिट्टी से पवित्र कुछ नहीं। कोई लाल सिंदूर भी नहीं। मुट्ठी भरकर मिट्टी लाया। नंदा हिमालय को साक्षी मानकर इसी मिट्टी से परतिमा की माँग भर दी। सामने पत्ते पर रखे बुराँस और प्योली के फूल दोनों ने माँ नन्दा को साक्षी मानकर प्रेम की अनुभूति के साथ एक-दूसरे के सिर पर बिखेर दिए।

नंदा मैया की जै। महेश्वर की जै।

बोल कर नंदा हिमालय की चोटी को प्रणाम किया और उमा महेश्वर को साक्षी मानकर ब्याह संपन्न हो गया। माथे पर मिट्टी का सिंदूर और सिर पर वन फूलों से सजी परतिमा किसी दुलहन से कम नहीं लग रही थी। नीला आसमान भी इसका साक्षी था।

दोनों दो माह के लिए गायब हो गये। रामगंगा पार एक गाँव में शरण ली थी। बाद में शेरुवा उसे अपने गाँव लाया। आज की तारीख में शेरुवा और परतिमा के दांपत्य के 25 बरस बीत गये हैं। बस आज तक दोनों मिलकर बिन ब्याहे बंधन की गाड़ी शानदार ढंग से खींच रहे हैं। हाँ, जब भी संबन्धों में तकरार होती है तो परतिमा कहती है–हाँ, नहीं तो क्या? तू मुझे भगा कर लाया था।

शेरुवा कहता तेरा क्या भरोसा। फिर कहीं और नहीं जाएगी। तू तो भाग कर मेरे साथ आ गयी थी। फिर दोनों को सूबेदार हरक सिंह का वह मकान याद आता है जहाँ की मिस्त्री गिरी और मजदूरी में इनका प्रेम परवान चढ़ा था।

इस साल आषाढ़ मास में भी अगास में बादल ही नहीं आये। आंधा सौड़ (सावन) जाने को है। ऊसर जमीन का सारा दारोमदार अगास के बादलों की कृपा पर रहता है। रोज सुबह शाम अगास पर नजर रहती है। अगास में एक फुलुक बादल दिख जाये तो समझ लो खेती की आस लौट आयी। दोनों सुबह शाम सुनन्दा देवी, कोटगाड़ी देवी, नौलिंग, बंजैड़, मूल नारायण जी के नाम का दीपक लगाते हैं। बादलों का आसमान में न दिखना मतलब सारी उम्मीद और आस का जमींदोज हो जाना है। सन् 1952 और 1964 के सूखे और भीषण अकाल के किस्से दोनों ने अनेक बुजुर्गों से सुन रखे थे। शेरुवा रात को बाहर निकलता घुप्प अँधेरे में टिमटिमाते तारों के बीच बादल खोजता फिर बड़बड़ाते हुए सो जाता। आज भी एक रुई के फूल के बराबर भी कहीं बादल नहीं दिख रहे। घर के भीतर भकार खाली होने को हैं। अगास से ही आस रहती है। वही किसान के लिए सबसे बड़ा साहूकार है। उसको क्या मालूम कि उसकी कुछ बूँदें किसी बड़े साहूकार की तिजोरी से लाखों गुना ताकतवर है। बादल की बूँदों पर सबका बराबर का हक है। अगास की आस पर तो बैसाख–जेठ की धूप में पसीना बहाकर ये सब खेत बोये। हफ्ते भर में पानी नहीं बरसा तो सारे खेत सूखने लग जायेंगे। इसी सोच में रात की नींद और दिन का चैन भी गायब है। गाँव के कुछ लोगों का कहना है कि ओली के गाँव चलो, नागिल गौ, लोथव (लोहा थल)। रूड़ (सुखा) पड़ने पर बरसा की याचना के लिए इस पट्टी के लोग ओली के पास जाते हैं। गाँव में पुश्त दर पुश्त यह विश्वास चला आ रहा है कि यहाँ के एक ओली परिवार ने जल बरसाने, ओलावृष्टि, अनावृष्टि और अतिवृष्टि की विद्या का ज्ञान मूल नरायण जी और नंदादेवी की साधना से प्राप्त किया था।

एक ठेकी दही, एक कुप्पा घी, दो नाली चावल लेकर शेरुवा और चार आदमी लोथल ओली के पास पहुँच गये। ओली से मिल आये उसने शीघ्र जल वृष्टि का आश्वासन दिया। नागिल गौ के ओली न जाने कितने पुश्तों से ओलावृष्टि रोकने, जल बरसाने की विद्या जानने की बात करते हैं। उसने इस गाँव के परिवारों से बात की थी। महिलाओं का कहना था के उनके पितर ये विद्या जानते थे। उनके दस्तावेज तिब्बती भाषा में है। वे बताती थीं कि मुख्य ओली हर साल शिखर मूल नारायण स्थान में तपस्या करते थे।

ये लोग आस की पोटली लेकर गाँव लौट आये। बस सुबह शाम आस की उम्मीद से अगास ताकते–ताकते इनकी आँखें पथरा गयीं लेकिन बादल का एक फुलका भी आसमान में नहीं दिख रहा था। इधर खेतों की मिट्टी चिलचिलाती धूप से चटकने लगी थी। धान, मडुवा, झुअर, कौणी के पौधे पीले पड़ने लगे थे। अगास चट्ट नीला कहीं बादलों का नामोनिशान नहीं। सामने बरफ की चादर ओढ़े चट्ट सफेद हिमालय रात को और चमकने लगता है। शेरुवा, परतिमा ही नहीं पूरे गाँव के लोग अपने स्थानीय देवता कुलदेवताओं को पुकार लगा रहे हैं। सामने नन्दा हिमालय है। रोज माँ नन्दा को ढोक लगा रहे हैं। नौलिंग, बंजैण, मूल नारायण, कोटगाड़ी देवी, नंदा, सुनन्दा सब मंदिरों में दिया बाती कर डाले हैं। अगास है कि दुर्वाशा ऋषि की तरह नाराज है। बादलों का कहीं नामोनिशान नहीं। हे भगवान क्या करें। ऐसा अँधेर तो कभी नहीं हुआ था। गाँव की सबसे बूढ़ी एक आमा ने परतिमा को बताया था कि तीस बरस पहले ऐसी ही रूढ़ (सूखा) पड़ी थी। सन्

1941-42 की बात रही होगी। खेतों में एक दाना नहीं हुआ था। जंगल की घास भी सूख गयी थी। अनेक गाय, भैंस, बैल और जानवर सूखे की चपेट में आ गये थे। गाँव का पानी का झर्रा भी सूख गया था। नीचे 5 मील दूर बगड़ गाड़ से ताँबे के घड़े में पानी भर कर लाते थे। पशुओं को भी वहीं जल पिलाने ले जाना पड़ता था। गाँव के लोग तिमुल के फल सुखा कर मडुवा, झुअर, और जंगली घास मिलाकर रोटी बनाकर प्राण बचा रहे थे। उस साल कितने आदमी और जानवर मरे, यह बात गाँव के लोग हर नये मेहमान, नयी नवेली बहुओं को बताते रहते हैं। जिनके पशु भी मर गये, वे रोजगार की तलाश में बौल (बँधुवा मजदूरी) करके पेट की क्षुधा शान्त करने दूरदराज तलौं यानी सिंचाई सुविधा युक्त गाँवों को चले गये थे। परिवार भी छोटा नहीं, ब्याह के 25 बरस में छः बच्चे हैं! माँ-बाप बच्चों सहित दस जनों के पेट की व्यवस्था हर टैम करनी हुई। पड़ोस से दो नाली मडुवा पैच मिला था। कुछ सूखा सागपात मिलाकर परिवार पल रहा है। आज आधा-अधूरा जो पेट भरा फिर कल की चिंता। बात यहाँ तक आ गयी कि धान के भूसे को भी चाक में पीस कर रोटी बनाकर सबको पाल रहे हैं। शेरुवा की जिम्मेदारी है कि सबके पेट में दोनों टैम कुछ न कुछ पड़े। कोई भूखे न सोये। लेकिन जब पेट की आँतें जलती हैं तो जान पर बन आती है और सारी देह ठंडा जाती है।

निराश है परतिमा का मन। गोठ से एक जोड़ी बैल, दो गाय दो बछिया खोले जंगल की ओर हाँकते हुए ले जा रही थी। पड़ोस में रिश्ते की सास सामने दिखी। परतिमा बोली, सासू ऐसा ही रहा तो ये जानवर भी मर जायेंगे। जंगल में चारा नहीं। नदी-नालों में पानी नहीं। दुख का पहाड़ टूट रहा है। जंगलों में चीड़ के पेड़ हैं लेकिन पिरुल गाय-भैंस खाते नहीं। सासू ने ढाढस बँधाते हुए कहा, सब भगवती माँ की मर्जी, कौन जियेगा।

अधूरे शब्दों के अर्थ सबके लिए अलग-अलग होते हैं। परतिमा सोच रही है। कौन मरेगा, यही सास ने कहा। शाम ढल रही है। शेरुवा दरवाजे की सीढ़ी पर बैठ कर सोच रहा है कितना सुन्दर है ये हिमालय, कितने सुन्दर हैं ये पहाड़। हजारों लोग इनको देखने यहाँ आते हैं। शायद ही लोग जानते होंगे कि इन पहाड़ों पर खेती करने वालों को जीने के लिए हर रोज कितना संघर्ष करना पड़ता है। सारी नदियाँ यहीं से निकलती हैं परन्तु यहीं के रहवासी बूँद-बूँद के लिए तरसते हैं। यह कैसी विडम्बना है, खाने को अन्न नहीं, पीने को पानी नहीं। महादेव आपकी भूमि है रक्षा कीजिये। उसे डर लगता है कहीं सब कुछ बिखर न जाये।

दो कमरे का घर है। पल्ले कमरे में हुक्का गुड़गुड़ाते उसका बाबू सो गया है, जैसे धुएँ से ही पेट भर गया हो। चाख में सभी बच्चे लेटे हैं। परतिमा किसी दूसरे गाँव से तीन पाव चावल लायी थी। यह आश्वासन देकर कि अगले चौमासे में धान की रोपनी में उनके वहाँ एक दिन काम करेगी। बस सुबह दही का मठ्ठा बनाया था। बड़े भदेले में छांछ का जौला बना कर सारे परिवार की कुछ तो भूख मिटायी। अब तो परिवार भी सोचता होगा कब भरपेट भोजन मिलेगा। अगास ने सारी उम्मीद पर पानी फेर रखा था। मिट्टी की खिदमत को पूरा परिवार तैयार है लेकिन करे क्या बिन पानी सब सून।

काफी रात हो गयी। परतिमा और शेरुवा भीतर कमरे में एक दूसरे की ओर ताक रहे थे। जिम्मेदारी के साथ चिंता पूरे परिवार की। रोज कल की चिंता। परतिमा की आँखें पीड़ा दबा न सकीं। दोनों आँखों से अश्रुधारा बहने लगी। वह हिकुर-हिकुर रोने लगी। जैसे हार स्वीकार करने के सिवा कोई और चारा ही न बचा हो। ब्याह के इन 25 सालों में सुख-दुख के हर लम्हे को दोनों ने साथ मिलकर जिया। संघर्ष के साथ जीत हासिल की। लेकिन ऐसा संकट पहले कभी नहीं आया। शेरुवा ने अपनी सूखी अँगुलियों के पोरों से परतिमा के आँसू पोंछे। परतिमा शेरुवा के सीने से चिपक गयी, जैसे वह पच्चीस साल पीछे चली गयी हो। 20 साल की थी जब शेरुवा उसे भगा कर लाया था। शेरुवा ने उसको सहलाया और उम्मीद जगाई कि आसमान जरूर बरसेगा और हमारे खेत भी लहलहायेंगे। नये जीवन की उम्मीद के साथ शेरुवा बोला, मत रो पगली! तुम्हारे दिल की तलाशी भी लूँगा तो लिखा होगा 'अगास से आस।'

37, प्रधान देवलो फॉमर्स,
लेन नं.-2 ई/8, एक्सटेंशन, अरेरा कॉलोनी,
भोपाल-462039 (म.प्र.)
मो.9425302001

जीवंत कविता

– अश्विनीकुमार दुबे

जन्म – 24 जुलाई 1956।
जन्मस्थान – पन्ना (म.प्र.)।
शिक्षा – इंजीनियरिंग, स्नातकोत्तर।
रचनाएँ – बाइस पुस्तकें प्रकाशित।
सम्मान – म.प्र. साहित्य अकादमी का श्री वृंदावनलाल पुरस्कार सहित अनेक सम्मान।

जगदीश 'विकल' को उनके काव्य संग्रह 'गुंजन' पर प्रादेशिक स्तर के एक बड़े पुरस्कार की घोषणा हुई, जिसमें उन्हें प्रदेश की प्रसिद्ध साहित्यिक संस्था 'चेतना जागरण मंच' ओर से एक लाख रुपए और प्रशस्ति पत्र प्रदान किया जाएगा। शहर के साहित्यकारों में आज इसी पुरस्कार को लेकर चर्चा है। कोई कहता है, विकल जी इसके हकदार थे। यह पुरस्कार तो उन्हें बहुत पहले मिल जाना चाहिए था। अन्य लोगों का कहना है, पुरस्कार पाने के लिए जुगाड़ जमाना पड़ता है। विकल जी लेखक संघ में हैं। 'चेतना जागरण मंच' में उनके कई परिचित हैं। उन्हें तो पुरस्कार मिलना ही था, जबकि प्रदेश में उनसे वरिष्ठ और अच्छे कवि बहुत से हैं। बहरहाल पुरस्कार की घोषणा हो गई है इसलिए जल्द ही राजधानी में आयोजित एक बड़े कार्यक्रम में उन्हें यह पुरस्कार प्रदान किया जाएगा।

जिला मुख्यालय से लगभग पचास किलोमीटर दूर निपानिया गाँव में विकल जी का परिवार रहता है। वे यहीं जिले में एक कमरा, जो उनके किसी प्रशंसक ने उन्हें रहने के लिए दिया है, उसमें रहते हैं। प्राय उन्हीं के कमरे में शहर के कवि अपनी गोष्ठियाँ आदि किया करते हैं। आदि से तात्पर्य यह है किए कवि मित्रों के लिए पीने-पिलाने का दौर यहीं चलता है। बाहर से कोई कवि मित्र आए तो उसके ठहरने के लिए भी यह सुरक्षित जगह है। यहाँ कोई रोक-टोक नहीं है। विकल जी शहर में रहें न रहें, कमरे की चाबी किसी स्थानीय कवि के पास होती है, जिससे नियमित गोष्ठियों में कोई व्यवधान नहीं होता और बाहर से पधारे किसी कवि को ठहरने में असुविधा भी नहीं होती। वैसे तो विकल जी किसी परिचित-अपरिचित के यहाँ जाकर कुछ भी खा-पी लेते हैं। जब कहीं कोई जुगाड़ नहीं होता तो घर के पास कल्लू का होटल है ही। कल्लू, अर्थात् कालीचरण। उसके होटल में उनकी उधारी चलती है, जहाँ वे चाय-नाश्ते से लेकर भोजन आदि अक्सर करते रहते हैं।

वे यायावर कवि कहे जाते हैं। एक झोला लटकाए घूमते रहते हैं। देशभर में संगठन की इकाइयाँ हैं, जहाँ उनकी जान-पहचान है। वे वहाँ बिना सूचना दिए पहुँच जाते हैं। लोग संकोच पूर्वक उनके ठहरने और खाने-पीने का इंतजाम कर देते हैं। दो-तीन दिन रुक कर वे मित्रों के खर्चे पर ही अगले पड़ाव के लिए प्रस्थान कर जाते हैं। कुल मिलाकर उनका जीवन स्वच्छंद है। उनके ऊपर कोई दायित्व नहीं।

यों तो शहर से निकलने वाले अखबारों में साहित्य के समाचार यदा-कदा ही छपते हैं। जब विकल जी के लिए एक बड़े पुरस्कार की घोषणा हुई, तब आज के संस्करण में सभी अखबारों में छोटा-सा समाचार छपा- 'अगले हफ्ते विकल जी को राजधानी में एक लाख रुपये और प्रशस्ति पत्र प्रदान किया जाएगा।' शैलेंद्र, शहर के एक लोकप्रिय अखबार 'प्रताप' में साहित्य एवं संस्कृति का पेज देखता है। आए दिन इस पेज में धार्मिक समारोहों, फिल्मी गानों के कार्यक्रमों और सिने जगत की गतिविधियों के समाचार छपते हैं। आजकल अखबारों में यही साहित्य एवं संस्कृति है। शैलेंद्र की इच्छा हुई कि अपने अखबार में विकल जी का एक ताजा इंटरव्यू

प्रकाशित किया जाए। यह सोचकर उसने विकल जी से संपर्क साधने की कोशिश की। ज्ञात हुआ कि वे शहर में नहीं हैं। कहाँ हैं और कब आएँगे किसी को नहीं मालूम। फोन पर उनसे संपर्क नहीं हो पाया। बड़ी मुश्किल से उनका नंबर मिलाए जो निरंतर 'आउट ऑफ़ कवरेज एरिया' बता रहा था।

शहर से 50 किलोमीटर दूर ही तो उनका गाँव है। क्यों न उनके गाँव जाकर उनकी पत्नी का साक्षात्कार लिया जाए। उनके पति को इतना बड़ा पुरस्कार मिला है। इस पर उनकी पत्नी की क्या प्रतिक्रिया है? जानना चाहिए। ऐसा विचारकर कल सुबह ही शैलेंद्र ने स्टॉफ फोटोग्राफर के साथ निपानिया जाने का निश्चय किया। शैलेंद्र सोच रहा था, विकल जी कवि हैं, उनके इंटरव्यू तो आए दिन साहित्यिक पत्रिकाओं में छपते रहते हैं। पुरस्कार के पश्चात् तो उनके कई इंटरव्यू यत्र-तत्र प्रकाशित होंगे। उनकी पत्नी से साक्षात्कार, एक नई बात है, उनकी पत्नी और परिवार के नजरिए से पुरस्कृत कवि को देखना अनोखी पहल होगी।

शैलेंद्र अपने साथी फोटोग्राफर के साथ दूसरे दिन मोटर साइकिल से निपानिया गाँव पहुँच गया। उन्हें वहाँ विकल जी घर ढूँढ़ने में कोई दिक्कत नहीं हुई। जिससे पूछा, उसने ही बता दिया 'वो सिलाई वाली बहन जी के पति का घर वो रहा, सामने वाली गली में।'

इस प्रकार वे लोग सिलाई वाली बहन जी के घर पहुँच गए। सामने की तरफ दो कमरे पक्के बने हुए थे। पीछे मिट्टी की दीवारों से घिरा हुआ बड़ा-सा अहाता था। द्वार पर अधेड़ किन्तु आकर्षक महिला से सामना हुआ। पूछने पर उन्होंने बताया 'मैं ही विकल जी की पत्नी हूँ।'

'आपके पति को प्रदेश का बड़ा पुरस्कार मिला है इसलिए हम लोग आपसे मिलने और बधाई देने चले आए। हम लोग 'प्रताप' अखबार में काम करते हैं। आपसे कुछ बातचीत करना चाहते हैं।'

'आइए। बैठिए।' सामने पड़ी हुई एक बेन्च पर उन्होंने बैठने को कहा। वे स्वयं सिलाई मशीन के पीछे एक स्टूल पर बैठी हुई थीं। कमरे में अलगनी पर महिलाओं के नए सिले हुए कपड़े लटक रहे थे, इनमें नई डिजाइन के सलवार सूट और आधुनिक शैली वाले ब्लाउज आदि देखकर शैलेंद्र और उसके साथी को आश्चर्य हुआ। भीतर जाकर विकल जी की पत्नी एक ट्रे में दो गिलास पानी ले आईं। उन दोनों के सामने टेबल पर गिलास रखते हुए उन्होंने कहा 'कहिए क्या बातचीत करना चाहते हैं आप लोग?'

कैमरे वाले ने अपना कैमरा सँभाला तो उन्होंने अपना फोटो लेने से मना करते हुए कहा 'इसकी कोई जरूरत नहीं है। आप ऐसे ही बातचीत कर लीजिए।'

शैलेंद्र ने कैमरे वाले मित्र को मना करके अपनी पैन और डायरी सँभाली फिर बोले-'आपके पति को एक बड़ा पुरस्कार मिला है। आपको यह जानकर कैसा लगा।'
'पति को पुरस्कार मिलेगा तो पत्नी को अच्छा ही लगेगा। इससे पहले भी उन्हें कई पुरस्कार मिल चुके हैं। अखबारों में छपे समाचारों से ही हमें यह ज्ञात होता है। हमारे पति हमें इस विषय में कुछ नहीं बताते।' उन्होंने कहा।

सुनकर शैलेंद्र को आश्चर्य हुआ। परंतु उन्होंने प्रारंभ से जानने के लिए बात आगे बढ़ाई-'कृपाकर आप अपना नाम और विकल जी के साथ अपने विवाह के विषय में कुछ बताएँ?'

'मेरा नाम सावित्री है। मैं यहाँ से लगभग सौ किलोमीटर दूर सिंगपुर की रहने वाली हूँ। हाईस्कूल पास करने के बाद इनसे मेरे विवाह की बात चली थी। ये मैट्रिक पास थे और यहीं निपानिया गाँव के प्राइमरी स्कूल में शिक्षक थे। जाति, कुल, गोत्र आदि अनुकूल थे और लड़का नौकरी में, इसलिए विवाह तय हो गया। मेरे पिता ने परिवार वालों की मर्जी के बाद मुझसे और इनसे अलग से भी पूछा था कि तुम दोनों की इस रिश्ते में रजामंदी हो, तभी यह विवाह किया जाएगा। पहले इन्होंने ही अपनी सहमति प्रदान की थी, बाद में मैंने। इस प्रकार हम लोगों का विवाह संपन्न हुआ और मैं निपानिया,

अपने ससुराल में आ गई। तब यह घर बिल्कुल कच्चा था।' उन्होंने पुरानी यादें दोहराईं।

'विवाह के पश्चात् परिवार के अपने अनुभव बताएँ?' शैलेंद्र ने जानना चाहा।

'जी, वे अनुभव बहुत कड़वे हैं। शादी के साल भर बाद ही हैजे की बीमारी में सास-ससुर चल बसे और उसी साल मेरी पहली बेटी ने जन्म लिया। बेटी के जन्म से इनको दु:ख हुआ था। माँ-बाप का असमय मरना और बेटी के पैदा होने का, इन्होंने मेरे ऊपर दोषारोपण किया। मैं चुप रहने के सिवा क्या करती?' कहते-कहते उनकी आँखें भर आयीं। उन्होंने अपने आपको संयत किया।

'क्या आपके पति उस समय भी कविता लिखते थे?' शैलेंद्र ने चर्चा को साहित्य की ओर मोड़ना चाहा।

'हाँ, अपनी नौकरी से ज्यादा इन्हें कविताई करने में दिलचस्पी थी। कक्षा में अपने विद्यार्थियों को पढ़ाने में इनका मन न लगता था। किसी को बताए बिना, आए दिन वे स्कूल से गायब रहते थे। लोग घर पर इन्हें ढूँढ़ने आते और यहाँ भी वे न मिलते। मुझे कुछ मालूम न होता कि वे कहाँ गए हैं। बहुत दिनों बाद मालूम हुआ कि वे कवि गोष्ठियों और सम्मेलनों के लिए बिन बताए शहर भाग जाते हैं। स्कूल के हेड मास्टर उनसे परेशान रहते। वे घर आकर मुझसे शिकायत करते। वे और मैं जब उनसे इस बाबत कहते, तो वे दोनों से लड़ने-झगड़ने लगते। इस प्रकार उनकी कविताई, परिवार और नौकरी दोनों पर भारी थी।' सावित्री जी ने आह भरते हुए कहा।

घर में सावित्री जी के अलावा और किसी को न पाकर शैलेंद्र पूछ बैठा-'आपके बच्चे?'

'हाँ, चार साल में दो बेटियाँ हुईं, जिन्हें पैदा करने के पश्चात् वे दुखी रहने लगे। स्कूल के हेडमास्टर ने बताया कि पिछले महीने स्कूल में निरीक्षण दल आया था। इन्हें नदारत पाकर, पुराना रिकॉर्ड देखते हुए इन्हें निलंबित कर दिया गया। इन्होंने घर पर मुझे कुछ नहीं बताया और एक रात घर छोड़कर चले गए। इस प्रकार मेरे ऊपर अपनी और अपनी दो बच्चियों की जिम्मेदारी आन पड़ी।' उन्होंने भरे गले से अपनी बात कही।

'आपकी दोनों बेटियाँ कहाँ हैं?'

'दोनों की शादियाँ हो गईं। दोनों अपने ससुराल में सुखी हैं। उनकी शादियों में भी वे मेहमान की तरह आए थे। शादी का इंतजाम और खर्च आदि के विषय में उन्होंने किसी से कुछ नहीं पूछा। बस, कन्यादान करके चले गए। इसीलिए दोनों बेटियाँ उन्हें बिल्कुल पसंद नहीं करतीं। जब उन्हें घर पर रहकर बच्चियों को पढ़ाना-लिखाना था, उनकी जरूरतें पूरी करनी थीं, तब वे कविताई करते हुए देश-विदेश घूम रहे थे। उनके समाचार हमें अखबारों में पढ़कर ही मालूम होते थे। न कभी कोई चिट्ठी, न कोई फोन।'

'आपने ये घर-गृहस्थी कैसे सँभाली?'

'मेरी माँ ने बचपन में मुझे सिलाई-बुनाई सिखाई और पिता ने घर के बुजुर्गों से जिद करके मुझे हाईस्कूल तक पढ़ाया। पति के अचानक चले जाने के पश्चात् ये दोनों प्रकार की शिक्षा मेरे बहुत काम आई। मैंने अपने जेवर बेचकर सिलाई मशीन खरीदी और गाँव की महिलाओं के कपड़े सिलना शुरू कर दिया। मैंने रात-दिन मेहनत की। बच्चियों ने मेरे काम में सहयोग किया और सीमित साधनों में अपनी पढ़ाई जारी रखी। जब इंटरनेट का जमाना आया, तो मेरी दोनों बेटियों ने उसमें से नई-नई डिजाइनें ढूँढ़कर मुझे बतायीं। मैंने उन्हें सीखा और मेरा कारोबार चल निकला। अब तो शहर से भी कई लड़कियाँ और महिलाएँ अपने कपड़े सिलाने मेरे पास आती हैं। इस प्रकार मैंने सामने की ओर ये दो पक्के कमरे बनवाए और दोनों बेटियों के विवाह सादगी से संपन्न किये। गाँव में कई नाते-रिश्तेदार हैं। बेटियों के ससुराल से नई रिश्तेदारी हुई है। सब कुछ मुझे ही देखना होता है। मैं जिम्मेदारी के साथ अपने दायित्वों का निर्वाह कर रही हूँ। वे यदा-कदा आते हैं, मेहमान की तरह। एक-दो रोज रुककर, चले जाते हैं। बिना

कुछ बताए। मैं कुछ नहीं कहती, इसलिए कि वे अपने स्वभाव के अनुसार झगड़ा करने लगेंगे। यही क्या कम है कि कभी-कभार इन्हें अपने परिवार की सुध आ जाती है।'

'आपको पता है, आपके पति को इस पुरस्कार के रूप में मानपत्र के साथ एक लाख रुपए की राशि मिलेगी। वे कभी परिवार की आर्थिक मदद।' . . .

शैलेंद्र वाक्य पूरा न कर पाया और सावित्री जी बोल पड़ीं 'कभी नहीं। उन्हें इसके अलावा कई पुरस्कार मिल चुके हैं। मैंने कभी उनसे कोई आर्थिक सहयोग की अपेक्षा नहीं की और उनका कभी भी घर-गृहस्थी के लिए कोई योगदान नहीं रहा। मुझे अफसोस सिर्फ इस बात का है कि जब वे परिवार की जिम्मेदारी नहीं उठा सकते थे तो उन्होंने परिवार बनाया ही क्यों? विवाह के लिए उन्होंने पहल की थी। संतान उनके सहयोग से हुई। जब जिम्मेदारी का वक्त आया तो वे भाग खड़े हुए। यह तो संघर्ष से मुँह मोड़ना हो गया।' वे कुछ रोष में बोलीं।

'आपके पति एक बड़े कवि हैं। स्त्री विमर्श के पैरोकार माने जाते हैं। अपनी कविताओं में वे समान अधिकारों की वकालत करते हैं।'

'यह सब मैं नहीं जानती। वे बड़े कवि हैं, और बड़े बनें। ज्यादा पुरस्कार मिलें उन्हें, परंतु मैं और मेरी बच्चियाँ उन्हें गैर जिम्मेदार मानती हैं। इस आक्षेप से उनकी कविताई उन्हें नहीं बचा सकती।' इतना कहकर सावित्री जी बोलीं-'बहुत देर हो गई है। चाय बनाकर लाती हूँ। पीकर जाइएगा।'

'नहीं, नहीं। इसकी कोई जरूरत नहीं है। आप परेशान न हों।' शैलेंद्र और फोटोग्राफर मित्र ने एक साथ कहा।
'परेशानी की कोई बात नहीं है। दो मिनट रुकिए। मैं अभी आई।' इतना कहकर वे रसोई घर में चली गईं।

फोटोग्राफर ने सावधानी से सावित्री जी का एक फोटो अपने मोबाइल पर ले लिया था। उसने उसे शैलेंद्र को दिखा कर कहा-'इंटरव्यू के साथ इसका इस्तेमाल कर लेंगे।'

चाय की ट्रे सामने रखते हुए सावित्री बोलीं-'देखिए मैं अपने जीवन से संतुष्ट हूँ। हाँ, संघर्ष के दिनों में पति का साथ होता तो और अच्छा होता। उनका साथ मुझे नहीं मिला, कोई बात नहीं। मुझे अब किसी से कोई शिकायत नहीं। कृपाकर आप अपने अखबार में इस बातचीत को मत छापियेगा। इसका कोई औचित्य नहीं है। आप शहर से इतनी दूर हमारे गाँव तक मुझसे मिलने आए। आपने बातचीत करने का अनुरोध किया। मैंने उसे मानकर आपसे सहज बातचीत की। अब मेरा आग्रह है कि इसे प्रकाशित मत करिए। उन्हें दुख होगा, जो मैं नहीं चाहती।'

चाय खत्म हो चुकी थी। शैलेंद्र अपने मित्र के साथ उठे और उन्होंने सावित्री देवी को प्रणाम कर जाने की इजाजत माँगी। जिस दिन राजधानी में विकल जी को यह पुरस्कार मिलना था, शैलेंद्र ने उस दिन सावित्री देवी का साक्षात्कार प्रताप में प्रकाशित करने का मन बनाया। प्रधान संपादक को उन्होंने यह महत्त्वपूर्ण साक्षात्कार दिखाया तो पढ़कर वे बोले-'मैं यह सत्य जानता हूँ। परंतु इसे प्रकाशित करना ठीक न होगा। इससे विकल जी की छवि खराब होगी।' यह कहकर उन्होंने वह लेख शैलेंद्र को वापस कर दिया।

कुछ दिनों पश्चात् दूरदर्शन पर विकल जी प्रसन्न मुद्रा में मुख्य अतिथि के हाथों पुरस्कार लेते हुए दिखाई दिए। राजधानी के संवाददाता ने वह फोटो और संक्षिप्त समाचार 'प्रताप' के लिए भेजा। सुबह के अखबार में वही छपा, जिसे देखकर शैलेंद्र को लगा कि यह पुरस्कार तो सावित्री देवी को मिलना चाहिए। सही मायनों में वे ही इस पुरस्कार की हकदार हैं। विकल जी ने तो सिर्फ कविताएँ लिखी हैं। कविता को जीने वाली महिला तो सावित्री देवी हैं।

376-बी, सेक्टर आर,
महालक्ष्मी नगर, इंदौर-452010 (म.प्र.)
मो. 9425167003

राजेन्द्र नागदेव के काव्य में पर्यावरण विमर्श

- कैलास श्रीधर भामरे

जन्म - 19 अक्टूबर 1979।
शिक्षा - एम.ए., बीएड., पीएच.डी.,।
रचनाएँ - पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित।

प्रकृति का मनोरम रूप हमेशा से ही कवियों को प्रिय रहा। संस्कृत के महाकाव्यों मे कालिदास से लेकर बाणभट्ट तक, हिंदी में कबीर, सूर, तुलसी जायसी से लेकर आधुनिक काल में प्रसाद, पंत, निराला से लेकर केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन तक सभी कालजयी कवियों ने प्रकृति के बहुविध मनोरम, जीवनदायी व नवोन्मेषशाली रूप का अंकन किया है।

मानव जीवन एवं पर्यावरण एक-दूसरे के पर्याय हैं। मानव का अस्तित्व पर्यावरण से है परंतु मानव द्वारा निरंतर किए जा रहे पर्यावरण के विनाश से हमें भविष्य की चिंता सताने लगी है। उत्तर आधुनिक युग में भूमंडलीकरण व अबाध लूट व मुनाफे पर आधारित उपभोक्तावाद ने जिस तेजी के साथ इस प्रकृति का विनाश किया है वह पूर्ववर्ती कवियों ने सोचा भी नहीं होगा। हिन्दी कविता में इसकी पीड़ा दृष्टिगोचर होना स्वाभाविक है। कवि अंततः अपने परिवेश से ही भाव ग्रहण करता है। इसलिए समकालीन हिंदी कविता जो बाजारवादी-उपभोक्तावादी संस्कृति का मुखर विरोध करती है, इसी में वह पर्यावरण संकट पर चिंता जाहिर करते हुए पृथ्वी को बचाने का आह्वान करती है।

समकालीन कवि राजेन्द्र नागदेव भी इस दिशा में मनुष्य को अपनी कविताओं के माध्यम से सचेत कराते हैं। उनके काव्य में विविध आयामों में से नवप्रवाह के रूप में पर्यावरण चिंतन प्रमुख रूप से परिलक्षित कर सकते हैं। राजेंद्र नागदेव जी का प्रथम काव्य संग्रह 1999 में प्रकाशित होता है 'सदी के अंतिम दिनों में'। उससे पूर्व कई पत्र-पत्रिकाओं में उनकी कविताएँ अवश्य प्रकाशित हुई है। परंतु काव्य संकलन के रूप में पाठकों के हाथ 'सदी के अंतिम दिनों में' के रूप में मिलती है। हाल ही में 2014 के दिसंबर में उनका नवीनतम काव्य संग्रह 'उस रात चाँद खंडहर में मिला' तथा 2016 में 'सुरंग में लड़की' तथा दिसंबर 2021 में 'धूप में अलाव सी सुलग रही रेत पर' इस काव्य संग्रह का लोकार्पण हुआ। कवि के अभी तक कुल 11 काव्य संग्रह एवं एक यात्रावृत्त प्रकाशित हुआ है।

राजेन्द्र नागदेव लेखन का आरंभ छठे दशक से ही कर चुके थे। पर उनकी काव्य यात्रा सर्वाधिक पल्लवित हुई है 1992 के बाद। इस आधार पर बीसवीं सदी के अंतिम दशक में ही उनका स्थान निर्धारित करना अधिक युक्तिसंगत होगा। आगे की यात्रा निर्बाध गति से अग्रसर है। कवि राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त पुरस्कार (अंधी यात्राएँ), हिंदी अकादमी दिल्ली द्वारा साहित्य कृति सम्मान (चक्रवात से घूमता है शून्य) अंबिका प्रसाद दिव्यजन रजत अलंकरण (अंधी यात्राएँ) स्पैनिंन साहित्य गौरव सम्मान (अंधी यात्राएँ) साहित्य सृजन सम्मान (पत्थर में बंद आदमी) आदि पुरस्कारों से नवाजे जा चुके हैं। राजेंद्र नागदेव जी की कविताओं का जापानी, बांग्ला, मराठी, अंग्रेजी, उर्दू आदि भाषाओं में अनुवाद हुआ है।

आज प्रकृति के साथ खिलवाड़ कर मनुष्य आत्म गौरव महसूस कर रहा है। आज की कोरोनाकाल की यह घड़ी सम्पूर्ण मानवजाति के लिए इस आत्म गौरव से ऊपर उठकर आत्मचिंतन की है, लॉक डाउन के कारण एक तरह से पिंजड़े में कैद मानव पर प्रकृति निश्चित ही आज स्मित हास्य करती

होगी। वरिष्ठ कवि राजेन्द्र नागदेव के अनुसार यह मनुष्य के द्वारा किया जानेवाला आत्महत्या का प्रयास ही है।

'मैं 'मनुष्य'–**धरती का स्वयंभू अधिपति/करता हूँ आत्मस्वीकार**/ कि, मैंने सुखाई हैं नदियाँ उजाड़े हैं वन /बीती शताब्दियों में/ कई बार की है मैंने आत्महत्या की कोशिश।' **(राजेंद्र नागदेव, उस रात चाँद खंडहर में मिला, 'जा रहे हैं परिंदे' पृ. 77)**

'पूँजी के ठेकेदारों की ललचाई नजर, विकास के नाम पर दुनिया के प्राकृतिक संसाधनों की लूट करने पर लग जाती हैं। जिसका पहला खतरनाक असर धीरे–धीरे विकसित हो रही अल्पविकसित देशों की लोकतांत्रिक संस्कृति और नए बन रहे जीवन मूल्यों जैसे ममता, स्वराज्य, स्वावलंबन आदि पर पड़ता है।' **(जीवन सिंह 'पचास वर्षों में हिंदी कविता की कला और समाज' (1964 से 2014 तक) 'वागर्थ' पत्रिका, पृ. 12.)**

आज के बाजारवाद और आर्थिक नीतियों ने प्रकृति को जितना दोहन किया है शायद ही कभी हुआ हो परंतु इसका अवश्यंभावी परिणाम निश्चित है कि पर्यावरण अपना संतुलन खो रहा है प्राकृतिक नियम बिगड़ रहे हैं–

'नदी ने छोड़ दिया है बहना / बहने के लिए दे हमें जल नहीं है / जल / जलकर आकाश में घुल गया / बहुत तड़पा होगा / जलने से पहले जल।' (राजेन्द्र नागदेव, सुरंग में लड़की, नदी अब नहीं बहती, पृ. 9)

'बहती हुई नदियाँ मरुस्थल बन रही हैं /धूप की चादर पर अब /नदी में सोया है / तमतमाया मरुस्थल।' (वही, नदी अब नहीं बहती, पृ. 9)

विकास का दूसरा पहलू विनाश की ओर बढ़ रहा है। पर्यावरणीय खिलवाड़ से तापमान बदल रहे हैं। ऋतु–चक्र अपने नियम तोड़ मरोड़ कर उपस्थित हो रहा है। जीव–जंतु खतरे में है, ऐसी स्थिति में पृथ्वी की असहाय और दयनीय स्थिति को देखकर कवि पृथ्वी के लिए दया मृत्यु की कामना करता है जो अपने स्तर की एक नई लाक्षणिकता भी है –

'अपार है पृथ्वी के दुख /मैं अपनी पृथ्वी के लिए दयामृत्यु चाहता हूँ / कि वह फिर जन्मे अबोध बच्चे की तरह / अपनी प्रार्थना में इसलिए प्रलय को सहेज कर रखता हूँ। (वही, प्रलय से पहले, पृ. 101)

मनुष्य ने प्रकृति धरती का इतना दोहन किया है कि आने वाली पीढ़ियों के लिए कुछ भी बचा कर नहीं रखा है। मानो पृथ्वी पर लकीरे खींच रखी हों और ग्लोब पर खींची लकीरों के बारे में अगली पीढ़ी प्रश्न पूछे तो हमारे पास कोई उत्तर नहीं होगा शायद पृथ्वी के प्रलय के लिए हमने तैयारी कर रखी है। बदलते प्राकृतिक माहौल में नदियाँ सूख रही हैं जल के लिए दुनिया तरस रही हैं। इसी भयावहता को कवि ने कुछ इस प्रकार व्यक्त किया है–

'क्यों उतरी चाँदनी नदी पर / आकाशगंगा कम थी स्नान के लिए? / उतरी हो इतनी दूर से नीचे / देखी नहीं तुमने नदी की सूखी धारा?/ पाँव तक नहीं दो सकोगी। /... / स्वच्छ जल ढूँढ़ रही है मछलियाँ / नदी के सूखे पाट पर / गिद्धों ने अनवरत महाभोज देखो / चाँदनी पलके उठाओ / तुम्हें रात में भी सब दिखेगा / इतिहासविदों को / आदि नगर उगते हुए / नदी तट पर ही दिखे थे / उनकी जड़ों ने / नदी का सारा रक्त सोख लिया है अब / चाँदनी मत उतरो यहाँ / इतनी मलिन हो जाओगी / संभव है लौटने पर / चंद्र तुम्हें ना पहचाने / मत उतरो चाँदनी, नदी पर मत करो।' (राजेंद्र नागदेव, उस रात चाँद खंडहर में मिला, नदी पर चाँदनी पृ. 87)

समय चारों ओर से आतंकित हैं पर्यावरण से खिलवाड़ के कारण शहर मरुस्थल बन रहे हैं –

'नींद की गहरी झील से निकलता हूँ
तो जागता हूँ शहर में
चील के पंजों से बचता
झाड़ियों में छिपने की जगह ढूँढ़ता
मैं शहर का आदमी अनेक दशकों से
शहर को मरुस्थल महसूस कर रहा हूँ।' (वही, तलाश पृ. 38)

संतुलित पर्यावरण के लिए सभी जीव–जंतुओं की पारिस्थितिकी बनी रहना अत्यंत आवश्यक है पर स्वार्थ के अंधे मानव ने कहीं नदी को पाट दिया तो कहीं पहाड़ों को तोड़ दिया, पौधे नष्ट कर दिए हैं। इन पेड़–पौधों पर फलने–फूलने वाले पशु–पक्षी, उनकी प्रजातियाँ लुप्त हो रही हैं। ऐसे में किसी दिन बगिया में नजर आती चिड़िया कवि के चित्त में हर्षोल्लास उत्पन्न करती है। लेकिन दूसरे ही पल उसके घोंसले को देखकर मन मसोसकर रह जाता है। पर्यावरणीय चेतना और भूमंडलीकरण के संकट को अत्यंत मार्मिक अभिव्यक्ति के साथ कवि ने यहाँ प्रस्तुत किया है –

'मैं चिल्ला कर बताना चाहता था / चिड़िया की वापसी हो गई /शब्द मेरे कंठ में अटके रहे /मैंने देखा /वहाँ पत्ते नहीं थे /वृक्ष के रेशे नहीं /घास के तिनके भी नहीं /वह अखबार के कतरनों / और पॉलिथीन के टुकड़ों से / घोंसला बना रही थी।' (राजेंद्र नागदेव, 'सुरंग में लड़की', आशावाद, पृ. 19)

स्थलांतर बदलते आर्थिक परिवेश की विवशता है। बदलते हुए आर्थिक निकष पर्यावरण / प्रकृति का दोहन कर रहा है जिससे उपजाऊ मिट्टी बंजर बन रही है और गाँव के लड़के गाँव छोड़ने पर मजबूर हो रहे हैं। आज इस देश के अनेक गाँव उजड़ चुके हैं और हमारी वन संपत्ति जंगल, जमीन, और जल मिटाने की कगार पर खड़े दिखाई देते हैं।

'उसने काम छोड़ दिया
बड़ी उम्र के दस पड़ोसियों में सम्मिलित होकर
अनजान शहर की दिशा में निकल गया
अब वह महानगर के किसी जगमगाते रेस्टोरेंट में
देर रात तक माँज रहा होगा जूठे बर्तन
अथवा किसी भव्य लक्ष्मी पुत्र को
टीप का आभार चुकाता
यांत्रिक पुतले की मुद्रा में
बजा रहा होगा सलाम
सिकुड़ा हुआ लड़का। (राजेन्द्र नागदेव, पत्थर में बंद आदमी, 'सिकुड़ा हुआ लड़का', पृ. 92)

खनन माफिया ने धरती का, पहाड़ों का इतना दोहन किया है कि पहाड़ों की सूरत ही बदल चुकी है। पहाड़ नहीं बल्कि बड़े-बड़े दर्रे गह्वर बन चुके हैं। यह इतना खतरनाक है कि पहाड़ों के अस्तित्व के साथ-साथ वहाँ रहने वाले जनजातियों के जीवन पर प्रश्न चिन्ह है?

'पहाड़ों में देख रही हो गह्वर
उठो गीतो लड़खड़ा कर गिरोगी
रात के सन्नाटे में
नहीं आएगा कोई उठाने
यह गह्वर झरने ने नहीं बनाए चाँदनी
यह उल्काओं के हस्ताक्षर भी नहीं
यह कभी भी, कहीं भी पलक झपकते बन जाते हैं इन दिनों
तुम खनन माफिया को नहीं जानती चाँदनी
दूर तक पहाड़ गवहारों से भरा है
चलोगी यहाँ किस तरह? (राजेंद्र नागदेव, उस रात चाँद खंडहर में मिला, 'पहाड़ पर चाँदनी' पृ. 89)

पहाड़ों का होता दोहन प्रकृति का असंतुलन हैं साथ ही वहाँ के पशु पक्षी और मानव जातियों के लिए मँडराता हुआ खतरा। वहाँ का कठिन जीवन आज के समय की बहुत बड़ी चुनौती है बच्चों का बचपन, युवतियों का यौवन जीवन की जटिलताओं में फँसा हुआ है और सबसे दर्दनाक है कि इसे देख कर अनदेखा करने की प्रवृत्ति बढ़ी हुई है। जो कुछ कर सकते हैं उनमें इच्छाशक्ति की कमी है, जो कुछ कर नहीं सकते केवल आँसू बहा पाते हैं। परंतु समाधान नहीं मिल पाता समस्या वहीं रह जाती है-

'उठेगी तो सुबह से पहले
पीठ पर बच्चों को बाँध
लकड़ी के गट्ठर सिर पर सँभाले
जंगल से गुजरती पहाड़ी बालाएँ मिलेगी चाँदनी
पहाड़-सा जीवन कंधों पर ढोती
उनको कोमलांगियों के दुर्दैव पर रो नहीं पाओगी
ढलकने से पहले यहाँ
आँखों की कोर पर जम जाते हैं आँसू
यहाँ के झरने भाप बनकर हवा में घुल गए हैं
चट्टानों पर बहने के निशान शेष हैं बस
तुम यहाँ प्यासी रह जाओगी चाँदनी।' (वहीं, पृ. 90)

प्राकृतिक खिलवाड़ के लिए जिम्मेदार मानव को पशु-पक्षियों ने भी पहचाना है और वह मानव रूपी राक्षसों से बचकर कहीं दूर जाना चाहते हैं मानव के द्वारा किए गए दुराचार ने संपूर्ण मानव जाति को बदनाम कर दिया और निरीह मनुष्य जो पर्यावरण प्रेमी है, जो पशु-पक्षियों से प्रेम करना चाहता है, उनका घर बसाना चाहता है, उनसे भी चिड़िया डर कर भाग रही है। यह मानव के लिए भयानक स्थिति है-

'दो हाथ दो पाँव वाला हरजीव वैसा ही नहीं होता
जैसा वे समझ रही हैं
मैं अपने हाथ और पाँव
छिपाने की कोशिश कर रहा हूँ
पहचान मिटाने की कोशिश कर रहा हूँ।'
(वही, 'चली गई चिड़िया', पृ. 91)

आज खोखले उदारमतवाद के नाम पर पशु-पक्षी और पर्यावरण के प्रति मनुष्य का दिखावटी प्रेम उमड़ रहा है। परंतु मानव मानव के साथ सही व्यवहार करना नहीं सीख पा रहा है-

'तुमने गिलहरियों के लिए बिखरा दिए दाने
चिड़ियों के लिए फैला दिया जमीन पर आटा
आवाज लगा दी कौओं को
वे आसपास वृक्षों पर आ गए जाने कहाँ से
किस तरह सीखली उन सब की भाषाएँ
और किस तरह नहीं सीखे
सीख सके थे
अभी-अभी तक आदमी की भाषा
मेरे मन में यह प्रश्न सदियों से उठ रहा है।' (वही, 'बाहर निकल कर' पृ. 43)

राजेन्द्र नागदेव पर्यावरण के प्रति अत्यधिक संवेदनशील हैं। चिड़िया की मृत्यु पर वे आहत हैं और किसी प्रकार वह बात उनके एहरीदे से निकल नहीं पाती है–

'मेरे अंदर एक चिड़िया की लाश है अभी तक
मेरे अंदर एक चीख है अभी तक
अभी तक एक तड़प है
और अभी तक पंखों का
अंतिम बार फड़फड़ाना है।
अभी तक छोटा सा वह पत्थर है
अभी तक तानी हुई गुलेल है
झाड़ी से बेरों को गिराने का मौसम है
और पीले बेरों पर पड़े
रक्त के लाल छींटे हैं अभी तक
इस निर्जन एकांत में
अकेला नहीं हूँ मैं।
(राजेन्द्र नागदेव, गूँगी घंटियाँ, 'अकेला नहीं हूँ मैं' पृ. 36)

'कल तालाब वाली जगह कंक्रीट होगा कोलतार होगा
न पेड़ होगा ना परछाईं
कांक्रीट के उजाड़ रेगिस्तान में
परिंदों की आवाज भटकेगी कुछ दिन पानी की तलाश में
उसके बाद तय है कि सदियों तक
और दिशाओं की अंतिम सीमा तक
आदमी भटकेगा
उन आवाजों की तलाश में।' (15)

आज विकास की आड़ में हो रहे पर्यावरणीय खिलवाड़ कवि को खलती है। इस मानवीय हस्तक्षेप के कारण मौसम का सम्पूर्ण चित्र व प्रकृति की सभी गतिविधियाँ अनियमित होने लगी है। यह हमारे समय की हमारे ही द्वारा ओढ़ी गई भयानक त्रासदी है। पहाड़ों के नंगे होने के साथ–साथ नदियाँ भी दम तोड़ रही हैं –

'क्या हुआ इस बार
पहाड़ों के कैलेंडर किसने बदल डाले
मई मास में दिसंबर होता था यहाँ
धूल पड़ी सड़कें उजाड़ पगडंडियाँ
बुखार में कसमसाती तप्त हवा
उड़ चुके कपड़ों को खोजते नंगे पहाड़
कंकाल अस्तित्व में शेष मरणासन्न नदियाँ बहती हुईं
बहने के लिए जल चाहिए।

पशु–पक्षियों की अनेक प्रजातियाँ नष्ट होने की कगार पर हैं। इन मूकप्राणियों के जीवन को दर्दनाक बनाकर उनके जीवन में जहर घोलने का कार्य हम सभी ने, मानव जाति ने किया है पर्यावरण के साथ खिलवाड़ हमने की है –

'उड़ती हुई चिड़ियों को उस दिन देखा मैंने
झड़ने लगे थे पंख
पंजों में आने लगी थी अकड़न
चोंच की रंगत जा चुकी थी
मैं रोककर सुनना चाहता था
दुर्दैव की कथा उनकी ही भाषा में
कथा के बहुत से अध्याय मैंने ही लिखे थे
कुछ नहीं बोली।'

हम कह सकते हैं कि पर्यावरणीय चिंता समकालीन कवि राजेंद्र नागदेव कि कविताओं की केंद्रीय चिंता है। उनकी एवं अन्य प्रमुख समकालीन कवियों के काव्य में सामाजिक विमर्श, राजनीतिक विमर्श, आर्थिक विमर्श, स्त्री विमर्श, आदिवासी विमर्श इन विविध आयामों को देखा जा सकता है। परंतु पर्यावरण विनाश के कारण जब जीवन ही नहीं रहेगा तब जीवन के विविध विमर्शों की बात मायने नहीं रखती। अन्य विमर्शों की बात तभी आगे बढ़ सकती जब हमारा जीवन सुरक्षित होगा और इसके लिए पर्यावरण को बचाना होगा, इसके लिए संवेदनशीलता एवं संवेदनशील पीढ़ी का निर्माण आवश्यक है और यह कार्य कवि की कविता कर सकती है। पर्यावरण के प्रति अत्यंत गंभीर रूप से विमर्श की आवश्यकता बन पड़ी है। राजेन्द्र नागदेव एवं अन्य समकालीन कवियों ने भी इस विषय को अपनाया है जिसे और अधिक व्यापक स्टार पर अपनाया जाना समय की माँग है।

स्नातकोत्तर शिक्षक (हिन्दी)
केन्द्रीय विद्यालय वायुसेना स्थल ओझर,
जि. नासिक-422221 (महा.)
मो. - 9970969952

कामायनी में प्रतीकों की अवधारणा

- सुषमा देवी

जन्म - 1 जून 1980।
जन्मस्थान - मिर्जापुर (उ.प्र.)।
शिक्षा - एम.ए., एम. फिल., पीएच.डी, बीएड, सी-टेट, अनुवाद डिप्लोमा।
रचनाएँ - पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित।

हिंदी साहित्य के महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षर जयशंकर प्रसाद की कृति 'कामायनी, हिंदी की कालजयी रचनाओं में गिनी जाती है। तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' लिखकर मध्ययुगीन जनता को जीवन में सकारात्मकता की राह दिखाई। आधुनिक काल में जयशंकर प्रसाद की 'कामायनी' में मानवता के विकास का मार्ग प्रशस्त किया गया है। विकास की कड़ी को इस प्रकार आबद्ध किया गया है कि पाठक इसे पढ़कर कई प्रश्नों के उत्तर एक साथ प्राप्त कर लेते हैं। मूल कथा के साथ अवांतर कथा को कवि ने बड़ी सुंदरता से अंतर्गुम्फित किया है। कवि ने इतिहास तथा पुराण के साथ ही अपने युगगत दृश्य का तारतम्य जोड़ा है। स्वयं कवि ने 'कामायनी' की भूमिका में इस बात का उल्लेख किया है कि मनु, श्रद्धा और इड़ा आदि अपनी ऐतिहासिकता के साथ अपना सांस्कृतिक अर्थ रखें तो उन्हें कोई आपत्ति नहीं। मनु मन और मस्तिष्क से अर्थात श्रद्धा और इड़ा से समान रूप से जुड़े हुए हैं। मात्र यही नहीं कामायनी के प्रत्येक सर्ग के नामकरण में भी कवि ने चिंता, आशा, श्रद्धा, काम, वासना, लज्जा, कर्म, ईर्ष्या, इड़ा, स्वप्न, संघर्ष, निर्वेद, दर्शन, रहस्य तथा आनंद आदि के द्वारा मानव के आंतरिक कार्य व्यापारों को भी सम्बद्ध किया है। यदि 'कामायनी' का दार्शनिक स्तर पर विश्लेषण करें, तो पाएँगे कि इसमें मनोवैज्ञानिक दृष्टि को अपनाया गया है।

इस कृति को छायावाद का उपनिषद तथा आधुनिक जीवन काव्य माना जाता है। 'कामायनी' को मात्र जयशंकर प्रसाद की ही नहीं, अपितु हिंदी कविता की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि के रूप में महाकाव्य के स्थान पर प्रतिष्ठापित किया गया है। नामवर सिंह ने इसे ' भारत की आधुनिक सभ्यता का प्रतिनिधि महाकाव्य' कहा है।

(नामवर सिंह, कामायनी के प्रतीक नामक लेख, कामायनी : मूल्यांकन, संपा. : इंद्रनाथ मदान), नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ. 106)

कामायनी के प्रतीक वैवस्वत मनु को विवस्वान के पुत्र अर्थात् सूर्य पुत्र के रूप में कवि ने प्रतिपादित किया है। मानव सृष्टि के आदि पुरुष मनु को पहले कल्प में द्रविड़ देश के राजा सत्यव्रत के रूप में जाना जाता है। जब वे कृतमाला नदी के तट पर संध्या तर्पण कर रहे थे, उसी समय एक छोटी मछली उनके हाथ में आ जाती है। प्रतीक यहाँ पर इस रूप में समझा जा सकता है कि सृष्टि में आने वाले शिशु को संसार समुद्र में स्वनिर्भर बनने के लिए अकेले नहीं छोड़ा जा सकता है। जब छोटी मछली मनु से अपनी सुरक्षा की प्रार्थना करती है तो यह इसी बात का प्रतीक है कि संसार सागर की दूसरी बड़ी मछलियों की वह ग्रास नहीं बनना चाहती है। भारत पर अंग्रेजों का आधिपत्य तथा एक मानव द्वारा दूसरे मानव की संस्कृति तथा पहचान को निगलने का यह प्रतीक है। यहाँ मनु का कमंडल परिवार है तथा उनका 'डोल' आस-पड़ोस है। व्यक्ति के व्यक्तित्व का समग्र विकास करना हो तो परिवार तथा उसका आस-पड़ोस ही पर्याप्त नहीं होता, बल्कि विस्तार में ही मानव जीवन का निस्तार है। यही कारण है कि मनु उसे तालाब में डालते हैं। व्यक्ति का सतत् व्यक्तित्व परिमार्जन करने के लिए पुन: विस्तार नदी में मछली का पहुँचना है और

जीवन के घात-प्रतिघात संसार समुद्र में जाने के बाद ही मानव को झेलने पड़ते हैं। ऐसे ही घात-प्रतिघातों का सामना करते समय जो निर्बल है, वे मिट जाते हैं तथा जो सबल है, वे ही बच पाते हैं। हर तरह की झंझावातों से जूझ कर ऐसे मानव बड़ी मछली की भाँति सबको बचाते हैं। प्रतीकों के माध्यम से कई बार किसी समाज और संस्कृति की सर्जना-पुनर्सर्जना का यत्न किया जाता है-

'संस्कृति या समकृति कोई निर्मित वस्तु न होकर विकास का अनवरत क्रम है, मनुष्य का प्रत्येक कर्म अपने पीछे विचार, चिंतन, संकल्प, भाव तथा अनुभूति की दीर्घ और अटूट परंपरा छिपाए रहता है, इसी से संस्कार-क्रम भी अव्यक्त और व्यक्त दोनों सीमाएँ छूता हुआ चलता है। भाषा संस्कृति का लेखा-जोखा रखती है। अत: वह भी अनेक संकेतों और व्यंजनों में ऐश्वर्यवती है।' **(महादेवी वर्मा, संभाषण, साहित्य भवन, प्रा.लि., इलाहाबाद, पृ.78)**

'कामायनी' में विष्णु का मत्स्य-अवतार जीवन के अलग-अलग वातावरण में पल-बढ़कर रक्षक का रूप धारण करता है। 'कामायनी' में श्रद्धा काम की पुत्री है, यह जीवन के चार पुरुषार्थों धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष में से एक महत्त्वपूर्ण बिंदु है, जो सृष्टि सृजन का मूल केंद्र है। काम का संतुलित नाम श्रद्धा है। वह मनु के वासना को यज्ञ का सान्निध्य प्रदान करके जीवन के विकास का संकल्प लेती है। जीवन के झंझावातों से वेद रूपी ज्ञान ही रक्षा कर सकते हैं। मनु के साथ नाव में वेद, पुराण, सूर्य, नदी, सप्तर्षियों, औषधियों का साथ रहना, जीवन चक्र के लिए जल, थल, अग्नि, वायु, अंतरिक्ष आदि को अपरिहार्य बताते हैं। इन सबके साथ ही प्रलय में शंकर का शेष होना यहाँ सृजन और विनाश के संतुलन का प्रतीक है। शंकर के बिना मात्र सृजन का आधार सामने हो तो संतुलन बिगड़ना अपरिहार्य है। कवि ने सृजन संकेत के साथ ही इसी ओर इंगित करते हुए अंत के प्रतीक को साथ रखा है।

विश्व में दूसरे धर्म ग्रंथों में भी सृष्टि के विनाश का कारण अधर्म, अनाचार तथा पापाचार को माना गया है। हिंदी साहित्य के मध्य युग में मलिक मोहम्मद जायसी ने 'पद्मावत' को अन्योक्तिपरकता के साथ सृजित किया है। अमेरिकन विद्वान एबरक्रॉम्बी ने कहा है कि रूपक काव्य पूर्णत: महाकाव्य न होकर उसकी विशेषताएँ लिए होता है। उसके पात्र निर्जीव एवं अमूर्त भावों के प्रतीक होते हैं। उसमें सर्वत्र एक आध्यात्मिक सत्य की ही प्रधानता रहती है, उसके रूपक या सांकेतिकता का अंत तक निर्वाह होता है।

'कामायनी' की श्रद्धा पात्र आदर तथा निष्ठा की प्रतीक है। इड़ा बुद्धि, वाणी तथा पृथ्वी की प्रतीक है। मनु मन का, मनन का प्रतीक है। श्रद्धा आदर, सम्मान, निष्ठा के शाश्वत भाव की प्रतीक बनकर महाकाव्य में प्रस्तुत है। इड़ा बुद्धि, भौतिकता, मननीयता की प्रतीक है। कवि ने इड़ा के राज्य का नाम सारस्वत देश रखा है। सरस्वती बुद्धि और विद्या की देवी है। मनु तपस्यारत जीवन आरंभ करता है, किंतु मन केंद्रित नहीं हो पाता है। उस तपस्वी के जीवन में चिंता है, किन्तु चिंतन नहीं है। चिंता को लेकर जीवन का विकास किया ही नहीं जा सकता है। चिंतन से, मनन से जीवन को गति मिलती है। जीवन के प्रति श्रद्धा का भाव हो, तो निरंतर आशा का संचार होता रहता है। बुद्धि और मन की क्रियाएँ काम से पुष्ट होती हैं। काम, जो यहाँ कामना का प्रतीक है, कामना जब वासना बनती है, तो उसका उच्छृंखल रूप मानव समाज की अवनति का कारक बनने लगता है। ऐसी स्थिति में कवि ने लज्जा रूपी भाव को आवश्यक माना है।

कवि प्रसाद ने कर्म की ओर प्रवृत्त मानव को सचेत किया है। क्योंकि कर्मरत मानव अपने जीवन के उद्देश्यों को प्राप्त करने में जब संलग्न होता है तो ईर्ष्यालु प्रवृत्ति के लोग उसे हानि पहुँचाने का प्रयत्न करते हैं। ऐसे में मनु का इड़ा के सारस्वत प्रदेश में पहुँचकर उस पर अधिकार जमाने की चेष्टा संघर्ष का मार्ग खोल देती है। आज का मानव बुद्धि के पथ पर पहुँचकर अति बौद्धिक स्वरूप में आत्म संघर्षरत हो गया है। जहाँ उसकी संवेदनाओं की जड़ें सूखने लगती हैं। श्रद्धा का स्वप्न में मनु को दुरावस्था में देखकर उसे बचाने पहुँचना, मानव विकास की पराकाष्ठा में संवेदना का साथ होना दिखाया गया है। प्रसाद ने स्त्री को सक्षम, संतुलित रूप में चित्रित करते हुए समाज की आदिम समस्या को भी प्रतीक रूप में प्रस्तुत किया है। श्रद्धा का अपने पुत्र मानव को अकेले पालना, इस बात

का प्रतीक है कि सीता, शकुंतला हो या जीजाबाई जीवन की कठिन परिस्थितियों में भी वे अपनी संतान का भली-भाँति पालन-पोषण अकेले करने में सर्वथा समर्थ हैं।

मनु का श्रद्धा द्वारा सारस्वत प्रदेश में इड़ा पर अधिकार जमाने के प्रक्रम में जनता द्वारा संघर्ष करने पर बचाया जाना, उसके मन को गहरे निर्वेद से भर देता है। ऐसी स्थिति में श्रद्धा जीवन के दर्शन से मनु को अवगत कराते हुए जीवन के रहस्य को उद्घाटित करती है। जीवन को जीने का सही ढंग जिसे आ गया हो, उसे जीवन में आनंद ही आनंद का अनुभव होता है। जीवन के आनंद से मोक्ष का द्वार खुलता है। कवि ने महाकाव्य में किरात और आकुलि को दुष्ट शक्तियों के प्रतीक रूप में चित्रण किया है। श्रद्धा और काम के वशीभूत मनु ने जीवन कर्म को कर्मकांड समझ कर यज्ञ को बलि मान लिया था। जब जीवन में कर्मकांड बढ़ने लगे तो जीवन का विनाश होने लगता है। घर, परिवार तथा समाज में जीवन को आहुति के समान जीकर ही संसार यज्ञ में पूर्णता प्राप्त किया जा सकता है। जीवन का सार दूसरों को सुखी देखने हेतु निमग्न रहने में है, दूसरों को समाप्त करके सुखी नहीं रहा जा सकता है। श्रद्धा हिंसा वृत्ति से मनु को बचाना चाहती है, किंतु आकुलि और किरात के द्वारा भ्रमित किए जाने के बाद मनु यज्ञ में अपने ही द्वारा पालित पशु की बलि दे देते हैं। श्रद्धा को गर्भवती अवस्था में छोड़कर मनु आत्म सुख की प्राप्ति के लिए दूसरे स्थान पर चले जाते हैं। जीवन में उन्मुक्तता को सुख मानकर वे जब सारस्वत प्रदेश में पहुँचते हैं, तो उन्हें काम का श्राप मिलता है। अंग्रेजी शासन की स्वच्छंदता तथा जीवन की उन्मुक्तता में मनु जैसे पात्र का प्रतीक रूप कवि ने प्रस्तुत करते हुए ऐसे जीवन को दुखमय बताया है। अतिभौतिकतापूर्ण जीवन में मानव कभी भी सुखी नहीं हो पाता। वर्तमान से असंतुष्ट मानव भविष्य के लिए सतत् जूझता रहता है। मनु श्रद्धा विहीन जीवन में इड़ा का आमंत्रण पाकर निरंतर विकास पथ पर अग्रसर होता है। जब स्त्री स्वयं से समर्पण करें तो जीवन को अर्थ प्राप्त होता है लेकिन जब उसे बलपूर्वक प्राप्त करने का प्रयत्न किया जाता है तो विनाश अवश्यंभावी है।

संसार में 'स्वत्व' की विचारधारा प्रकृति ने सभी जीवों में आरोपित किए हैं। 'संघर्ष' सर्ग में प्रसाद ने मनु के द्वारा सारस्वत प्रदेश की चौमुखी उन्नति को बताया है। मनु शासन के नियम को जनता पर लागू करते हैं तथा स्वयं को निरंकुश एवं स्वतंत्र मानते हैं, वे स्वयं के द्वारा बनाए गए नियमों का पालन नहीं करते हैं। अंग्रेजों ने भी मनु की भाँति कई प्रकार के नियम कानून बनाए, जिसे भारतीय जनता के लिए तो अनिवार्य बनाया, किंतु स्वयं के लिए उन नियमों को मानना आवश्यक न समझा। अनाचार, अत्याचार की अति से भारतीय जनता अंग्रेजी शासन के विरुद्ध आंदोलनरत हो जाती है। इड़ा मनु के धराशायी और घायल होने पर सोचती है कि किस प्रकार वह परदेशी को मान-सम्मान, अधिकार देती है, उसे शासन का भार सौंपती है, किंतु परिणाम इतना भयावह सामने आता है। व्यापार के उद्देश्य से भारत में आए अंग्रेजों ने सड़क, यातायात, उद्योग धंधों के द्वारा भारत के विकास की नींव रखी, किंतु अपनी अहम्मयता में अंग्रेजी शासन ने अपनी सीमा रेखा पार करके अपने विनाश का राह खोल दिया। मनु द्वारा सारस्वत नगर की जनता का वर्ग-विभाजन करना, उसके लिए ही परेशानी का कारण बन गया। इन्हीं संकेतों को निम्न वाक्यों से समझ सकते हैं।

'वास्तविकता अनेक प्रतीकों द्वारा प्रस्तुत होती है। सामाजिक क्रांति को, युद्ध और संघर्ष को प्राय: प्राकृतिक विप्लव द्वारा ही सूचित किया जाता है। इस प्राकृतिक विप्लव में कभी-कभी अतिप्राकृतिक शक्तियाँ भी काम करती हैं। जब प्राकृतिक विप्लव में, आकस्मिक रूप से अतिप्राकृत शक्तियाँ योग देती हुई बताई जाती हैं, तब यह अनुमान होना स्वाभाविक ही है कि फैंटेसी का अंकनकर्ता नियतिवादी है।' **(गजानन माधव मुक्तिबोध, कामायनी एक पुनर्विचार, राजकमल प्रकाशन, पृ. 13)**

प्रसाद ने देश में जाति तथा वर्ण व्यवस्था के दुष्परिणामों पर इसी माध्यम से प्रकाश डाला है। श्रद्धा कुमार को इड़ा के पास छोड़ते हुए कहती है कि इड़ा से तुझे जो स्नेह मिलेगा, उससे तेरा मुझसे बिछड़ने का दु:ख दूर हो जाएगा। यह तर्क प्रधान है, तू श्रद्धा पुत्र विश्वास प्रधान है। दोनों का संयोग कल्याणकारी होगा। प्रसाद के शब्दों में-

'हे सौम्य! इड़ा का शुचि दुलार, हर लेगा तेरा व्यथा भार

यह तर्कमयी तू श्रद्धामय, तू मननशील का कर्म अभय,
इसका तू सब संताप निश्चय, हर ले, हो मानव भाग्य उदय
सबकी समरसता कर प्रचार, मेरे सुत! सुन माँ की पुकार।'
(दर्शन सर्ग, पद-23)

श्रद्धा तो यहाँ माध्यम है, वास्तव में प्रसाद शासक वर्ग को प्रेरणा दे रहे हैं कि जनकल्याण ही शासन का उद्देश्य होना चाहिए। मनु का सारस्वत प्रदेश में श्रद्धा और कुमार को सुप्तावस्था में छोड़कर जाना स्थितियों से पलायन करने का प्रतीक है। मनु श्रद्धा को जब गर्भावस्था में छोड़कर आत्म सुख की प्राप्ति करने के लिए निकलते हैं, तो उनके लिए यह अति आत्मसुख आत्मघाती बन जाता है। वहीं जब वे ग्लानिवश दूसरी बार पलायन करते हैं, तो जीवन दर्शन की खोज में वे गुफा में प्रवेश करते हैं। श्रद्धा पुन: मनु को चेतना के प्रकाश से समरसता की ओर अग्रसर करती है।

'प्रसाद ने अतीत की भावुक गौरव-छायाओं से ग्रस्त, वेदोपनिषदिक आर्य वातावरण से अनुप्राणित, समाजादर्श से प्रेरित होकर अपनी विश्व-दृष्टि तैयार की, यह विश्वदृष्टि कामायनी में प्रकट हुई।' **(गजानन माधव मुक्तिबोध, कामायनी एक पुनर्विचार, राजकमल प्रकाशन, पृ. 16)**

मनु और श्रद्धा को 'रहस्य' सर्ग में तीन प्रकाश बिंदु दिखते हैं, जो तीनों लोकों के प्रतीक हैं, साथ ही वे इच्छा, ज्ञान, क्रिया रूपी पहली प्रकाश बिंदु हैं। कवि ने इच्छा को पूरी करने के लिए ज्ञान तथा उसे क्रियान्वित करना आवश्यक माना है। इच्छा पाप-पुण्य, आकांक्षाओं की लहरें बनकर मानव मन को आलोड़ित करती रहती है। कर्म का प्रकाश बिंदु निरंतर गतिमान रहता है। ऐसे श्रम एवं कोलाहल से पंच भूतों की गति चलती रहती है। तीसरी प्रकाश बिंदु ज्ञान की है। ज्ञान लोक में सारी व्याख्याएँ धर्म के आधार पर होती है। वे सभी ज्ञान लोकवासी पुण्य कर्म का संचय तो करते हैं, किंतु उसका उपभोग नहीं कर पाते हैं। इच्छा, ज्ञान, क्रिया मिलकर त्रिपुर रूप में जीवन सौंदर्य का उद्घाटन करते हैं। 'कामायनी' को यदि जीवन का सार रूप माने, तो कोई अत्युक्ति न होगी। श्रद्धा मनु को चिति समुद्र के बुलबुला रूपी मानव मानती है और जब कुमार के साथ इड़ा मनु और श्रद्धा से पर्वत प्रदेश पर मिलने जाती है, तो मनु जीवन की समरसता का सार इड़ा को समझाते हैं। श्रद्धा मनु के समरस भाव तथा ब्रह्मांडीय विचारधारा से अति आनंदित होती है। 'कामायनी' की ये पंक्तियाँ इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय हैं -

'सब भेदभाव भुलवाकर, दु:ख सुख को दृश्य बनाता
मानव कह दे 'यह मैं हूँ' यह विश्व नीड़ बन जाता।
समरस थे जड़ या चेतन सुन्दर साकार बना था,
चेतनता एक बिलसती आनंद अखंड घना था।'
(आनंद सर्ग, पद-80)

प्रसाद के आनंद की इसी अवधारणा को आलोचक गजानन माधव मुक्तिबोध के शब्दों में इन शब्दों में व्यक्त किया गया है-

'अधिक से अधिक प्रसाद जी के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि 'कामायनी' में जिस समरसता के दर्शन को वे सामने रखते हैं वह उदार पूँजीपति-व्यक्तिवादी दर्शन है जो यदि एक मुँह से वर्ग-विषमता की निंदा करता है तो दूसरे मुँह से वर्गातीत, समाजातीत व्यक्तिमूलक-चेतना के आधार पर समाज के वास्तविक द्वंद्वों का वायवीय तथा काल्पनिक प्रत्याहार करते हुए 'अभेदानुभूति' के आनंद का ही सन्देश देता है। **(गजानन माधव मुक्तिबोध, कामायनी एक पुनर्विचार, पृ. -28)**

जयशंकर प्रसाद ने 'कामायनी' की सर्जना भले ही मिथकीय तथा पौराणिक धरा से लिया हो, लेकिन उन्होंने इसके कथानक को युगगत सन्दर्भ से इस प्रकार जोड़ा है, जो अपने युग को वाणी देने में पूर्ण सक्षम रही है। एक महाकवि की यही सबसे बड़ी महानता होती है कि वह अपने युग की शाश्वतता को अभिव्यक्त करने के साथ ही युग परिवर्तन का कारक बने। साहित्य और समाज के अंतर्संबंधों की यही सार्थकता होती है। जो बात प्रत्यक्ष कहने से अल्पज्ञानियों को खटकती है वही परोक्ष अथवा प्रतीक रूप में होने पर अपने सृजन उद्देश्य को सार्थकता प्रदान करती है।

असिस्टेंट प्रोफेसर (हिंदी)
भाषा विभाग, भवंस विवेकानंद कॉलेज,
तेलंगाना-500094
मो.-9963590938

आदिवासी काव्य में : राष्ट्रीय और सांस्कृतिक चेतना

– रागिनी स्वर्णकार

जन्म – 01 मई1970।
जन्मस्थान – बेगमगंज, रायसेन म.प्र.।
शिक्षा – बी.एससी., एम.ए., एम.एड., शोधकार्यरत।
रचनाएँ – तीन पुस्तकें प्रकाशित।
सम्मान – साहित्यिक संस्थाओं द्वारा सम्मानित।

प्रत्येक युग का साहित्य जिस राष्ट्र व समाज के देशकाल के परिवेश में रचा जाता है, वह राष्ट्रीय चेतना एवं सांस्कृतिक चेतना में अवश्य संपृक्त रहा करता है। काव्य वास्तव में क्या है? वह विचारों की अभिव्यक्ति का एक कलात्मक साधन ही तो है। काव्य एक और जहाँ अपने कलेवर के निर्माण के लिए जीवन के शाश्वत तत्वों से भाव–सामग्री ग्रहण करता है वहाँ सामयिक परिस्थितियाँ, मूल्य, मान और आवश्यकताएँ भी उसके स्वरूप निर्माण में सहायक हुआ करती हैं। अपने युग परिवेश से कटकर कोई भी काव्य, कविता तो क्या साहित्य की कोई भी विधा अपने को जीवित नहीं रख सकती। राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक चेतना, अपने समग्र स्वरूप एवं परिवेश में तभी अभिव्यक्ति पा सकती हैं जब कोई समाज या राष्ट्र संकट एवं संघर्ष की परिस्थितियों से गुजरता हुआ भी, पूर्व निर्मित मूल्यों की रक्षा कर पा रहा हो या फिर नव मूल्यों का निर्माण करने में संलग्न हो। हिंदी काव्य का यह सौभाग्य कहा जाएगा कि जिस दिन से वह अपने एवं प्राकृत से अलग हटकर स्वतंत्र स्वरूप निर्माण की दिशा में अग्रसर हुआ है, उस दिन से इस देश की एवं उसके प्रत्येक समाज की परिस्थितियाँ कुछ ऐसी संघर्षमयी और संक्रमणकालीन रहीं कि उनसे यह देश आज भी निकल नहीं पाया है। अनेक बार इस देश के राष्ट्रीय मूल्यों पर अनेक संकट आ चुके हैं अनेक बार ऐसा लगा कि देश के राष्ट्रीय मूल्य और मान विघटन के कगार पर पहुँच कर चरमरा कर गिर पड़ना चाहते हैं, पर ऐसे घोर संकट–काल में भी गिरावट नहीं आने पाई। जिस प्रकार ऊपर उभर आई राख, चिंगारी को दबा देती है। उसी प्रकार वहाँ दबाव के अनेक क्षण कई बार लंबे अवसर भी आए हैं पर वह चिंगारी बुझी कभी नहीं। कभी दबकर और कभी स्पष्टत: भड़क कर हमेशा प्रज्ज्वलित होती रही। वह एक निखरा हुआ तथ्य है कि हिंदी काव्य ने अपने परिवेश में अनादिकाल से उस चिंगारीवत राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक चेतना को सजाए–सँभाले रखा है। हजार–बारह सौ वर्षों का काव्य का इतिहास इस बात का प्रबल एवं स्पष्ट साक्षी है कि उसने कभी वीर–रस का परिधान पहनकर कभी शांत, भक्ति आदि रसों के पर्यावरण में, राष्ट्रीय–चेतना और सांस्कृतिक–चेतना को अनवरत नवसंजीवनी प्रदान की है। राष्ट्रीय आकांक्षाओं को युगानुकूल नये–नये संबल प्रदान कर जीवंत एवं प्राण तत्वों से सजाकर उसमें संचार किया है। फिर भले ही वह किसी भी समाज के काव्य से जुड़ा हो।

आदिम भारत के लोगों को हमारे संविधान में आदिवासी अथवा जनजाति के रूप में व्यक्त किया गया है। जंगल में रहने के कारण इन्हें भिन्न–भिन्न नामों जैसे वनवासी, आरण्यक, धरती –पुत्र, वन–पुत्र इत्यादि नामों से पुकारा जाता है। आज विश्व भर में आदिवासी, आदिवासी साहित्य और आदिवासियत की चर्चा होती है। आदिवासी साहित्य अर्थात वह साहित्य जिसमें आदिवासियों का जीवन, समाज और दर्शन अभिव्यक्त हो। आदिवासी साहित्य तीन प्रकार का है–

1. आदिवासी विषय पर गैर आदिवासी लेखकों द्वारा लिखा गया साहित्य

2. आदिवासी रचनाकारों द्वारा स्वयं लिखा गया साहित्य

3. 'आदिवासियत' अर्थात् आदिवासी दर्शन को व्यक्त करने वाला साहित्य।

आदिवासी साहित्य आज बेहद प्रासंगिक है। यह विदेशी विद्वानों का ध्यान आकर्षित करने में सफल रहा है। अब पूरा संसार आदिवासियों के विचारों को, इनकी जीवन शैली को समझना चाहता है।

आदिवासी साहित्य के अध्येयता प्रो. वीर भारत तलवार आदिवासियों द्वारा लिखित साहित्य को ही आदिवासी साहित्य मानते हैं, वे लिखते हैं–

'इसकी गुणवत्ता बिल्कुल अलग किस्म की है। आदिवासियों के जीवन और समाज के सच्चे मित्र यहीं मिलते हैं।' **(आदिवासी और अदिवासी साहित्य की अवधारणा, वीर भारत तलवार, तद्भव–34, नवम्बर, 2016, पृ.–45)**

राष्ट्रीयता मनुष्य की भावात्मक चेतना होती है जो राष्ट्र तथा जाति के मानवीय मूल्यों को विशिष्ट ऐतिहासिक सन्दर्भों के अनुरूप परिचालित करती है। मानव की इस भावात्मक प्रवृत्ति के अंतर्गत भौगोलिक, धार्मिक, जातीय आर्थिक एवं राजनीतिक आकांक्षाओं की ऐक्य भावनाओं का समावेश रहता है। हेन्स कोहन के अनुसार–'राष्ट्रीयता मस्तिष्क की ऐसी स्थिति विशेष है जिसमें कवि की उच्चतम निष्ठा राष्ट्र के प्रति हो।'

Encylopaedia Britannica,Volume XVI, page150

डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार–'राष्ट्रीयता का अर्थ यह है कि प्रत्येक व्यक्ति राष्ट्र का अंश है और इस राष्ट्र की सेवा के लिए इसको धन–धान्य से संपन्न बनाने के लिए प्रत्येक व्यक्ति को सब प्रकार के त्याग और कष्ट स्वीकार करना चाहिए।' **(डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिंदी साहित्य का उद्भव और विकास, पृ. सं. 257)**

इस प्रकार राष्ट्रीयता का संबंध भावना से है और साहित्य में राष्ट्रीय जीवन की विभिन्न प्रेरणाओं की सहज अभिव्यक्ति होती है। आदिवासी काव्य में राष्ट्रीय चेतना मुखरित हुई है। कहीं देश के सांस्कृतिक सौंदर्य की झाँकी है तो कहीं राष्ट्रीयता अपने संकीर्ण अर्थों में न होकर अंतर्राष्ट्रीयता का आवश्यक सोपान बनकर आयी है जिसमें विश्व मानवतावाद पनप सका।

साहित्य की अन्य विधाओं की तरह जब हम कविता के सन्दर्भ में समाज के किसी विशेष वर्ग को लेकर चर्चा करते हैं, तो सवाल उठ सकता है कि कविता तो कविता होती है, आदिवासी और गैर–आदिवासी कविता का यह भेद क्यों?

आदिवासी के सन्दर्भ में यह बात महत्त्वपूर्ण है कि अन्य मानव समूह भी समाज की मुख्यधारा के ही अंग रहे हैं, चाहे वह हाशिए पर रहते आये हों। इसके विपरीत आदिवासी मुख्यधारा के इर्द–गिर्द न रहकर सदैव से भौगोलिक स्तर पर अलग–थलग ही नहीं बल्कि दूर–दराज के जंगली पहाड़ी क्षेत्र का वाशिंदा रहा है और दूसरी बात भाषा के स्तर पर भी वह शेष जगत से पृथक रहता आया है। इसीलिए यह जरूरी है कि आदिवासी जीवन के हर क्षेत्र पर पृथक से विमर्श होना चाहिए, चाहे वह कविता ही क्यों न हो।

आदिवासी जीवन को लेकर जब हम कविता की बात करते हैं, तो वाचिक परंपरा ही हमारे सामने आती है, जो प्रमुख रूप से गेय परम्परा रही है। समकालीन कविता की दृष्टि से आंचलिक भाषाओं में अवश्य कविता के माध्यम से जीवन के विविध पक्षों की अभिव्यक्ति होती रही है, लेकिन हिन्दी भाषा में आदिवासी कविता अभी शुरुआती दौर में चल रही हैं।

अब हम आदिवासी कविता की विशिष्टताओं की चर्चा करते हैं तो हम पाते हैं कि यह कविता मुख्यत: जंगल, जल और जमीन से जुड़ी हुई है। अपने अस्तित्व और अस्मिता को पहचानना आदिवासी कविता की प्रमुख विशेषता है। भोले–भाले आदिवासियों के जीवन में स्वार्थी सभ्य (जिन्हें वे दिक्कू कहते हैं) मनुष्य ने प्रवेश कर उनको प्रदूषित कर दिया है। वे अब शोषकों को पहचानने लगे हैं। शोषक के रूप में पूँजीपतियों, महाजनों, प्रशासनिक वर्ग के अधिकारियों आदि जो दिनोंदिन उनको दीमक की तरह चाट रहे हैं।

आदिवासी कवयित्रियों में ग्रेस कुजूर की कविताएँ विद्रोह की ज्वालाग्नि उगलती हैं। जंगल को उजड़ते देख उनकी वाणी कह उठती है–

'ए संगी / क्यों घूमते हो / झुलाते हुए खाली गुलेल जंगल-पहाड़ नदी-ढोढ़ा / तुम्हारी गुलेल का गेढ़ा/ डूबते हुए लाल सूरज की तरह / अटक गया है / टहनी में / क्या तुम्हें अपनी धरती की / सेंधमारी सुनाई नहीं दे रही।' (समकालीन आदिवासी कविता, पृ. 20)

आदिवासी प्रारम्भ से ही प्रकृति प्रेमी रहे हैं। यह प्रकृति प्रेम इनकी कविताओं में सरल, सहज रूप में दिखाई पड़ता है। जंगल की कटाई के फलस्वरूप कंदमूल आदि उनके भोजन नष्ट हो गए, जिससे उनके जीवन पर ही संकट आग गया। वे प्रकृति की गोद में स्वच्छन्द विचरण कर रहे थे कि सभ्य समाज ने उनसे उनका सुखी जीवन बड़ी बेरहमी से छीन लिया। क्या प्रकृति के बिना उनकी कल्पना की जा सकती है, प्रकृति के साथ बेरहम छेड़खानी आदिवासियों के अस्तित्व का संकट ही नहीं है बल्कि सम्पूर्ण मानवता व मानवेतर प्राणी जगत के लिए खतरा है। पर्यावरण प्रेमियों के साथ आदिवासी कविता भी सुर मिलाती है। ग्रेस कुजूर अपनी कविता 'हे समय के पहरेदारों' में कहती हैं–

'क्या तुमने कभी देखा है / पर्वत को रोते?
उसके हृदय की आवाज / क्या कभी देखा है
उसका टुकड़े-टुकड़े होकर / बिखर जाना?'
'एक बूँद पानी के लिए / तड़प-तड़प / जाएँगी
हमारी पीढ़ियाँ / इसलिए / मैं सच कहती हूँ?
हे समय के पहरेदारों।' (वही, पृ. 23)

ग्रेस कुजूर ने जहाँ अपनी कविताओं में झारखण्ड के अंचल को व्यक्त किया है, वहीं भुजंग मेश्राम ने महाराष्ट्र के अंचल को अपनी कविता में व्यक्त किया है। लेकिन दर्द दोनों कवियों का समान है। जिस संकट से आदिवासी गुजर रहा है, उसका निवारण नहीं होता देखकर कवि आदिवासियों के महानायक बिरसामुण्डा को आह्वान करता है जो अपनी कर्मभूमि झारखण्ड एवं मध्यभारत के हृदय में रमे बसे हैं–

'सिंहभूम, मंडला, वसई / चन्द्रपुर को करने को आजाद
बचाने के लिए हरे-भरे जंगल / आज ना गोरे हैं / न सपने की
आजादी / आज ना घने बीहड हैं / ना तू है / है केवल बीहड़ों में
फैला असन्तोष / बिरसा तुम्हें कहीं से भी आना होगा।' (ओ मेरे
बिरसा) (वही, पृ. 34)

यह कविता आपसी भाईचारा, प्रेम, रिश्तों के लिहाज को भी व्यक्त करती है। समृद्ध प्राकृतिक परिवेश में सीमित आवश्यकताओं के साथ एक लम्बी सांस्कृतिक परंपरा रही है। जीवन का आधार रही यह प्राकृतिक संपदा सांस्कृतिक धरोहर उनसे छीनी जा रही है। ग्रेस कुजूर अपनी कविता 'एक और जनी शिकार' में कहती हैं–

'अब कहाँ है वह अखरा / किसने उगाए हैं वहाँ विषैले नागफनी
हवा में नहीं तैरते अब / अंगनई और डमकच के गीत / सिल गए हैं
होंठ मेरे / धतूरे के काँटों से।' (वही, पृ. 19)

जंगल की रक्षा से ही आदिवासियों का अस्तित्व बचा रह सकता है। उनके पूर्वजों ने हजारों वर्षों से अपने साथ जंगल को और जंगल के साथ अपने को सुरक्षित रखा किन्तु अब दोनों के अस्तित्व का प्रश्न निर्माण हो गया है, इस कारण ग्रेस कुजूर आदिवासी नवयुवकों को ललकारते हुए कहती हैं–

'तानों अपना तरकस।
नहीं हुआ बोथरा अब तक
बिरसा आवा का तीर
सूरज के लाल 'गोढ़ा' को
गला दो अपनी हथेलियों की
गर्मी से।' (आदिवासी साहित्य : विविध आयाम, सम्पादक
डॉ. रमेश संभाजी कुरे/डॉ. मालती घोड़ोपंत शिंदे/प्राचार्य प्रवीण
अनंतराव शिंदे, पृ. 37)

आदिवासी स्त्रियों ने पहले से अपने हक और अधिकारों के लिए पुरुष के साथ मिलकर समाज और शासकों का सामना किया है। समय-समय पर उसने अपने हाथ में हथियार भी उठा लिये। कवित्री निर्मला पुतुल ने अपनी कविताओं द्वारा स्त्री अस्मिता के प्रश्नों को हाशिए पर ढकेला गया है। वह

अपनी पीड़ा का प्रतिरोध करती हुई चेतावनी देती हैं। वह कहती हैं –

'आज की तारीख के साथ /कि गिरेंगी जितनी बूँदें लहू की पृथ्वी पर/ उतनी ही जन्मेगी निर्मला पुतुल/ हवा में मुट्ठी-बँधे हाथ लहराते हुए।' (निर्मला पुतुल-नगाड़े की तरह बजते शब्द पृ. सं. 77)

एक अच्छी और सच्ची कविता वक्त की पहचान होती है। वह समय के साथ चलते समय का शिलालेख बनती है। शोषण के खिलाफ संघर्ष का ऐलान करना आदिवासी चेतना की विशेषता है।

इस प्रकार हम अन्त में कह सकते हैं कि आदिवासी कविता में अपनी संस्कृति, समाज और जीवन मूल्यों के प्रति गहरा लगाव व्यक्त होता है। इनकी कविताओं में आई प्रकृति, परम्परागत प्रकृति चित्रण से भिन्न यह आदिवासी जीवन और संस्कृति का मूलाधार है। इनकी कविताओं में अपने युग की पीड़ा, प्रकृति प्रेम, अपने अस्तित्व को बचाये रखने की समस्या, अपने पूर्वजों के प्रति पूज्यभाव-ईश्वरवादी भावना से मोहभंग दिखाई देता है। कुल मिलाकर आदिवासी कविता से स्वतंत्रता समानता बंधुता, भूख, वर्ण जाति का अंत, मानवता आदि मूल्यों का विकास धीरे-धीरे हुआ दिख रहा है।

अंग्रेजों के आदिवासी इलाके में प्रवेश के समय से ही आदिवासियों ने प्राकृतिक संसाधनों के दोहन का विरोध किया है। विस्थापन के सवाल पर आदिवासियों ने अपनी आवाजें उठाना शुरू किया। मूल मुद्दा तो आदिवासी के जीने का है, धरती और प्राकृतिक संसाधनों को बचाकर उनके सीमित उपयोग का भी। इस पर भी आज सोचने की जरूरत है कि अपनी प्रतिभा के बल पर पारंपरिक कला और को संस्कृति को बढ़ावा मिले। उनकी भूमि और जंगल के अधिकार का सम्मान किया जाए। आजादी के बाद विस्थापन की समस्या ने आदिवासियों को सबसे अधिक परेशान किया। फलस्वरूप वे जल, जंगल जमीन, जुबान के मुद्दों पर एकत्रित हुए और संघर्ष किया। इसे कुछ विद्वानों ने उनकी आत्म केंद्रीयता कहा और विकास के सवाल पर आदिवासियों के संघर्ष को घेरे में लाने की चेष्टा की। लेकिन आज भारत ही नहीं पूरी दुनिया देख और समझ रही आदिवासियों का यह जिद्दी संघर्ष न केवल मानवीयता के लिए बल्कि पृथ्वी में हवा, पानी, हरियाली बचाने के लिए जरूरी मुद्दे बन चुके हैं। इसलिए आदिवासी विमर्श मात्र आदिवासी से जुड़ा सवाल नहीं है बल्कि संपूर्ण मानवता और प्रकृति को बचाने का आव्हान है।

आदिवासी समाज चीजों को सामूहिकता, सहजीविता और परस्पर सम्मान की भावना से देखता रहा है। यही कारण है कि यहाँ व्यक्तिवादी रुझान हावी नहीं हो पाया ही। इसलिए आदिवासी सामूहिक गीत-गाने में ज्यादा अच्छा महसूस करते हैं। आदिवासी रचनाकार द्वारा कविताएँ काफी लिखी गई हैं।

वासुदेव प्रसाद मीणा, रमेश चंद्र मीणा, गंगा सहाय मीणा, प्रमोद मीणा, सावित्री बड़ाईक, निर्मला पुतुल, अनुज लगुन, बाहरू सोनवढ़े, फ्रांसिस्का कुजूर, विश्वासी एक्का, सरिता सिंह बड़ाईक, जसिंता केरकेट्टा, सावित्री बड़ाइक आदि ने प्रबुद्द लोगों का ध्यान आकर्षित किया।

रमणिका गुप्ता कहती हैं कि 'यह (कविता) उनकी अस्मिता का विकास ही नहीं बल्कि उनके बदले हुए आदिवासी स्वर का द्योतक है।' **(आदिवासी स्वर और नई शताब्दी-संपादक रमणिका गुप्ता, वाणी प्रकाशन, 2008, पृ. 11)**

इस प्रकार स्पष्ट है कि ये आदिवासी स्वर की कविताएँ केवल आदिवासी जीवनानुभव में सीमित रचनाएँ ही नहीं है, सांस्कृतिक, सामाजिक, राष्ट्रीय चेतना और सम्पूर्ण मानवीय सरोकारों की अभिव्यक्ति हैं।

शासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय,
घाटा बिल्लोद, धार 454773(म.प्र.)
मो.- 9754835742

ज्योतिर्पथ का अविराम पथिक

- बी .एल. आच्छा

ज्योतिर्पथ का अविराम पथिक प्रोफेसर द्विजेंद्रनाथ सैगल की लंबी कविता है। इसकी चेतना का उत्स छायावादी है, पर उसका मानवीकरण आधुनिक वैज्ञानिक चेतना से परिपूर्ण। यह उस दीपक की आलोक कथा है, जो सूर्य और अंधकार का पुत्र है। सूर्य की अस्ताचल यात्रा के बाद धरती पर प्रकाश का पुंज। इस दीपक की ज्योतिकथा भी वायवीय और काल्पनिक नहीं है, न केवल मिथकीय; बल्कि जीवद्रव्यात्मक (Plazmic Zone)संरचना के आधार पर उसे मानवीय संवेदना से परिपुष्ट किया गया है। दीपक और पतिंगे की लोक प्रसिद्ध प्रेम कथा के साथ उसे गॉड पार्टिकल बोसोन (विष्णु बिंदु) तक ले जाया गया है। इसीलिए इस लंबी कविता में दार्शनिक बिंदु यदि उपनिषद् से जुड़े हैं, तो प्रकृति-चक्र की रासायनिक-भौतिक-जैविक संरचनाओं से युक्त आधुनिक वैज्ञानिक धारणाओं से भी। यह अलग बात है कि इन वैज्ञानिक अवधारणाओं को काव्यात्मकता से जोड़ने का उपक्रम इतना आसान नहीं है, जितना कि दर्शन और कविता को अन्विति देने में।

पुस्तक : ज्योतिर्पथ का अविराम पथिक।
लेखक : द्विजेंद्रनाथ सैगल।
प्रकाशक : साहित्य संगम, नया-100, लूकरगंज, इलाहाबाद
मूल्य : 400/- रु.

गुरुदेव रवींद्रनाथ ठाकुर की गीतांजलि के एक पद से कवि ने चित्रात्मक संदेश पाया-'मेरे अस्ताचल गमन के बाद इस अँधेरे से पृथ्वी को कौन उबारेगा?' और गीतकार गोपालदास नीरज की कविता से दीपक की सृजन चेतना की यह लौ भीतर ही भीतर आकार लेती रही-'जी उठे शायद शलभ, इस आस में। रात भर रो-रो दिया जलता रहा।' इसी मानवीकृत दीपक में सारे मानवीय कार्य व्यापार को कृतिकार ने वैज्ञानिक प्लाज्मेटिक पृष्ठभूमि पर रखा और वे ही काव्य-रसायन पाकर दीपक की आत्मकथा सी बन गयी। सृजन से अवसान तक सारी मानवीय अनुभूतियों और जैविक व्यापार से संयुत ऐसी कृति; जिसका संदेश तमसो मा ज्योतिर्गमय तो है ही, परंतु छांदोग्य उपनिषद् से लेकर बुद्ध के 'अप्प दीपो भव' की सांस्कृतिक यात्रा के साथ विज्ञान और कविता के संधि-क्षेत्र में एक जीवंत रूपक का सृजन भी है।

आदि दीप के सृजन में कवि उन तत्वों का संधान करता है, जो वैज्ञानिक कारणों के साथ मानवीय रसायनों से जुड़कर प्रकाश यात्रा का निर्वहन करते हैं। गीली मिट्टी सूर्य का तेजस् संकल्प पाकर दीपक के रूप में दूसरा सूर्यपुत्र बन जाती है। तेल में निहित ज्वलनशील रसायन और कपास की वर्तिका में दाहक तत्व जब हवा से जुड़ जाते हैं, तो उजाले का पुत्र दीपक अंधकार का हरण कर देता है। इस प्लाज्मिक प्रक्रिया में वे प्रेम रसायन निहित हैं, जो दीया और बाती या दीप और शलभ के प्रणय प्रसंगों में रूपक में लोकप्रिय हैं। इनमें मानवीकरण तो है ही, पर सौंदर्य की की देह-भाषा, युवा संवेगों का ज्वार स्पर्श की आत्मीयता, प्रेम की प्यास, त्याग का वरण, कर्तव्य- निष्ठा, वासना रहित निर्मल प्रेम जैसे भावों का पल्लवन मनुष्य की विराट सामाजिक यात्रा के उजले पथ को दर्शाते हैं। कवि की उर्वर कल्पनाशीलता और वैज्ञानिकता का समावेशी योग नयी भाषा को गढ़ता है। दाहक दीप्ति-गुण से संस्कारित कपास के रेशे द्युति पुष्प (प्रकाश के फूल) बन जाते हैं और जलकर भी न जलने वाली बाती-'ज्वाल किरीट।' दीपक तले का अंधकार तमिस्रा बन जाता है और दीपक अंधकार का पुत्र भी। पर इन सबके मिलन में सामाजिक सहकार है। समर्पण-प्रीति और तप का संविलयन है, निराशा में आशा का उजला संचार है, आदिम दीपक के साथ मानव नियति की ज्योतिर्मय यात्रा है।

इस रचना से प्रबोध होता है कि सृष्टि की प्लाज्मेटिक रचना में ही मिलन, संविलयन, प्रीति भाव के वे रसायन मौजूद हैं, जो प्रकाश की ओर ले जाते हैं। इन तत्वों की यही नियति है और उद्देश्य भी।

इक और मिलेगा साथ, कहा था सूरज ने
भू से उपजेगा लिए ओज निर्मल उजास
कर प्राप्त स्नेह से शक्ति, प्राण तत्व पीकर
मुझ संग बाँटेगा युग-युग तक जो सुप्रभास।

इस दृष्टि से विज्ञान की यह पीठिका विष्णु तत्व(God Particle Boson) तक ले जाती है। निश्चय ही यह इसलिए प्रासंगिक है कि दर्शन के क्षेत्र में जो आनंदमयी लीला का उद्देश्य निहित है, वही सृष्टि के साथ रसायनों में भी क्रियाशील है। ये सारे संविलियनशील प्रेम रसायन को ही सम्मुख करते हैं; प्लाज्मेटिक स्तर पर और सामाजिक मानवीय स्तर पर भी। हवा एक पात्र की तरह कहती है-

इक ऋषि समान मुद्रा धर कर बोली बयार
ये द्युति पुष्प तिल आदि सभी आहुति द्रव्य
ये पंचतत्व के गुण निवेश के ही उपक्रम
जिनसे चलता है ध्वंस और निर्माण तंत्र।

यह सख्यता, यह प्रीति भाव जड़ प्रकृति में भी है और चेतन सृष्टि में भी। दीप-दीपन की उजली सांस्कृतिक अवधारणा का प्रतीक दीपक उस कर्म क्षेत्र का वीर है, जो तूफानों में संघर्ष करता हुआ प्रकाश को विकीर्ण करता है। इस संस्कृति में मिलजुल कर रहने वाली धारणा, जिसे कवि ने मरासिम संस्कृति कहा है; दोनों स्तरों पर मौजूद है- विज्ञान का विष्णु तत्व हो या कविता का वैष्णव संस्कार।

छायावादी संस्कारों में पगी इस कविता में गेयता तो है ही, मगर जड़ तत्वों का चेतस् मानवीकरण हुआ है। इसकी काव्य भाषा में रागात्मक तत्त्व के साथ एंद्रियता और चित्रात्मकता, संवादपरकता और संवेगात्मकता का गहरा मेल है। यही कविता में अंतर्ध्वनियों को बहिर्मुख संदेश में रूपांतरित करते हैं। इसमें पात्र के स्तर पर आत्मकथात्मकता है और जन्म से लेकर निर्वाण तक के जीवन चक्र का व्यापार भी। छायावादी भाषा की रेशमी कोमलता और इंद्रियजन्य आवेगों की संवेगात्मकता इन छंदों में मानवीकरण का रूपक लिए हुए है-

और ऐसा ही कुछ घटा थकी सी जब उतरी
वह पुष्प-देह काम्यता देह बंध कसती।
मैं मुग्ध भाव देखता रहा,
कुछ कह न सका उस सद्यः स्नाता उर्णा चारुमुख उजला से।

बाती में नारी की यह देह गंध एंद्रिय और चित्रात्मक काव्य संस्कार लिए हुए है। कवि दीप, सीप और गॉड पार्टिकल में प्राकृतिक रसायनों और प्रीति के मानवीय रसायनों का अन्वय करने की कोशिश करता है। परंतु विज्ञान की पारिभाषिक शब्दावली और काव्यात्मक मनोभूमियों की राग-भाषा कहीं न कहीं छिटक जाती है-विष्णु बिंदु, पैटर्न सत्य का, प्रभुष्णु स्पर्श अनखा पश्च जलों, ओजस बीज, दीप्र वंश, पुंसा, तमिस्र जैसी शब्दावली का अन्वय उतना सहज नहीं बन पाया है। कवि ने हर खंड के साथ विज्ञान परक धारणाओं का विवेचन किया है, ताकि पाठक इस पीठिका को पढ़कर कविता का आस्वाद ले सके। पर विज्ञान भाषा से कविता की भाषा का सहज अनुबंध नहीं हो पाता। इस गद्यात्मक आलेख के बिना भी कविता से गुजरना सुखद अनुभूति है, जो दीपक के प्रतीक में जड़ और चेतन की युगल सांस्कृतिक यात्रा है; सृष्टि के प्रयोजन को समझने तथा निर्माण और ध्वंस के बीच प्रवहमान संसार में उसे घटित होते देखने में भी। कालमान की दृष्टि से देखें तो आदिम से आधुनिक युग तक, दर्शन से विज्ञान तक, छायावादी कल्पनाशीलता से वैज्ञानिक अवधारणा तक इस लंबी कविता में एकान्विति है। भाव और तर्क का यह मेल इस कविता को एक नया परिप्रेक्ष्य देता है, जिसमें काव्य भाषा की भाव साध्यता है। कला का अंकुर है। विज्ञान की प्रायोगिक तर्कशीलता है। अध्यात्म का दार्शनिक अंदाज है और यह सभी स्थूल स्तर पर नहीं आंतरिक स्तर पर काव्यात्मक अन्विति लिए हुए है।

इस नये परिप्रेक्ष्य को लिए यह कृति छोटी, किंतु प्रभावी है। अब तक कविता और दर्शन की अन्विति देखी जाती थी। पर यह कविता दर्शन और विज्ञान की काव्य के साथ अन्विति लिए हुए है। सृष्टि की नश्वर किंतु सतत्, नित नवीन होती हुई इस प्रकाश-यात्रा के उद्देश्य से युक्त, अनंत भाव की विज्ञान और दर्शन परक समाख्या प्रभावी है-

जाने कितने वृक्ष कैद हैं
महज एक बीज के भीतर
फैल रहा ब्रमांड निरंतर
विष्णु बिंदु से दिशा पूछकर।

लेखक ने ज्योतिर्पद प्राप्त एक दिव्य आशय को दीपक की ओजस्-तेजस् यात्रा के माध्यम से हमारी सांस्कृतिक चेतना और वैज्ञानिक अन्वेषण की धुरी पर इस कविता में सहेजा है।

36 क्लीमेंस रोड,
सरवना स्टोर्स के पीछे पुरुषवाकम्
चेन्नई 600007 (तमिलनाडु)

सूखे पत्तों पर चलते हुए

– श्याम सुन्दर तिवारी

सुकवि शैलेंद्र शरण का कविता संग्रह 'सूखे पत्तों पर चलते हुए।' सिर्फ एक कविता संग्रह न होकर, जीवन के बालपन से लेकर मृत्यु के उत्तरार्द्ध तक कविता दर कविता पढ़ा जा सकने वाला वैचारिक उपन्यास है। बेहतर आकर्षक शिल्प में गुँथी इस संग्रह की कविताएँ सरल भाषा, प्रवाहमयी शैली और समृद्ध शब्दावली से अनुबंधित हैं। अनेकार्थ और गहन भावार्थ लिए ये कविताएँ हमें आत्मा के अन्तिम छोर तक आंदोलित करती हैं। उनकी यह कविता जिसका उत्तम उदाहरण है–

'वैसे तो वह / पूरा का पूरा उपन्यास है / संत्रास के इर्द गिर्द भटकता हुआ / दरअसल देह का चलना ही आदमी का चलना नहीं होता /सुख में हँसना तो होता ही नहीं / जैसे हकीकत में होता है हँसना /उसका प्रत्येक दिन एक कथा है /उसकी हर टीस में जाने कितनी कविताएँ हैं / आदमी की जीवन संहिता में ही विषय पैदा होते हैं।

पुस्तक : सूखे पत्तों पर चलते हुए
लेखक : शैलेन्द्र शरण
प्रकाशक : शिवना पेपरबैक्स
मूल्य : 150/-रु.

अनूठे शिल्प अभिनव कथ्य और टटके बिंबविधान के साथ शैलेन्द्र जी की कविताएँ उन्हें सबसे अलग खड़ा करती हैं, और विशिष्ट बनाती हैं। उनका भावनात्मक सृजन मन को, कहीं दूर उड़कर खो जाने के लिए कहता है। जैसे ये कविता– **'इच्छाओं के पंख नहीं होते/ इच्छाओं के मामले में मन बच्चा हो जाता है /अक्सर मन, जंगल से लौटती आदिवासी लड़की हो जाता है / जिसके माथे का लकड़ी का गट्ठा / धधकता है लगातार सीने में /**

शैलेन्द्र जी की कविताएँ हमें भीतर ही भीतर मथने लगती हैं। इस कविता संग्रह आने के पूर्व भी इसकी कविताएँ मैंने सुनी और पढ़ी हैं। कविता संग्रह पढ़ते हुए ऐसा लगता है मानो अपनी ही गली की वह लड़की जो रोज सामने से निकलती थी। कभी ऐसी खूबसूरत नहीं लगी। जैसी अब लगती है, शादी के बाद। हरी–हरी चूड़ियों से भरे हाथ, माथे पर चौड़ी लाल बिंदी, माँग में दूर तक चमकता सिंदूर, आँखों में घने काले बादलों सी चाप रेखाएँ और पाँव में झंकृत पायलों के साथ उसे देखकर आँखें ठहर सी जाती हैं। मन पूछता है क्या यह वही है? बस ऐसा ही एहसास मुझे यह कविता संग्रह पढ़ते हुए हुआ। जीवन के अनेक रंग हैं। सुख दुख, दम्भ पीड़ा और स्वप्निल अनुभूतियों के। लेकिन इन सब से गहरा है सत्य का रंग और जब कोई सम्वेदनशील कवि इस सत्य को जीता है, पीड़ाओं को भोगता है, तब वह सत्य कोरे वस्त्र पर पक्के लाल रंग की भाँति उतर कर हमारे दिलों तक कहीं गहराई तक पहुँचकर हमारे भीतर ज्वार उठा देता है। यही शैलेन्द्र जी के कवि की विशेषता है। उनकी कविताएँ असल में आज के समय को सहेजती हुई सत्य का दस्तावेज हैं। अपनी इस कविता में वे कहते हैं–**'एक सच को सच की तरह बचाना था / कितना कठिन था उजालों में रहना / और अँधेरे से तुम्हें बाहर लाना भी था।**

पूरे संकलन में उनकी कविताओं ने सत्यपथ पर चलते हुए घनी वेदना को सहा है। बिल्कुल उस हम्माल की तरह जो दीपावली के एक दिन पहले भूख प्यास की चिंता किए बगैर आम दिनों से दुगना भार उठा कर ज्यादा पैसा कमाने की सोचता है। जिससे त्यौहार के दिन उसके घर में दीपक जलाने के लिए कुछ अतिरिक्त तेल जरूर रहे। मेरी आँखों में उनकी जिजीविषा कविता कौंध रही है। देखिए कितना साम्य है इसका हम्माल की दीवाली से– **'एकबार जी भरकर / मंद और तेज होती रोशनी से गुजर लूँ / चाहता हूँ फिर कभी अँधेरा न हो।'**

शैलेन्द्र अपनी कविताओं प्रेम और पीड़ा समान रूप से जीते हैं। लगता है वे कई कई रातें कविता की प्रसव वेदना में जाग कर बिता देते होंगे। यही कारण है कि इस संग्रह को पढ़ते हुए मैंने भी अनेक भावुक पलों को जिया। कई बार मेरी आँखों के सागर ने मेरे होंठ खारे किए। तब कविता के अक्षर तक धुँधले दिखाई दिए। सच बताऊँ ये सारी कविताएँ मैं एक ही रात में पढ़ गया। उनकी यह भावुक करने वाली कविता देखिए –

'मेंहदी की पतली छड़ी से उभरी / पिंडलियों पर लम्बी लाल लकीर / छिपाने के लिए / हम घर आते ही पहन लेते थे पायजामा /माँ सरसों का तेल लगा देती रात को / पिता रख देते पीठ पर उदासी भरा हाथ / कहते स्कूल में पिटने से अनुशासन आता है।'

हम अपने सपनों को सच करने की कोशिश में लगे रहते हैं। लेकिन शैलेन्द्र जी ने अपनी हर कविता में सच को अपने सपनों की तरह जिया है और हमें लौटाया है–'सूखे पत्तों पर चलते हुए' हमें बार–बार पढ़ने के लिए उद्वेलित करता है। यही कवि की सफलता है। शैलेंद्र जी को अनेक शुभकामनाएँ।

5 रमा कॉलोनी, खण्डवा–450001 (म.प्र.)
मो.9340517010

प्रकृति के अनुपम रंग बादल, बारिश और पतंग के संग

– उषा चतुर्वेदी

'प्रकृति के अनुपम रंग बादल बारिश और पतंग के संग एक बाल कविता संग्रह है। इसे हम बालमन साहित्य का सम्बोधन भी दे सकते हैं। कविता संग्रह का शीर्षक पर्यावरण को ही समर्पित है, रचनाकार स्वयं एक पर्यावरण प्रेमी है। साहित्य की अनेक विधाओं की वरिष्ठ लेखिका के साथ-साथ फोटोग्राफी में भी सिद्धहस्त हैं, माँडना कला की सफल कलाकार भी हैं। काव्य संग्रह की रचनाएँ बच्चों को पर्यावरण से सीधे जोड़ती हैं।

कविता संग्रह में कुल 15 कविताएँ हैं यह 15 कविताएँ बाल मनोविज्ञान को दृष्टिगत रखते हुए लिखी गई है। कहा जाता है बचपन वह हर व्यक्ति के अन्दर हमेशा जिंदा रहता है, और व्यक्ति अपना बचपन अपनी संतानों में पोते-पोतियों में जीता है। आवरण के पृष्ठांकन में काला टीका नामक कविता है जिसमें एक बच्चा अपनी माँ को काला टीका लगाने की बात करता है ताकि माँ को नजर न लगे। कविता की पंक्तियाँ बच्चे की माँ के प्रति ममता स्नेह को प्रदर्शित करती है। साहित्य अकादमी के सम्मानीय निदेशक डॉ. विकास दवे की श्रेष्ठतम टिप्पणी जो कविताओं के सम्बन्ध में है। साथ ही सम्मानीय दवे जी का यह कहना बाल मन को पढ़कर बच्चों के लिए अच्छा लेखन दो प्रकार के लोग कर सकते हैं। प्रथम मातृशक्ति दूसरे बच्चों की शिक्षा से जुड़े व्यक्ति इससे अनीता जी प्रथम श्रेणी का प्रतिनिधित्व करते हुए श्रेष्ठतम साहित्य की रचना की है। साथ ही मुझे यह बात आश्चर्यचकित करती है अनीता जी ने इससे पहले बाल साहित्य क्यों नहीं लिखा? सब जानते हैं बच्चों पर प्यार लुटाने वाली नानी और दादी होती उन्होंने इसी भूमिका को बाल साहित्य के रूप में परिवर्तित कर एक पवित्र कार्य किया है। अनीता जी वैसे भी एक अच्छी समीक्षक एवं समालोचक है।

पुस्तक : प्रकृति के अनुपम रंग बादल, बारिश और पतंग के संग
लेखक : अनीता सक्सेना
प्रकाशक : टी एन ट्रेडर्स सांवेर रोड, इंदौर
मूल्य : 100/- रु.

बाल साहित्य शोध केंद्र के निदेशक आदरणीय महेश सक्सेना जी के विचार कविता संग्रह के संबंध में है। आपने लिखा है अनीता सक्सेना जी का व्यक्तित्व एवं कृतित्व बहुकोणीय है। प्रत्येक पृष्ठ पर कविता से संबंधित चित्र उकेर कर बचपन से ही पल रही रुचि विशेषकर चित्रकला को इस पुस्तक के माध्यम से और पुष्पित और पल्लवित किया है। चित्र देखकर ही कविता के भाव स्पष्ट हो जाते हैं और यह विशेषकर नन्हे-मुन्ने बच्चों के लिए एक नई सौगात होगी। आपका संग्रह की प्रत्येक पृष्ठ पर अनुरक्ति और अनुज सेन द्वारा बनाये गए चित्रों की भव्य छटा है। शिल्प अनुपम है, कविता बच्चों को जोड़ेगी उनकी जिज्ञासा शांत करेगी। संग्रह की कविता बच्चों के अंतर्मन को ऊर्जावान बनाने में सक्षम है तथा ज्ञान वर्धन करने में समर्थ है।

लेखिका की कविता 'माँ' आँखों को नम कर जाती है। वे आत्मकथ्य में लिखती हैं कि व्यक्ति चाहे जितना भी बड़ा हो जाए लेकिन उसकी बचपन की स्मृति पटल पर हमेशा अंकित रहती है। बचपन के सुनहरे पल वह भूलता नहीं। कविता संग्रह में रचित कविताओं का आधार बालक की मासूम बातें, उनकी अनजान क्रियाएँ तथा चंचलता लिए शैतानियाँ हैं।

संग्रह की प्रथम रचना बारिश की सुबह सुहानी है, इंद्रधनुष के कथ्य से प्रारंभ होती है कविता का नायक सूरज है बादल, बारिश का मौसम तथा नीले आकाश में निकलता इन्द्रधनुष यह सभी पर्यावरण के मूक वाहक है-

'इंद्रधनुष लगा चमकने/सारे बच्चे खुश हो जाएँ
झट ले अपनी पतंग और चरखी/आसमान को रंगने आए।'

'आसमान को रंगने आए' शब्द विभिन्न रंगों का प्रतीकात्मक है क्योंकि आसमान में विभिन्न रंगों की पतंग में उड़ती है आसमान सतरंगी हो जाता है। कविता के पृष्ठ पर सूर्य, बादल, इंद्रधनुष सभी के चित्र अंकित है। वृक्ष पर पड़ा हुआ झूला और झूलते हुए बच्चे उस वातावरण को बना रहे हैं जिससे रचनाकार और कलाकार की अभिरुचि दृष्टि गोचर हो रही है। 'पोष मेला' में कवियत्री ने पतंग उड़ाने की प्रक्रिया का कलात्मक वर्णन किया साथ में चित्र के सुंदर कलेवर कविता को और बहुआयामी बना देता है। 'एक सकोरा' कविता में पक्षियों के प्रति संवेदनशीलता का प्रस्तुतीकरण है। ग्रीष्म ऋतु में प्यास से तृषित पक्षियों के लिए दाना पानी रखना कर्तव्य है। यह कविता अनुकरणीय एवं संवेदनशीलता की वाहक है। 'अरमानों की डोर' कविता महत्वाकांक्षी होने का संदेश देती है-

'कौन हो तुम जो आसमान में/संग हवा से बातें करती।
रूप अलग है, पर पंखों से/बिल्कुल तितली जैसी लगती।'

बी.एम-57 करुणाधाम आश्रम के सामने,
नेहरू नगर, भोपाल-462003 (म.प्र.)
मो.- 9425008744

विश्व में हिंदी

– जया केतकी

टैगोर इंटरनेशनल लिटरेचर एंड आर्ट फेस्टिवल विश्वरंग के अंतर्गत प्रकाशित पुस्तक विश्व में हिंदी को पढ़कर जानकारी मिली, विश्व में 23 देशों में हिंदी को लेकर किस प्रकार के विचार विमर्श हो रहे हैं और पाठ्यक्रम में, लेखन में साहित्य में हिंदी से लोग किस तरह जुड़े हुए हैं। स्मारिका में छः महाद्वीपों में किस प्रकार हिंदी को लेकर विचार-विमर्श चल रहे हैं। श्री संतोष चौबे स्मारिका के आमुख में कहते हैं : धीरे-धीरे हमें लगने लगा कि विदेशों में हिंदी को लेकर स्थिति उत्साहजनक तो है अगर हमें इसे अगले चरण में ले जाना है तो एक दृष्टि और संकल्प के साथ नियोजित प्रयास करने पड़ेंगे। इस दृष्टि से जब हमने खोजना शुरू किया तो हमें ऐसी कोई आधारभूत रिपोर्ट नहीं मिली जो इस कार्य के आरंभ का प्रस्थान बिंदु बन सकती हो और जिसे लगातार अपडेट किया जाता हो।

स्मारिका के संपादक डॉक्टर जवाहर कर्नावट भूमिका में लिखते हैं विश्व के विभिन्न देशों में प्राथमिक शिक्षा से लेकर विश्वविद्यालयों में उच्च शिक्षा तक हिंदी शिक्षण की व्यवस्था सुलभ हो गई है। अनेक देशों में हिंदी शिक्षण सामुदायिक गतिविधियों के रूप में स्थान बना चुका है। विश्व के प्रमुख देशों के भ्रमण के दौरान मुझे हिंदी भाषा की शिक्षण तथा साहित्य संबंधी अध्ययन एवं शोध की समृद्ध परंपरा देखने को मिली किंतु इस क्षेत्र में नई शिक्षण प्रवृत्तयों और संबंधित देश की संस्कृति के अनुरूप प्रशिक्षण सामग्री की अनुपलब्धता भी दिखाई दी।

इस पुस्तक में एशिया महाद्वीप में हिंदी की सबसे पहली बात श्रीलंका की है जिसे सुभाषिनी रत्नायक ने रखी है। इसी तरह सिंगापुर में हिंदी डॉ. संध्या सिंह ने, जापान में हिंदी डॉ. वेद प्रकाश सिंह ने, चीन में हिंदी डॉ. विवेक मणि त्रिपाठी ने, कतर में हिंदी सोनी विजय ने, संयुक्त अरब अमीरात में हिंदी डॉ. आरती लोकेश ने, थाईलैंड में हिंदी शिखा रस्तोगी ने, नेपाल में हिंदी डॉ. श्वेता दीप्ति ने, म्यांमार में हिंदी बृजेश वर्मा ने, इजराइल में गेनाडी शलोम्पेर ने, वियतनाम में हिंदी साधना सक्सेना ने, दक्षिण कोरिया में हिंदी प्रोफेसर दिविक रमेश ने, इन सब रचनाकारों ने अपने देश में हिंदी भाषा के लिए किए गए विभिन्न कार्यों का विस्तार से वर्णन किया है। उदाहरण के लिए शिक्षा में हिंदी।

कार्यक्रमों आयोजनों में हिंदी साहित्य लेखन मंच पर प्रस्तुतियाँ, परिषदों की स्थापना, प्रतिस्पर्धा है, पुरस्कार, पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन, गोष्ठियों आदि के बारे में बताने का प्रयास किया है। कुछ रचनाकारों ने शिक्षा में हिंदी के प्रयोग से संबंधित विभिन्न समस्याओं और उनके निराकरण को भी स्थान दिया है। साहित्य में हिंदी लेखन और उसके प्रकाशन को विभिन्न प्रतियोगिताओं, गोष्ठियों एवं पुरस्कारों से प्रोत्साहित किया है।

शैक्षिक परिदृश्य में हिंदी तभी आगे बढ़ सकती है जब उसे पाठ्यक्रम में विधिवत स्थान दिया जाए। कुछ रचनाकारों ने प्रत्येक 10 वर्ष में हिंदी में क्या विकास किया, इस पर अपनी बात रखी है। रेडियो प्रसारण एवं दूरदर्शन के साथ ही रंगमंच पर हिंदी को विस्तार देने के लिए अनेक संस्थाएँ प्रतिबद्ध हो गई हैं।

संचार क्रांति हिंदी भाषा के विकास का महत्त्वपूर्ण अंग है। इससे एक ओर विचारों का आदान-प्रदान आसान हुआ तो दूसरी ओर आभासी पटल पर कार्यक्रमों के आयोजन में सहभागिता करना आसान हुआ। मुझे यह कहने में बिल्कुल संकोच नहीं है कि आभासी पटल पर देश -विदेश के रचनाकारों ने प्रतियोगिताएँ भी आयोजित कीं और विचार-विमर्श भी। पेंडेमिक काल में यह आभासी मंच जितना इसमें सहभागी बना है, उतना और कभी नहीं।

– सत्येंद्र शर्मा

अक्षरा का जनवरी 2023 का अंक प्रचलित अर्थों में नए वर्ष का प्रवेश रहा–किन्तु आपने अपने सम्पादकीय में ही इसकी प्रासंगिकता, औचित्य और हमारे देश और समाज पर पड़ने वाले उसके प्रभावों पर बुनियादी प्रश्न उठाए हैं। इसी बहाने या अपने कथ्य को प्रामाणिक और तर्कसंगत बनाने के लिए आपने ग्रेगोरियन कैलेण्डर से लेकर विश्व के शुरुआती अन्य कैलेण्डरों के इतिहास को भी खँगाला है। हम लोग जिस नए वर्ष का केक काटकर, कैन्डल बुझाकर, गोवा जाकर, शैम्पेन खोलकर और 31 दिसम्बर की मध्य रात्रि को तरल पदार्थ की गरमाहट से जनवरी तक ले जाते हैं उसी आधार को आप निराधार कर देना चाहते हैं। यह अवधारणा तो अनेक सितारा होटलों की निशाचरी रंगीनियों से लेकर बस्ती बस्ती, पर्वत–पर्वत, देसी ठर्रे के दम पर डीजे की धुन पर थिरकते हमारे लाखों–करोड़ों उत्साही जनों पर कशाघात जैसा होगा।

यह ठीक है कि इतिहास में 'हास' की 'इति' होती है किन्तु यदि हम इतिहास को 'हास के ही अंदाज़ में जीना चाहें तो इसमें बुराई ही क्या है! क्या आपको नहीं लगता कि हमारा सत्ता–तन्त्र शासन और आम जीवन कर्म, मन और वचन से इसी इतिहास को गाँठ बाँधे हुए है। यदि ऐसा न होता तो आज़ादी के इन सत्तर सालों में सत्ता तन्त्र के संचालन सूत्रों के अंग्रेजियत से भरे रूप–रंग व्यवहार और जीवनशैली में स्वतन्त्रता या स्व–राज्य या स्वदेशी पन का कुछ तो नया ढर्रा दिखाई देता। ताज़ा इतिहास तो यही बताता है कि स्वतन्त्रता के एक प्रमुख सेनानी गाँधी ने जब अपने तत्कालीन प्रथम सत्ता नायक से पत्र लिखकर देशी पद्धति का आग्रह किया था तो उन्होंने इसे अव्यावहारिक कहकर इसे सिरे से ही खारिज कर दिया था। परिणामत: शासन संचालन हो, समाज की संरचना हो, शिक्षा उद्योग हो और चाहे हमारी जीवनी–शक्ति कृषि; सब पर अंग्रेज़ी अंग्रेजियत और ग्रेगोरियन घर कर गया हो तो इसमें आश्चर्य कैसा यह अलग बात है कि नव तो बसंत से ही है जो बाहर प्रकृति में और भीतर मन की ऋतु में सिर चढ़कर बोलता है और जिसकी अनुभूति और अभिव्यक्ति हमारे शब्द–साधक करते आए हैं।

सखी बसंत आया, भरा हर्ष, वन के मन नवोत्कर्ष छाया (निराला); कूलन में, केलि में कछारन में कुंजन में बनन में, बागन में, बगरो बसन्त है (पद्माकर) बसन्त आ गया (आचार्य द्विवेदी) आदि पदबन्ध रमेश दवे के समय और विचार के इन भावों का साक्ष्य बनते हैं कि, 'कवि को ही सोचना होगा कि वह विचार कैसे बने, समय कैसे बने और शब्द की सदानीरा संस्कृति की रक्षा कैसे करे?'

आपने इस अंक को कथा अंक बनाने के लिए कहानियों की जिस ऐतिहासिक भूमिका को स्मरण किया है और आख्यान में History को अंतर्निहित बताया है। यह व्याख्या अद्भुत और श्लाघ्य है। आप तत्कालीन विषयों, उक्तियों और पदों को लेकर जब उसके मूल तक जाते हैं तो कौतूहल के साथ कवित्व रस के आनन्द का अनुभव होता है। वास्तव में मोटे और परम्परागत अर्थों में कहानी भी काव्य का ही रूप है और उसकी कसौटी भी उसके समय सहचर बनने में है। इस दृष्टि से प्रेम तेरे कितने रूप डगमगाते कदम और दुलारा कहानियाँ हमारे संवेदनातन्त्र को झकझोर देती है। सच कहूँ तो इन्हें पढ़कर आँखें झरती रह गईं। प्रत्यारोपण, महागाथा उन शहीदों की, कोई परिचित और लाल डायरी आश्वस्त करती हैं। 'ई–प्रेम–पत्र और अक्लमंदी कहानियाँ, प्रेम कहानियाँ होकर भी प्रेम तत्व से वंचित हैं। अक्लमंदी' का नायक शाहरुख खान की तरह आत्ममुग्ध है। पता ही नहीं चलता कि नीलिमा उस पर उसके किस गुण या किस दैवीय प्रेरणा से मरी जा रही है। हाँ इसमें भोपाल शहर का भूगोल और वहाँ से कुछ स्थानों की दूरी की जानकारी जरूर मिल जाती है। पानी उतर गया शीर्षक में तो फिर भी एक और अर्थ ध्वनि है किन्तु और कितने अँगूठे दोगे एकलव्य कथा प्रसंग बेहतर होते हुए भी शीर्षक की सार्थकता के इर्दगिर्द चक्कर लगाने के कारण अतिरंजना का शिकार हो जाता है।

वीणा में प्रकाशित–कहानीकार और वरिष्ठ लेखक रूप सिंह चंदेल के साक्षात्कार (जुलाई 2022) में कही यह बात मुझे याद आ रही है कि तोलेस्तोय अपनी हर रचना पर कम से कम पाँच बार काम करते थे। गोगोल आठ बार काम करने की सलाह देते थे। यह पाण्डुलिपि के प्रकाशक के पास जाने तक होता। शुभदा मिश्र की कहानी प्रेम तेरे कितने रूप के विषय चयन, कथ्य विस्तार और कसाव समकाल के अनेक ज्वलंत प्रश्नों का नियोजन कहानी का सन्देश, उसकी मार्मिकता और प्रेम की उदात्तता आदि पक्षों की चर्चा यहाँ उचित नहीं। इसे पाठकों सहित अन्य कहानीकारों को भी पढ़ना चाहिए। इस अंक में यह कहानी और संस्कृति सौरभ सम्मान के अवसर पर कोलकाता में श्री अच्युतानन्द मिश्र का प्रकाशित वक्तव्य इस अंक की उपलब्धि मानता हूँ। सम्पादकीय में शब्द की तह तक और उसके अनेक आवर्तों को उलट–पलट कर परम्परा, इतिहास और संस्कृति की तह तक जाने की आपकी लेखनी नए पाठकों को सुखद आश्चर्य में डालती होगी किन्तु उन्हें नहीं, जो वर्षों पूर्व आपकी कृति सुंदरकाण्ड एक पुनर्पाठ का पाठ कर चुके–हों।

श्यामायन सहकार मार्ग,
सतना–485001(म.प्र.)
मो.–8602067567

◆'अक्षरा' का कैनवास बहुत व्यापक है। सांस्कृतिक रूप से जितना खुला आकाश है, उतनी रही गद्य जैसी समाजशास्त्रीय जमीन। यह अंक चर्चित साहित्यकार उद्भ्रांत जी पर केन्द्रित है। उद्भ्रांत जी जितना पौराणिक-मिथकीय संदर्भों के माध्यम से आज के सवालों तक आते हैं, वह उनकी चिन्ताधारा का प्रवाह है। स्त्री विमर्श के अनेक पक्ष उनकी रचनाओं में तलाशे जा सकते हैं। संपादकीय में मनोज श्रीवास्तव जी ने अनेक विधाओं में उनके सृजनात्मक स्वत्व को मुखर किया है। ऐसे मूल्यांकन न केवल साहित्यकार की अंतश्चेतना को उद्घाटित करते हैं, बल्कि आलोचना के मूल्यमान को भी समृद्ध करते हैं। डॉ. करुणाशंकर उपाध्याय, आनंदकुमार सिंह, दिनेश माली, डॉ. अनिल सिंह आदि आलोचकों ने विभिन्न विधाओं के विश्लेषणपरक आलेखों से उद्भ्रांत जी के सृजन संसार को उजागर किया है। आरंभ में श्रीयुत रमेश दवे जी बहुत माकूल सवाल किया है। आलोचना में हास्य रस के अभाव को लेकर। मुझे हेनरी पियरे की पुस्तक फैल्योर्स ऑफ क्रिटिसिज्म की याद आ गयी। कोई कहता है कि आजकल साहित्य और आलोचना का स्तर कितना गिर गया है। उत्तर में वे कहते हैं- हाँ, सही है। साहित्य और साहित्यकार क्या, समाज ही ऐसा हो गया है। सब कुछ में गिरावट, यहां तक कि प्रेम में भी। लड़कियाँ तो तब अच्छी हुआ करती थीं, जब हमने प्रेम और विवाह किया था। अंक की समीक्षाएँ रचना केन्द्रित हैं। और पुस्तक की अंतर्वस्तु को सर्वथा प्रकाशित करती हैं।

- बी एल आच्छा, चेन्नई (तमिलनाडु)
मो.-9425083335

◆ यह तो अब सुविज्ञात है कि अक्षरा का विगत वर्ष का प्रस्थान गहन, गंभीर, सुविचारित और नवनमोन्मेष पूर्ण था। इसके भाव और विचार बोध की आरम्भिक केन्द्रिक मनोभूमि से कुछ पारम्परिक पाठक वर्ग में प्रकट-अप्रकट बेचैनी झलकी थी। किन्तु इसका अब प्राय: परिहार हुआ/ हो रहा है। वास्तव में इस समूह की कुल आशंका निर्मूल ही थी क्योंकि जिन्होंने इसके प्रधान संपादक श्री मनोज श्रीवास्तव को कालांतर में प्रत्येक छोटे बडे मंच पर परिपूर्ण आत्मीय निकटता से देखा, समझा है, उससे उसके निवारण के साथ ही अक्षरा के क्षरो भाव की निवृत्ति हुई होगी। मैं तो आशा करता हूँ कि इस पत्रिका का वर्तमान इसकी परंपरा के विस्तार के साथ ही हिन्दी भाषा, साहित्य, संस्कृति और भारतीय लोक चेतना को वैश्विक पटल की ओर ले जाने में अवश्य सफल होगा।

- प्रभुदयाल मिश्र, भोपाल (म.प्र.) मो. 9425079072

◆ 'अक्षरा' अंक 213, वर्ष 41, दिसंबर, 2022 प्राप्त कर हार्दिक प्रसन्नता हुई। आपके सक्षम एवं कुशल नेतृत्व में पत्रिका की गुणवत्ता दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ रही है। अब इस पत्रिका ने राष्ट्रीय पत्रिका की ऊँचाई प्राप्त कर ली है। यह पत्रिका भारतीय साहित्य और संस्कृति को समृद्ध कर रही है। इस पत्रिका में प्रकाशित लेखों ने हिन्दी के वरिष्ठ आधुनिक कवि के उद्भ्रांत जी विविध पक्षों को उद्घाटित कर साहित्यिक जगत को अत्यधिक सराहनीय अवदान प्रदान किया है।

पत्रिका में प्रकाशित श्रीमती सुमन चौरे के ललित निबंध ने तीर्थ यात्रा से पोषित होती वंश वृक्ष की प्राचीनतम संस्कृति को उजागर किया है। चारों धामों में पूजा कर रहे पंडो ने हिन्दू समाज की अनेक पीढ़ियों के जनसंख्यात्मक समंक सँभालकर रखे हैं और उन्हें नियमित रूप से अद्यावत किया है। उनके इस आधारभूत अभिलेख का वैज्ञानिक ढंग से संरक्षण किया जाना उपयुक्त प्रतीत होता है।

सुमन जी द्वारा विरचित 'निमाड़ का सांस्कृतिक लोक' हमें पढ़ने का अवसर मिला। अत: इसी अंक में प्रकाशित श्री कमलेश पारे का समीक्षा लेख और उसमें उद्भ्रांत डॉ. विजय बहादुर सिंह की यह सूत्रात्मक टिप्पणी कि 'लोक लेखन का यह अद्भुत संग्रह प्रत्येक कोण से हमें जीने की संस्कृति से मिलवाता है, या उसे सिखाता है।' बहुत ही प्रभावी है। श्री कमलेश जी ने इस पुस्तक के विविध पक्षों को उद्घाटित कर इसकी महत्ता सुस्थापित की है।

- सुरेश जैन, भोपाल, (म.प्र.)
मो. 9425010111

छायाचित्रों में नरेश मेहता

पुस्तकों में नरेश मेहता

''इस पॉलिसी में निवेश पोर्टफोलियो में निवेश का जोखिम पॉलिसीधारक द्वारा वहन किया जायेगा''

सबसे पहले
लाइफ इंश्योरेंस

ऑनलाइन
भी उपलब्ध

एक सीप - दो फायदे
बचत भी : सुरक्षा भी

एलआईसी की
सीप

योजना सं.: 852 UIN 512L334V01

यूनिट लिंक्ड, असहभागी, व्यक्तिगत जीवन बीमा योजना

चुनने की आजादी:

बचत धनराशि:
आपकी बचत रु. 4000/– प्रति माह या रु. 40000/– प्रति वर्ष से शुरू हो कर जीवन के बड़े लक्ष्यों के लिए उससे अधिक हो सकती है।

4 फंड विकल्प:
आप बांड, सुरक्षित, संतुलित एवं वृद्धि में से कोई भी विकल्प चुन सकते हैं।

निःशुल्क फंड परिवर्तन:
आप अपना धन वर्ष में चार बार निःशुल्क एक फंड से दूसरे फंड में परिवर्तित कर सकते हैं।

आवश्यकता पर निकासी :
5 वर्ष उपरांत आप आंशिक निकासी कर सकते हैं।*

पॉलिसी के लाभ:

- जोखिम सुरक्षा उपलब्ध
- गारंटीकृत लाभ:
  यूनिट फंड वैल्यू के साथ
  गारंटीकृत लाभ*
- पॉलिसी परिपक्वता:
  यूनिट फंड वैल्यू

पात्रता :

प्रवेश की आयु:
न्यूनतम आयु: 90 दिन
अधिकतम आयु: 65 वर्ष

परिपक्वता आयु:
न्यूनतम आयु: 18 वर्ष
अधिकतम आयु: 85 वर्ष

पॉलिसी अवधि: 10 – 25 वर्ष

एसएमएस करें अपने शहर का नाम 56767474 पर

कॉल सेंटर सेवा (022) 6827 6827

डाउनलोड करें एलआईसी मोबाइल एप "MyLIC"

विज़िट करें www.licindia.in पर; हमें फॉलो करें LIC India Forever

*शर्तें लागू : अधिक विवरण के लिए अपने अभिकर्ता/एलआईसी की नजदीकी शाखा से संपर्क करें

भ्रामक/धोखाधड़ी वाले फोन कॉल्स से सावधान
आईआरडीएआई बीमा पॉलिसी विक्रय, बोनस की घोषणा अथवा प्रीमियम निवेश संबंधी गतिविधियों से संबंध नहीं रखता है। ऐसे फोन कॉल्स के प्राप्त होने पर आपसे निवेदन किया जाता है कि तुरन्त पुलिस से शिकायत दर्ज करवायें।

करार के प्रथम पाँच वर्ष में यूनिट से संबद्ध बीमा पॉलिसियां समाप्त नहीं की जा सकती। पाँचवे वर्ष के अंत तक यूनिट से संबद्ध बीमा पॉलिसियों को पॉलिसीधारक न समर्पण कर सकता है और न ही उनमें निवेश किये गए धन को आंशिक या पूर्ण रूप से निकाल सकता है।

LIC
भारतीय जीवन बीमा निगम
LIFE INSURANCE CORPORATION OF INDIA
मध्यक्षेत्र, भोपाल

LIC/AR/19-20/40/HIN

नियम व शर्तों की विस्तृत जानकारी के लिए
बिक्री समापन से पूर्व बिक्री-पुस्तिका ध्यानपूर्वक पढ़ लें।

IRDAI Regn No.: 512

हर पल आपके साथ

आज़ादी का अमृत महोत्सव

एनटीपीसी NTPC

हमारी शक्ति इन्हें सशक्त बनाने में है

बालिकाओं को उनकी क्षमताओं का एहसास कराने में मदद करने से ज़्यादा कुछ भी अलौकिक नहीं है। इसीलिए, एनटीपीसी अपने पावर स्टेशनों के आस–पास के स्कूलों से चयनित बालिकाओं के लिए आवासीय कार्यशालाओं का आयोजन करता है। इस कार्यक्रम के माध्यम से, बालिकाओं को आत्मनिर्भर और अपनी आंतरिक क्षमताओं को आत्मविश्वास के साथ प्रदर्शित करना सिखाया जाता हैं। इस प्रकार, इसे सही मायनों में बालिका सशक्तिकरण मिशन (जी ई एम) बनाने का प्रयास है।

Follow us on

www.ntpc.co.in /ntpc1 /ntpcltd1 /ntpclimited /Company/ntpc /ntpclimited @ntpc_limited

मेगावाट से मुस्कान बिखेरते हुए

होली

सुभद्रा कुमारी चौहान
जन्म : 16 अगस्त 1904
प्रयाण : 15 फरवरी 1948

. . . ''क्या तुम नहीं जानते होली या कोई भी त्यौहार वही मनाता है जो सुखी है। जिसके जीवन में किसी प्रकार का सुख ही नहीं, वह त्यौहार भला किस बिरते पर मनावे ?''

''तो क्या तुमसे होली खेलने न आऊँ ?''

''क्या करोगे आकर ?''

सकरुण दृष्टि से करुणा की ओर देखते हुए नरेश साइकिल उठाकर घर चल दिया। करुणा अपने घर के काम–काज में लग गई।

नरेश के जाने के आध घंटे बाद ही करुणा के पति जगत प्रसाद ने घर में प्रवेश किया। उनकी आँखें लाल थीं। मुँह से तेज शराब की बू आ रही थी। जलती हुई सिगरेट को एक ओर फेंकते हुए वे कुरसी खींच कर बैठ गये। भयभीत हिरनी की तरह पति की ओर देखते हुए करुणा ने पूछा– ''दो दिन तक घर नहीं आए, क्या कुछ तबीयत खराब थी ? यदि न आया करो तो खबर तो भिजवा दिया करो। मैं प्रतीक्षा में ही बैठी रहती हूँ।''

उन्होंने करुणा की बातों पर कुछ भी ध्यान न दिया। जेब से रुपये निकाल कर मेज़ पर ढेर लगाते हुए बोले– ''पंडितानी जी की तरह रोज़ ही सीख दिया करती हो कि जुआ न खेलो, शराब न पीयो, यह न करो, वह न करो। यदि मैं, जुआ न खेलता तो आज मुझे इतने रुपये इकट्ठे कहाँ से मिल जाते ? देखो पूरे पन्द्रह सौ है। लो, इन्हें उठाकर रखो, पर मुझ से बिना पूछे इसमें से एक पाई भी न खर्च करना समझीं ?

करुणा जुए में जीते हुए रुपयों को मिट्टी समझती थी। गरीबी से दिन काटना उसे स्वीकार था। परन्तु चरित्र को भ्रष्ट करके धनवान बनना उसे प्रिय न था। वह जगत प्रसाद से बहुत डरती थी इसलिए अपने स्वतंत्र विचार वह कभी भी प्रकट न कर सकती थी। उसे इसका अनुभव कई बार हो चुका था। अपने स्वतंत्र विचार प्रकट करने के लिए उसे कितना अपमान, कितनी लांछना और कितना तिरस्कार सहना पड़ था। यही कारण था कि आज भी वह अपने विचारों को अन्दर ही अन्दर दबा कर दबी हुई ज़बान से बोली– ''रुपया उठाकर तुम्हीं न रख दो ? मेरे हाथ तो आटे में भिड़े है।'' करुणा की इस इनकारी से जगत प्रसाद क्रोध से तिलमिला उठे और कड़ी आवाज से पूछा– क्या कहा ?''

करुणा कुछ न बोली नीची नजर किए हुए आटा सानती रही। इस चुप्पी से जगत प्रसाद का पारा एक सौ दस डिग्री पर पहुँच गया। क्रोध के आवेश में रुपये उठा कर उन्होंने फिर जेब में रख लिये– ''यह तो मैं जानता ही था कि तुम यही करोगी। मैं तो समझा था इन दो–तीन दिनों में तुम्हारा दिमाग़ ठिकाने आ गया होगा। ऊट–पटाँग बातें भूल गई होगी और कुछ अकल आ गई होगी। परन्तु सोचना व्यर्थ था। तुम्हें अपनी विद्वत्ता का घमंड है तो मुझे भी कुछ है। लो ! जाता हूँ अब रहना सुख से'' कहते–कहते जगत प्रसाद कमरे से बाहर निकलने लगे।

पीछे से दौड़कर करुणा ने उनके कोट का सिरा पकड़ लिया और विनीत स्वर में बोली– ''रोटी तो खा लो मैं रुपये रखे लेती हूँ। क्यों नाराज होते हो ?'' एक जोर के झटके के साथ कोट को छुड़कर जगत प्रसाद चल दिये। झटका लगने से करुणा पत्थर पर गिर पड़ीऔर सिर फट गया। खून की धारा बह चली, और सारी जाकेट लाल हो गई।

संध्या का समय था। पास ही बाबू भगवती प्रसाद जी के सामने बाली चौक से सुरीली आवाज आ रही थी।

''होली कैसे मनाऊँ ?''

''सैंया बिदेस, मैं द्वार ठाढ़ी, कर मल–मल पछताऊँ।''

''होली के दीवाने भंग के नशे में चूर थे। गाने वाली नर्तकी पर रुपयों की बौछार हो रही थी। जगत प्रसाद को अपनी दुखिया पत्नी का खयाल भी न था। रुपया बरसाने वालों में उन्हीं का सब से पहिला नम्बर था। इधर करुणा भूखी–प्यासी छटपटाती हुई चारपाई पर करवटें बदल रही थी।

''भाभी, दरवाजा खोलो'' किसी ने बाहर से आवाज दी। करुणा ने कष्ट के साथ उठकर दरवाजा खोल दिया। देखा तो सामने रंग की पिचकारी लिए हुए नरेश खड़ा था। हाथ से पिचकारी छूट कर गिर पड़ी। उसने साश्चर्य पूछा–

''भाभी यह क्या ?''

करुणा की आँखें छलछला आईं, उसने रुँधे हुए कंठ से कहा–

''यही तो मेरी होली है, भैय्या।''

bob World

आज़ादी का अमृत महोत्सव

एक ऐसा बचत खाता जो है पूरी तरह से डिजिटल.

खाते के साथ पाएं आकर्षक उपहार

B3

प्लस खाता	एज खाता	अल्ट्रा खाता
शून्य शेष	न्यूनतम ₹ 25,000/-	न्यूनतम ₹ 50,000/-

एक खाता जो आपकी तरह रहता है ऑनलाइन.

क्यूआर कोड स्कैन करें
bobworld.com पर जाएं

बैंक ऑफ़ बड़ौदा
Bank of Baroda
विजया VIJAYA | देना DENA

प्रेषक, प्रकाशक, मुद्रक कैलाशचन्द्र पंत, भोपाल द्वारा, स्वत्वाधिकारी मध्य प्रदेश राष्ट्र भाषा प्रचार समिति, हिन्दी भवन, श्यामला हिल्स, भोपाल से प्रकाशित एवं श्रेया ऑफसेट, 4 लाजपत भवन, जोन-1, एम.पी.नगर, भोपाल से मुद्रित।